

Registered with the Registrar of Newspaper for India

R.N.I. Regd. No.: MPHIN/2006/16946

94251-01132



ISSN-2582-5976

Supported by:

Ksaan
Helpline
+91-7415538151

मध्य भारत

READ FOR ONLINE EDITION

Website: www.krishakbharti.in

E-mail: bhartikrishak75@gmail.com

कृषक भारती

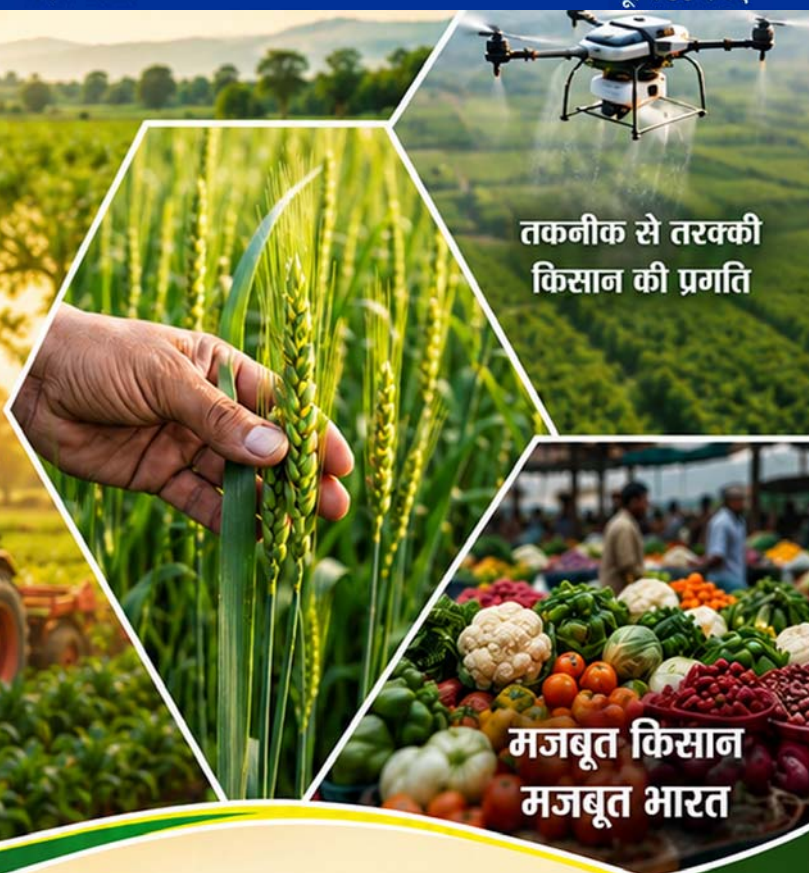
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली मासिक पत्रिका

वर्ष-21 अंक-5

ग्वालियर, अगस्त 2026

मूल्य 30 रुपए

कृषक समृद्धि का संकल्प, आत्मनिर्भर भारत का विकल्प



तकनीक से तरक्की
किसान की प्रगति

मजबूत किसान
मजबूत भारत



उन्नत खेती
अधिक उपज



जल संरक्षण
भविष्य सुरक्षित



आधुनिक तकनीक
किसान के साथ



बेहतर बाजार
उचित मूल्य

मिट्टी की खुशहाली किसान की समृद्धि



जल है तो कल है
हर बूंद की रक्षा,
हर खेत की सुरक्षा



महिला शक्ति
कृषि की नई पहचान,
सशक्त किसान, सशक्त देश



पशुपालन से समृद्धि
स्वस्थ पशु, बेहतर उत्पादन,
आत्मनिर्भर किसान



मध्य भारत कृषक भारती

किसान भाईयों एवं बहनों

सतर्क रहें-सावधान रहें

यदि कोई आपको नक्ली बीज खाद
या कीटनाशक बेचने का प्रयास करे
तो उसकी सूचना तुरंत दें

किसान कॉल सेंटर

टोल फ्री नंबर

☎ **1800-180-1551**

प्रातः 6:00 बजे से रात्रि 10:00 बजे तक

याद रखें - आपकी शिकायत ही
आपकी फसल की रक्षा है



☎ किसान कॉल सेंटर

स्कैन कर हमें फॉलो करें

1800-180-1551 (6 AM - 10 PM)



सौजन्य से: मध्य भारत कृषक भारती द्वारा जनहित में जारी

अगस्त 2026



साइबर अपराधियों पर लगे शिकंजा

संयुक्त राष्ट्र की एक चौकाने वाली रिपोर्ट के अनुसार साल 2025 में एशिया प्रशांत क्षेत्र के नागरिकों को साइबर ठगी और ऑनलाइन धोखाधड़ी के जरिये साइबर अपराधियों ने 114 अरब डॉलर तक का नुकसान पहुंचाया है। यानी साइबर अपराधियों ने भौगोलिक सीमाओं को तोड़कर एक समानांतर आर्थिक साम्राज्य खड़ा कर दिया है। दरअसल, आधुनिक तकनीक का दुरुपयोग करके साइबर अपराधी डिजिटल अरेस्ट, डीपफेक, क्रिप्टोकॉर्सेसी व फर्जी निवेश के प्रलोभन तथा विदेशों में नौकरी के सबजबाब दिखाकर लोगों को लुट रहे हैं। भारत भी इस संकट से अछूता नहीं है। गाहे-बगाहे बुजुर्गों व सेवानिवृत्त अधिकारियों की जीवन-भर की जमा पूंजी लुटने के मामले भारत में आते रहते हैं। साथ ही इसे कड़ी सजा वाले एक अलग अपराध के तौर पर घोषित किया जाए। निश्चित रूप से डिजिटल अरेस्ट के बढ़ते अपराधों के चलते ऐसे मामलों में गंभीरता से विचार करने की जरूरत है। दरअसल, डिजिटल अरेस्ट में अपराधी ऑडियो व वीडियो कॉल के जरिये पुलिस, अन्य जांच एजेंसियों के अधिकारी, अदालत के कर्मचारी तथा सरकारी अधिकारी बनकर पीड़ितों को इतना आतंकित करते हैं कि वे भयभीत होकर अपनी

जीवनभर की जमा पूंजी लुटवा बैठते हैं। बीते साल भी अंबाला के एक ऐसे ही जोड़े के पत्र के आधार पर कोर्ट ने स्वतः संज्ञान लिया था। हाल में संसद में प्रस्तुत आंकड़ों के अनुसार साल 2024 में भारतीयों ने विभिन्न साइबर धोखाधड़ी के मामलों में 22,845 करोड़ रुपये गंवा दिए। इस दौरान साइबर अपराध की करीब 22 लाख घटनाएं सामने आई थीं। ऐसे में जरूरी हो जाता है कि इस तरह के अपराधों से निपटने के लिये किए जा रहे बहुआयामी प्रयासों को एक मजबूत कानूनी ढांचा प्रदान किया जाए।

निश्चित रूप से साइबर अपराध अब कभी-कभार होने वाली घटनाएं नहीं रह गई हैं। आज यह लगातार परेशान करने वाली हकीकत है। दरअसल, कृत्रिम बुद्धिमत्ता और ऑटोमेशन की सहायता से साइबर अपराधी नित नये और जटिल तरीकों से लोगों के बैंक खातों में सेंध लगाने का काम कर रहे हैं। इस संकट से निपटने में हमारी बैंकिंग व्यवस्था व नियामक वित्तीय अनुशासन बनाने वाली संस्थाएं कामयाब नहीं हो पा रही हैं। जैसे-जैसे प्रवर्तन एजेंसियां व पुलिस साइबर अपराधियों पर शिकंजा कसने की कोशिश में नई तकनीकों का उपयोग करते हैं, साइबर अपराधी नये तौर-तरीकों के जरिये और आगे निकल जाते हैं।

दरअसल, पुरानी पीढ़ी डिजिटल दुनिया की जटिलताओं और प्रलोभनों से इन अपराधियों के बुने जाल में फंस जाती है। यही वजह है कि सुप्रीम कोर्ट ने सुझाव दिया है कि आपराधिक कानूनों में 'डिजिटल अरेस्ट' को औपचारिक रूप से परिभाषित किया जाए।

NMEO योजना से किसान बेसाहू राम की खेती को मिली नई दिशा

किसानों की आय में वृद्धि तथा तिलहनी फसलों के उत्पादन को बढ़ावा देने के उद्देश्य से कृषि विभाग द्वारा राष्ट्रीय खाद्य तेल मिशन-ऑयल पाम एवं तिलहन (NMEO) योजना का प्रभावी क्रियान्वयन किया जा रहा है। योजना के तहत किसानों को उन्नत बीज, आधुनिक कृषि तकनीकों की जानकारी एवं समय-समय पर तकनीकी मार्गदर्शन उपलब्ध कराया जा रहा है, जिससे किसानों को बेहतर उत्पादन की दिशा में सकारात्मक परिणाम मिल रहे हैं।



सरगुजा जिले के ग्राम ईरगवां निवासी किसान बेसाहू राम ने कृषि विभाग से संपर्क कर NMEO योजना का लाभ लिया। विभाग द्वारा उन्हें 40 किलोग्राम उन्नत किस्म का मूंगफली बीज निःशुल्क उपलब्ध कराया गया, जिसे उन्होंने अपनी एक एकड़ कृषि भूमि में बोया है। बेसाहू राम ने बताया कि ग्राम कृषि विस्तार अधिकारी के मार्गदर्शन में खेत की समुचित तैयारी, वैज्ञानिक तरीके से बुवाई तथा फसल प्रबंधन किया गया। आधुनिक कृषि पद्धतियों को अपनाने से बीज का अंकुरण उत्कृष्ट हुआ है और फसल की बढ़वार भी संतोषजनक है। वर्तमान स्थिति को देखते हुए इस वर्ष मूंगफली की अच्छी पैदावार होने की पूरी संभावना है, जिससे उनकी आय में उल्लेखनीय वृद्धि की उम्मीद है।

सदस्यता ग्रहण करने एवं विज्ञापन प्रकाशन हेतु निम्न प्रतिनिधियों से सम्पर्क करें

छिंदवाड़ा (म.प्र.)	मुंगावली (म.प्र.)	उड़ीसा
रामप्रकाश रघुवंशी	भगवानदास चौबे	समीर रंजन नायक
98272-78063	96854-88453	70422-31678
***	बलिया (उ.प्र.)	***
नरसिंहपुर (म.प्र.)	आर.एन. चौबे-94535-77732	
	पश्चिम बंगाल	हापड़ (उ.प्र.)
नवीन शुक्ला: 89894-36330	राजेश नायक-98831-57482	मयंक गौड़: 83848-66823

Online मंगाएं साहित्य

मध्य प्रदेश एवं छत्तीसगढ़ में अत्यंत लोकप्रिय हिन्दी मासिक समाचार पत्रिका मध्य भारत कृषक भारती द्वारा प्रकाशित कृषि साहित्य अब आप ऑनलाइन भी खरीद सकते हैं। हमारी वेबसाइट www.krishakbharti.in पर जाकर Purchase को क्लिक करके ऑनलाइन ऑर्डर कर सकते हैं।

वैज्ञानिक/लेखकों के लिए सूचना

प्रत्येक माह की 20 तारीख तक प्राप्त समाचार/लेख/फोटो फीचर को प्रिंट एडिशन में स्वीकार किया जाता है तथा 21 से 30 तारीख तक प्राप्त समाचार/लेख/फोटो फीचर को डिजिटल एडिशन में सम्मिलित किया जाना संभव हो सकेगा। लेख में मोबाइल नम्बर होना अनिवार्य है।

—संपादक

मध्य भारत कृषक भारती में प्रकाशित पाठ्य सामग्री में व्यक्त विचार वैज्ञानिकों/लेखकों के हैं। सम्पादक की सहमति अनिवार्य नहीं है। किसी त्रुटि शंका या समाधान के लिये वैज्ञानिकों/लेखकों के पते प्रकाशित किये जाते हैं जिस पर संपर्क किया जा सकता है। सभी प्रकार के विवादों के लिये न्याय क्षेत्र ग्वालियर होगा। सभी पद मानसेवी हैं।

**: सम्पादक मण्डल :**

प्रधान सम्पादक

राजू गुर्जर (MJC)

94251-01132

94245-22090



प्रसार/मार्केटिंग टीम

डी.के. बरार

91791-85002, 70247-93010

महेश अहिरवार: 94251-48365

: तकनीकी मार्गदर्शन/वैज्ञानिकगण :

डॉ. व्ही.एस. तोमर (पूर्व कुलपति)

राजमाता विजयाराजे सिंधिया

कृषि विश्वविद्यालय

डॉ. अर्पिता श्रीवास्तव

(Assistant Professor)

पशु चिकित्सा एवं पशुपालन

महाविद्यालय रीवा (म.प्र.)

डॉ. आर.के.एस. तोमर

राजमाता विजयाराजे सिंधिया कृषि वि.वि.

ग्वालियर (म.प्र.)

डॉ. अनिल कुमार सिंह (उद्यान वैज्ञानिक)

कृषि विज्ञान केन्द्र, पीपराकोठी (पूर्वी चम्पारण),

डॉ.रा.प्र.के.कृ.वि.वि., पूसा, समस्तीपुर

प्रो. (डॉ.) के. आर. मोर्य

पूर्व कुलपति, राजेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय

पूसा (बिहार), एवं महात्मा ज्योति राव फूले

विश्वविद्यालय जयपुर (राजस्थान)

डॉ. रंजु कुमारी (स.प्रा. सह कनीय वैज्ञानिक)

पादप प्रजनन एवं अनुवांशिकी विभाग, नालन्दा उद्यान महाविद्यालय,

नूरसराय (नालन्दा), बिहार कृषि वि.वि., सबौर, भागलपुर

डॉ. भागचन्द्र जैन

प्राध्यापक एवं प्रचार अधिकारी

कृषि महाविद्यालय, इंदिरा गांधी कृषि

विश्वविद्यालय रायपुर (छ.ग.)

डॉ. विश्वनाथ सिंह कंसाना

कृषि वैज्ञानिक (कृषि प्रसार)

कृषि विज्ञान केन्द्र दतिया (म.प्र.)

डॉ. विनीता सिंह, अध्यक्ष

अनुवांशिकी एवं पौध प्रजनन विभाग

AKS विश्वविद्यालय, सतना (म.प.)

तपस्या तिवारी पीएचडी शोधार्थी, मृदा विज्ञान और

कृषि रसायन विज्ञान विभाग, चंद्रशेखर आज़ाद कृषि

और प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कानपुर (उ.प्र.)

बसंत कुमार दादरवाल

इंस्टीट्यूट ऑफ एग्रीकल्चर साइंस बनारस

हिन्दू यूनिवर्सिटी वाराणसी (उ.प्र.)

श्रीमती रिया ठाकुर (वैज्ञानिक उद्यानिकी)

कृषि विज्ञान केन्द्र, चंदनगांव, छिंदवाड़ा (म.प्र.)

मोबाइल: 9907279542

डॉ. मोहब्बत सिंह जमरा (असिस्टेंट प्रोफेसर)

पशु चिकित्सा विज्ञान एवं पशुपालन

महाविद्यालय, महु, (म.प्र.)

अंदर के पन्नों पर**मध्यप्रदेश/छत्तीसगढ़**

- बुवाई से पहले बीज का उपचार... 07
- एल नीनो और मानसून- भारतीय कृषि की चिंता 08
- ब्रॉयलर ब्रीडर फार्म का वैज्ञानिक प्रबंधन... 09
- गोवंशीय पशुओं में होने वाली एक टगिया रोग 10
- संरक्षित खेती 11
- पशुओं में निदान परीक्षण 12
- मक्का में रेज्ड बेड (उटी हुई क्यारी) विधि के प्रमुख लाभ 13
- कृषि में कृत्रिम बुद्धिमत्ता: एआई से स्मार्ट खेती की ओर 14
- कम लागत में प्रोटीन की आपूर्ति (पशु चारे का यूरिया उपचार) 15
- सूअर के बच्चों (पिगलेट्स) की देखभाल, पोषण और सफल... 16
- किसानों की आय दोगुनी करने में कृषि विस्तार सेवाओं की भूमिका 17
- 18% प्रोटीन हाइड्रोलाइसेट (प्लांट-बेस्ड)... 18
- जॉब लॉस कवर: आपकी फाइनेशियल स्थिरता की सुरक्षा 19
- गोवंशीय पशुओं में थिलेरिया रोग 20
- गर्भकालीन विश्राम, दुग्ध उत्पादन में विस्तार 21
- तेज वृद्धि, बेहतर आय का नया साधन... 22

उत्तर प्रदेश

- भविष्य की खाद्य प्रणालियां एवं खाद्य परिवर्तन में ... 23
- गेहूँ: समस्या या समाधान? स्वास्थ्य पर... 24
- फलों एवं सब्जियों के उप-उत्पादों का उपयोग 25
- प्रीसिजन कृषि और आधुनिक तकनीकों ... 26
- फल एवं सब्जी फसलों का कटाई उपरांत प्रबंधन: ... 27
- बुंदेलखंड की मिट्टी में पोषक तत्वों की कमी... 28
- मृदा संरक्षण की दिशा में आईसीएआर... 29
- डायरेक्ट सीडिंग राइस... 30
- जैविक खेती: सतत कृषि की ओर... 31
- डिजिटल खेती, स्मार्ट किसान... 32
- बकरी प्रबंधन का महत्व एवं सामान्य देखभाल 33
- भारत में जल संकट की वर्तमान स्थिति 34

राजस्थान

- शिमला मिर्च में एकीकृत कीट एवं रोग प्रबंधन 35
- वृक्षारुवेद श्रृंखला-उपवनक्रिया... 36
- मिर्च में लगने वाले प्रमुख रोग एवं उनका समेकित प्रबंधन 37

नई दिल्ली

- फलों एवं सब्जियों के कटाई-पश्चात प्रबंधन ... 38

झारखण्ड

- मिनी ऑयल एक्सप्लोर: 39

हरियाणा

- फसल अवशेष प्रबंधन: ... 40
- सरसों में स्केलेरोटिनिया स्टेम रॉट का आणविक ... 41
- केंचुआ खाद उत्पादन से बदली खेती की तस्वीर... 42
- व्यावसायिक स्वास्थ्य एवं व्यावसायिक जोखिम 43

बिहार

- बिहार में मखाना की खेती: ... 44

उत्तराखण्ड

- जलवायु-स्मार्ट उद्यानिकी: ... 45

हिमाचल प्रदेश

- मोरिंगा: पोषक तत्वों से भरपूर एवं स्वास्थ्यवर्धक सब्जी 46
- सब्जी उत्पादन के लिए ड्रोन तकनीक 47

जम्मू कश्मीर

- कालमेघ की वैज्ञानिक खेती: ... 48



प्रधानमंत्री की सेशेल्स यात्रा में भारत-सेशेल्स के बीच कृषि सहयोग पर हुआ अहम समझौता

जलवायु परिवर्तन और खाद्य सुरक्षा की चुनौतियों से निपटने पर फोकस

नई दिल्ली। प्रधानमंत्री की सेशेल्स गणराज्य की आधिकारिक यात्रा के दौरान भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (आईसीएआर) और सेशेल्स के मत्स्य पालन, कृषि एवं नीली अर्थव्यवस्था मंत्रालय के कृषि विभाग के बीच कृषि अनुसंधान और शिक्षा के क्षेत्र में सहयोग बढ़ाने के लिए एक समझौता ज्ञापन (एमओयू) पर हस्ताक्षर किए गए। इस समझौते का उद्देश्य दोनों देशों के बीच कृषि अनुसंधान, शिक्षा, क्षमता निर्माण और प्रौद्योगिकी हस्तांतरण को नई गति देना है।

संयुक्त अनुसंधान और प्रौद्योगिकी साझाकरण पर रहेगा जोर

समझौता ज्ञापन के तहत दोनों देश संयुक्त अनुसंधान कार्यक्रमों को बढ़ावा देंगे। इसके साथ ही वैज्ञानिकों, शोधकर्ताओं और छात्रों के आदान-प्रदान, उन्नत कृषि प्रौद्योगिकियों के साझा उपयोग तथा सर्वोत्तम कृषि प्रणालियों को अपनाने के लिए सहयोग बढ़ाया जाएगा। समझौते के प्रभावी क्रियान्वयन के लिए दोनों पक्षों ने वर्ष



2026 से 2031 तक की पंचवर्षीय कार्ययोजना पर भी हस्ताक्षर किए। इस कार्ययोजना में जलवायु-

अनुकूल कृषि, बागवानी, फसलोत्तर प्रबंधन, पशुधन विकास तथा टिकाऊ खाद्य और पोषण सुरक्षा जैसे प्रमुख क्षेत्रों को प्राथमिकता दी गई है। इस सहयोग का उद्देश्य संस्थागत संबंधों को मजबूत करना, कृषि उत्पादकता बढ़ाना, तकनीकी क्षमता का विकास करना तथा जलवायु परिवर्तन और खाद्य सुरक्षा जैसी उभरती चुनौतियों का प्रभावी समाधान तैयार करना है। साथ ही सतत कृषि विकास को भी बढ़ावा दिया जाएगा।

वैश्विक कृषि सहयोग का विस्तार कर रहा है आईसीएआर

आईसीएआर विश्वभर के साझेदार संस्थानों के साथ 100 से अधिक समझौता ज्ञापनों के माध्यम से भारत की वैश्विक कृषि साझेदारी का लगातार विस्तार कर रहा है। सेशेल्स के साथ यह नया समझौता ग्लोबल साउथ के देशों के साथ भारत की भागीदारी को और मजबूत करेगा तथा सतत कृषि, नवाचार और वैश्विक खाद्य एवं पोषण सुरक्षा को बढ़ावा देने की दिशा में महत्वपूर्ण कदम माना जा रहा है।

सहकारी सप्ताह के अंतर्गत राज्य स्तरीय सहकारी प्रदर्शनी का शुभारंभ

भोपाल। सहकारिता मंत्रालय, भारत सरकार की स्थापना के पाँच वर्ष पूर्ण होने के उपलक्ष्य में आयोजित सहकारी सप्ताह के अंतर्गत मध्यप्रदेश राज्य सहकारी संघ मर्यादित, भोपाल द्वारा आयोजित तीन दिवसीय राज्य स्तरीय सहकारी प्रदर्शनी का शुभारंभ सहकारिता, खेल एवं युवा कल्याण मंत्री विश्वास कैलाश सारंग ने किया। कार्यक्रम का शुभारंभ दीप प्रज्वलन के साथ हुआ। मंत्री श्री सारंग ने फीता काटकर प्रदर्शनी का विधिवत उद्घाटन किया तथा विभिन्न सहकारी संस्थाओं, राष्ट्रीय सहकारी संगठनों, शासकीय विभागों, महिला स्व-सहायता समूहों एवं उत्पादक संगठनों द्वारा लगाए गए स्टॉलों का अवलोकन किया। उन्होंने प्रदर्शित उत्पादों, नवाचारों एवं सेवाओं की जानकारी प्राप्त कर प्रतिनिधियों से संवाद किया।

प्रो. बालिक दास राय

बन्टी राय

98276-11495

88715-18885

मै. माँ उर्वरक केन्द्र

रसायनिक एवं
जैविक खाद बीज
एवं दवाई के विक्रेता



अमित राय

पता: भितरवार रोड, डबरा (म.प्र.)



बैंक सखी ने बदली गांव की तस्वीर: घर-घर पहुंची बैंकिंग सेवाएं

जबलपुर। कभी पेंशन निकालने या बैंक का छोटा-सा काम कराने के लिए ग्रामीणों को कई किलोमीटर दूर शाखा तक जाना पड़ता था। घंटों लाइन में लगने के बाद भी पूरा दिन निकल जाता था। अब गांव में ही बायोमैट्रिक मशीन पर अंगूठा लगाते ही कुछ मिनटों में बैंकिंग सेवाएं मिल रही हैं। यह बदलाव राज्य ग्रामीण आजीविका मिशन (एसआरएलएम) की बैंक सखियों की बदौलत आया है। बैंक सखियां न सिर्फ ग्रामीणों को बैंकिंग सुविधाएं उपलब्ध करा रही हैं, बल्कि स्वयं सहायता समूहों की महिलाओं को ऋण उपलब्ध कराने और उन्हें आर्थिक रूप से सशक्त बनाने में भी अहम भूमिका निभा रही हैं। जिले के 78 गांवों में अलग-अलग बैंकों से जुड़ी बैंक सखियां सेवाएं दे रही हैं। इनमें बड़खेरी गांव की क्षमा ठाकुर बैंक सखी के साथ कम्युनिटी रिसोर्स पर्सन के रूप में भी महिलाओं को जागरूक कर रही हैं।

बैंक से मिला तकनीकी प्रशिक्षण

कुछ वर्ष पहले तक क्षमा ठाकुर भी एक सामान्य गृहिणी थीं। बैंक से जुड़े कामों के लिए उन्हें परिवार के अन्य सदस्यों पर निर्भर रहना पड़ता था। स्वयं सहायता समूह से जुड़ने के बाद उनकी जिंदगी बदली। उनकी सक्रियता को देखते हुए आजीविका मिशन ने उन्हें बैंक सखी के रूप में चयनित किया। इंडियन बैंक के सहयोग से उन्हें माइक्रो एटीएम, आधार आधारित भुगतान प्रणाली, डिजिटल बैंकिंग और वित्तीय साक्षरता का प्रशिक्षण दिया गया।

गांव में ही मिल रही बैंकिंग सुविधा

प्रशिक्षण के बाद क्षमा ठाकुर इंडियन बैंक से जुड़कर ग्रामीणों को नकदी निकासी, जमा, बैलेंस जांच और अन्य बैंकिंग सेवाएं गांव में ही उपलब्ध करा रही हैं। इसका सबसे अधिक लाभ बुजुर्गों, दिव्यांगों, महिलाओं और दूरदराज के ग्रामीणों को मिल रहा है। जिन लोगों का पूरा दिन बैंक जाने में खर्च हो जाता था, उनका काम अब कुछ ही मिनटों में पूरा हो जाता है। शुरुआत में लोगों को डिजिटल लेन-देन और फिंगरप्रिंट आधारित बैंकिंग पर भरोसा नहीं था, लेकिन लगातार जागरूकता और सफल लेन-देन के बाद ग्रामीणों का विश्वास बढ़ा। अब अधिकांश लोग बिना झिझक डिजिटल माध्यम से बैंकिंग सेवाओं का उपयोग कर रहे हैं।

शकरकंद रोपण पद्धति का खेत जाकर प्रशिक्षण दिया



शिवपुरी। शिवपुरी जिला उद्यानिकी फसलों की खेती प्रतिवर्ष प्रगति कर रहा है। जिले इस समय मुख्य रूप से टमाटर, शिमला मिर्च, प्याज, लहसुन, कद्दू की खेती के साथ कृषकों का रुझान शकरकंद की खेती की ओर बढ़ रहा है। इस समय जिले में इसका कुल रकबा 360 हेक्टेयर के आस-पास है। कृषि विज्ञान केन्द्र, प्रमुख डॉ. पुनीत कुमार ने बताया की विगत वर्षों में जिले के क्षेत्र भ्रमण के दौरान देखा गया है की शकरकंद के खेतों में अधिक वर्षा की स्थिति में कंद सड़न एवं फफूंदजनित बीमारियों का प्रकोप देखा गया है। इस समस्या के दृष्टिगत इस वर्ष खरीफ में शकरकंद की विभिन्न रोपण पद्धतियों के संबंध में केन्द्र उद्यानिकी वैज्ञानिक डॉ प्रशान्त कुमार गुप्ता द्वारा कृषकों के बीच जाकर उन्हें समूह में प्रशिक्षित की जा रहा है एवं कृषकों के प्रक्षेत्र पर रोपण पद्धतियों का प्रदर्शन भी कराया जा रहा है। विगत दिवस इसी क्रम में कोलरस विकास खण्ड के किलावनी एवं चंदौरिया ग्राम इस तरह के प्रशिक्षण आयोजित की गये ताकि जिले के कृषकों के खेतों पर जल भराव की स्थिति में शकरकंद की फसल को बचाया जा सके। केन्द्र के इस प्रयास में जिले का उद्यानिकी विभाग एवं सृजन संस्था का भी सहयोग मिल रहा है।



नरेन्द्र रावत
(राजपुर वाले)

9977847628

हरियाणा
कृषि सेवा केन्द्र

खाद, बीज एवं कीटनाशक दवाईयों के विक्रेता



पता :- पशु अस्पताल के सामने, भितरवार रोड, डबरा (म.प्र.)



बुवाई से पहले बीज का उपचार नहीं किया तो कॉलर रॉट व फफूंद जनित रोगों की आशंका, उत्पादन भी 15 से 25% हो सकता है कम : एक्सपर्ट सिन्हा



**हेमन्त कुमार
सिन्हा**
कृषि वैज्ञानिक

बीजोपचार फसल का पहला सुरक्षा कवच है। जिस तरह इंसान बीमारी से बचाव के लिए टीका लगवाता है, उसी तरह बीज को बुवाई से पहले बीजोपचार देने से वह शुरुआती कीटों और फफूंदजनित रोगों से सुरक्षित रहता है। स्वस्थ बीज ही स्वस्थ पौधे और बेहतर उत्पादन की नींव है। यदि बीज उपचार नहीं किया गया तो फसल में कॉलर रॉट, रूट रॉट, फफूंदजनित रोग तथा शुरुआती अवस्था में कीटों का प्रकोप बढ़ सकता है। इससे उत्पादन में 15 से 25 प्रतिशत तक कमी आ सकती है। विशेषज्ञों के अनुसार, बीजोपचार करने से बीज का अंकुरण अच्छा होता है, पौधों की प्रारंभिक वृद्धि बेहतर होती है तथा रोगों से सुरक्षा मिलती है। बीजोपचार के लिए रासायनिक एवं जैविक दोनों प्रकार के उपचार उपलब्ध हैं। फसल के अनुसार उचित दवा का चयन कर बीजोपचार करना चाहिए।

बीज उपचार नहीं करने पर क्या नुकसान?

बीजोपचार नहीं करने पर खरीफ फसलों में औसतन 15 से 25 प्रतिशत तक उत्पादन घट सकता है। यदि खेत में पहले से ही फफूंदजनित रोग मौजूद हों, तो नुकसान और अधिक हो सकता है। उपचारित बीजों



में 14 से 25 प्रतिशत तक अधिक अंकुरण देखा गया है तथा स्वस्थ पौधे तैयार होते हैं। यदि बीज में कीट, रोग या खरपतवार के बीज मिले हों तो उपचार करने से उनका प्रभाव कम किया जा सकता है।

किस फसल के बीज में कौन-से रोगों की आशंका, इसका क्या है उपचार

फसल	प्रमुख रोग	कैसे करें उपचार
उड़द	कॉलर रॉट	प्रति किलोग्राम बीज में 75 ग्राम थायरस 2 ग्राम
सोयाबीन	कॉलर रॉट	प्रति किलोग्राम बीज में 3 ग्राम थायरस
मूंगफली	जड़ गलन	प्रति किलोग्राम बीज में 3 ग्राम थायरस
अरहर	जड़ गलन	3 ग्राम थायरस या 1 ग्राम कार्बेन्डाजिम + 2 ग्राम थायरस प्रति किलोग्राम बीज

जैविक उपचार भी असरदार

जैविक उपचार भी असरदार : रासायनिक उपचार के साथ जैविक बीजोपचार भी प्रभावी है। एक किलो बीज में 8-10 ग्राम ट्राइकोडर्मा मिलाकर उपचार किया

जा सकता है। 100 किलो बीज में लगभग 1 लीटर पानी का उपयोग किया जाता है ताकि जैव एजेंट बीज पर अच्छी तरह चिपक जाए। इसके बाद बीज को छाया में सुखाकर बुवाई करनी चाहिए। ट्राइकोडर्मा और स्ट्रिप्टोमोनास जैसे जैव एजेंट मिट्टी में लाभकारी सूक्ष्मजीव बढ़ाते हैं और रोगजनक फफूंद को नियंत्रित करते हैं।

किसान आजमाएं ये प्राकृतिक तरीके

किसान आज भी अपनाते हैं पारंपरिक तरीके

1. **नमक घोल** : स्वस्थ और खराब बीज अलग करने के लिए उपयोगी। बाजरा और धान में यह तरीका अधिक अपनाया जाता है।

2. **नीम घोल** : नीम में मौजूद एजाडिरैक्टिन (Azadirachtin) प्रभावी कीट नियंत्रण में मदद करता है।

3. **गोमूत्र** : इसमें सूक्ष्म पोषक तत्व और रोगनाशक गुण पाए जाते हैं।

बीजोपचार करते समय इन बातों का रखें ध्यान

- * उपचार हमेशा छाया में करें। * दवा की अनुशंसित मात्रा का ही उपयोग करें। * उपचारित बीज को खाने या पशुओं के चारे के रूप में उपयोग न करें। * उपचार के बाद बीज को अच्छी तरह सुखाकर ही बुवाई करें। * जैविक और रासायनिक उपचार साथ करना हो तो पहले रासायनिक उपचार करें, उसके बाद जैविक उपचार करें।

हितग्राही मूलक योजनाओं का लाभ लेने के लिए युवाओं को आगे आने के लिए प्रेरित करें

टीकमगढ़। कलेक्टर विवेक श्रोत्रिय की अध्यक्षता में आज कलेक्ट्रेट सभाकक्ष में टीएल बैठक आयोजित की गई। बैठक में कलेक्टर श्री श्रोत्रिय ने निर्देशित किया कि कृषि, उद्यानिकी, मत्स्य विभाग अंतर्गत हितग्राही मूलक योजनाओं का लाभ लेने के लिये युवाओं को आगे आने हेतु प्रेरित करें एवं शासकीय योजनाओं सब्सिडी आदि से सभी को परिचित कराएं। उन्होंने निर्देशित किया कि सभी विभाग हितग्राही मूलक योजनाओं से संबंधित जानकारी संधारित कर प्रस्तुत करें। स्वतंत्रता दिवस के संबंध में तैयारियों की समीक्षा की तथा सभी विभागों से उनके एक वर्ष की जानकारी उपलब्ध कराने हेतु निर्देशित किया। उन्होंने निर्देशित किया कि आयुष विभाग द्वारा संचालित वेलनेस सेंटर पर बुजुर्गों और लक्षित समूह को भेजना सुनिश्चित करें उन्हें सभी सुविधाएं उपलब्ध करावें।

9826067379
9826589704

Krishi Sewa Sadan

Deals in : Pesticides, Seeds, Fertilizers & Agricultural Equipments

Sumit Singh Prop.

Bhitarwar Road, Jawahar Ganj, Dabra, Distt. Gwalior



- ✍ **डॉ. चंचल भार्गव** (वरिष्ठ तकनीकी सहायक)
कृषि विज्ञान केन्द्र, छिंदवाड़ा (म.प्र.)
- ✍ **डॉ. सरिता सिंह** वैज्ञानिक, केवीके छिंदवाड़ा
- ✍ **डॉ. निधि प्रजापति** (वैज्ञानिक) कृषि विज्ञान केन्द्र, नरसिंहपुर (म.प्र.)

एल नीनो और मानसून- भारतीय कृषि की चिंता

एल नीनो (El Niño) एक प्राकृतिक जलवायु घटना है, जिसमें प्रशांत महासागर के मध्य एवं पूर्वी भाग का समुद्री जल सामान्य से अधिक गर्म हो जाता है। इसका प्रभाव विश्वभर के मौसम पर पड़ता है। भारत में एल नीनो का सबसे बड़ा प्रभाव मानसून पर देखने को मिलता है। जलवायु परिवर्तन के इस दौर में 'एल नीनो' एक ऐसी प्राकृतिक घटना है, जिसका प्रभाव विश्वभर की मौसम प्रणालियों पर पड़ रहा है।

भारत जैसे कृषि प्रधान देश के लिए एल नीनो का असर बेहद महत्वपूर्ण हो जाता है। यह घटना प्रशांत महासागर के सतही जल के असामान्य रूप से गर्म होने से उत्पन्न होती है। जिसके कारण मानसून की प्रकृति प्रभावित होती है। भारत में लगभग आधी कृषि वर्षा पर निर्भर है। यहां एल नीनो किसानों के लिए गंभीर चिंता का विषय बन हुआ है। धान, मक्का, दालें और तिलहन जैसी फसलें जो अधिकतर बारिश पर निर्भर करती हैं, सबसे अधिक प्रभावित होती हैं। एल नीनो एक मौसमी घटना है जिसमें प्रशांत महासागर का तापमान बढ़ जाता है जिससे भारत में कमजोर मानसून और सूखे जैसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है, जो कृषि को गंभीर रूप से प्रभावित करती है। इसके कारण खरीफ फसलों; सोयाबीन, कपास, धान, की बुआई में देरी, उत्पादन में 15 से 50 प्रतिशत तक कमी और चारे की कमी से पशुधन पर असर और फसलों पर कीटों के प्रकोप बढ़ सकते हैं। एल नीनो के प्रभाव से भारत में दक्षिण-पश्चिम मानसून सामान्य से कम रहता है। इससे वर्षा आधारित खेती पर सबसे ज्यादा बुरा असर होता है। वहीं सोयाबीन, कपास, अरहर और धान जैसी फसलों की बुआई प्रभावित होती है और पैदावार में भारी कमी आती है। सूखे जैसी स्थिति के कारण जलाशयों में पानी की कमी से सिंचाई के लिए पानी की तंगी हो जाती है। चारे और पानी की कमी से पशुओं का स्वास्थ्य प्रभावित होता है जिससे दूध और मांस का उत्पादन

कम हो जाता है। गर्म और शुष्क मौसम से फसलों में कीटों और रोगों का प्रकोप बढ़ जाता है, जिससे फसल की गुणवत्ता और उत्पादन पर प्रभाव पड़ता है। फसल खराब होने से किसानों को भारी आर्थिक नुकसान होता



है। इसके अलावा छोटे और सीमांत किसानों के लिए यह स्थिति और भी कठिन हो जाती है, क्योंकि उनके पास पर्याप्त संसाधन नहीं होते हैं। इन चुनौतियों से निपटने के लिए हमें कृषि क्षेत्र में समग्र और वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता है। इसके अंतर्गत सूखारोधी फसलों को अपनाना होगा और जल संरक्षण तकनीकों जैसे ड्रिप और स्प्रिंकलर सिंचाई को बढ़ावा देना आवश्यक है। किसानों को जागरूक करने के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम और कृषि परामर्श सेवाओं का विस्तार करना आवश्यक है। साथ ही बदलते मौसम के

साथ तालमेल बैठाने के लिए नवाचार, तकनीक और नीति-निर्माण में सुधार अनिवार्य है। उचित कदम उठाकर एल नीनो के प्रभाव की काफी हद तक कम किया जा सकता है और किसानों की आजीविका को सुरक्षित रखा जा सकता है। किसानों को भी बदलती परिस्थितियों के अनुसार अपनी खेती के तौर-तरीकों में बदलाव लाने की आवश्यकता है। फसल विविधीकरण, कम पानी वाली फसलों का चयन और आधुनिक कृषि तकनीकों का उपयोग उन्हें इस चुनौती से निपटने में मदद कर सकता है। सामूहिक प्रयासों और जागरूकता से एल नीनो के नकारात्मक प्रभावों को कम किया जा सकता है। इसलिए हमें अपनी कृषि प्रणाली को अधिक लचीला और टिकाऊ बनाना होगा। इसके लिए सरकार, वैज्ञानिक और किसान मिलकर इस चुनौती का सामना करें और कृषि क्षेत्र को सुरक्षित एवं सुदृढ़ बना सकते हैं। एल नीनो भारतीय मानसून और कृषि के लिए एक महत्वपूर्ण चुनौती है। हालांकि, वैज्ञानिक कृषि पद्धतियों, जल संरक्षण, मौसम आधारित कृषि प्रबंधन तथा सरकारी योजनाओं के प्रभावी क्रियान्वयन से इसके नकारात्मक प्रभावों को काफी हद तक कम किया जा सकता है। किसानों, वैज्ञानिकों और सरकार के संयुक्त प्रयासों से भारतीय कृषि को अधिक टिकाऊ एवं जलवायु-अनुकूल बनाया जा सकता है।

॥ जय श्री कामतानाथ जी ॥

9826521828
7000086811

मै. शीतला खाद बीज भण्डार

हमारे यहाँ खाद, बीज एवं सब्जी के बीज, कीटनाशक दवाईयाँ उचित रेट पर मिलती है।

सुशील पचौरी
(शुक्लहारी वाले)

पता- पिछोर तिराहा, ग्वालियर-झांसी रोड, डबरा जिला-ग्वालियर (म.प्र.)
Email: susheelpachoori815@gmail.com



डॉ. अनिल कुमार गिरि (सहायक प्राध्यापक)
कृषि महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

डॉ. एस. के. त्रिपाठी प्राध्यापक एवं अधिष्ठाता,
कृषि महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

डॉ. रघुराज किशोर तिवारी प्रमुख वैज्ञानिक,
कृषि महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

डॉ. मनीष द्विवेदी सहायक प्राध्यापक, कृषि
महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

भूमिका: भारत में पोल्ट्री उद्योग कृषि क्षेत्र का तेजी से विकसित होने वाला व्यवसाय है। ब्रॉयलर उत्पादन की सफलता का आधार स्वस्थ एवं उच्च गुणवत्ता वाले चूजे हैं, और ऐसे चूजों का उत्पादन ब्रॉयलर ब्रीडर फार्म में किया जाता है। ब्रॉयलर ब्रीडर वे विशेष मुर्गे एवं मुर्गियाँ होती हैं जिनसे निषेचित अंडे प्राप्त किए जाते हैं। इन अंडों को हैचरी में सेने के बाद ब्रॉयलर चूजे तैयार किए जाते हैं। यदि ब्रीडर फार्म का प्रबंधन वैज्ञानिक ढंग से किया जाए तो निषेचित अंडों की संख्या, हैचबिलिटी तथा चूजों की गुणवत्ता में उल्लेखनीय वृद्धि होती है। दूसरी ओर, पोषण, स्वास्थ्य या जैव सुरक्षा में थोड़ी सी लापरवाही भी उत्पादन में भारी नुकसान का कारण बन सकती है।

ब्रॉयलर ब्रीडर फार्म का महत्व- ब्रॉयलर उद्योग की नींव ब्रीडर फार्म है। स्वस्थ ब्रीडर पक्षियों से प्राप्त अंडों से ही स्वस्थ एवं तेजी से बढ़ने वाले ब्रॉयलर चूजे तैयार होते हैं। इसलिए ब्रीडर फार्म का उद्देश्य केवल अधिक अंडे प्राप्त करना नहीं, बल्कि उच्च गुणवत्ता वाले निषेचित अंडों का उत्पादन करना है।

1. फार्म की स्थापना एवं आवास प्रबंधन- ब्रीडर फार्म ऐसी जगह स्थापित करना चाहिए जहाँ पर्याप्त स्वच्छ वातावरण, शुद्ध पानी तथा अच्छी सड़क सुविधा उपलब्ध हो। आवास प्रबंधन के मुख्य बिंदु निम्नलिखित हैं- * शेड पूर्व-पश्चिम दिशा में बनाए जाएँ। * शेड में पर्याप्त वेंटिलेशन होना चाहिए। * वर्षा एवं गर्मी से सुरक्षा की उचित व्यवस्था हो। * प्रति पक्षी पर्याप्त फर्श स्थान उपलब्ध कराया जाए। * सूखी एवं साफ लिटर का उपयोग करें। * लिटर की मोटाई 8-10 सेमी रखें। * शेड में उचित प्रकाश एवं तापमान बनाए रखें। * चूहों, जंगली पक्षियों एवं अन्य जानवरों का प्रवेश रोकें। साफ-सुथरा एवं हवादार शेड पक्षियों के स्वास्थ्य और उत्पादन दोनों के लिए अत्यंत आवश्यक है।

2. पोषण एवं आहार प्रबंधन- ब्रॉयलर ब्रीडर का आहार सामान्य ब्रॉयलर से अलग होता है। इन पक्षियों में शरीर का वजन नियंत्रित रखना आवश्यक होता है क्योंकि अत्यधिक वजन से अंडा उत्पादन एवं प्रजनन क्षमता प्रभावित होती है। संतुलित आहार में निम्न पोषक तत्व होने चाहिए- * ऊर्जा * प्रोटीन * आवश्यक अमीनो अम्ल * कैल्शियम * फॉस्फोरस * विटामिन * खनिज मिश्रण

आहार प्रबंधन के प्रमुख बिंदु निम्न हैं- * निर्धारित मात्रा में ही दाना दें। * प्रतिदिन एक ही समय पर भोजन कराएँ। * स्वच्छ एवं ठंडा पानी हर समय उपलब्ध रखें। * फीडर एवं ड्रिंकर नियमित साफ करें। * मौसम के अनुसार पोषण में आवश्यक परिवर्तन करें। उचित पोषण से अंडा उत्पादन, निषेचन प्रतिशत तथा हैचबिलिटी में वृद्धि होती है।

3. शरीर भार (Body Weight) का प्रबंधन- ब्रीडर पक्षियों में शरीर भार का नियंत्रण अत्यंत महत्वपूर्ण है। यदि वजन

ब्रॉयलर ब्रीडर फार्म का वैज्ञानिक प्रबंधन

अधिक हो जाए तो- * अंडा उत्पादन कम हो जाता है। * निषेचन प्रतिशत घटता है। * हैचबिलिटी कम होती है।

यदि वजन कम हो तो- * यौन परिपक्वता में देरी होती है। * छोटे अंडे प्राप्त होते हैं। * उत्पादन क्षमता घट जाती है। इसलिए प्रत्येक सप्ताह पक्षियों का वजन लेकर कंपनी द्वारा निर्धारित मानकों से तुलना करनी चाहिए।

4. नर-मादा अनुपात का प्रबंधन- सफल निषेचन हेतु उचित नर-मादा अनुपात बनाए रखना आवश्यक है। सामान्यतः 1 नर 8-10 मादा के लिए आवश्यक होता है। नरों का स्वास्थ्य, सक्रियता तथा वजन नियमित रूप से जाँचना चाहिए। कमजोर अथवा घायल नर को समय पर बदल देना चाहिए।

5. प्रकाश (Lighting) प्रबंधन- प्रकाश ब्रीडर पक्षियों के प्रजनन चक्र को नियंत्रित करता है। इसके लिए निम्न मुख्य बातें हैं - * ग़ोअर अवस्था में सीमित प्रकाश दें। * उत्पादन प्रारंभ होने पर धीरे-धीरे प्रकाश अवधि बढ़ाएँ। * सामान्यतः उत्पादन अवधि में 14-16 घंटे प्रकाश पर्याप्त माना जाता है। * पूरे शेड में समान प्रकाश व्यवस्था रखें। उचित प्रकाश से अंडा उत्पादन नियमित बना रहता है।

6. अंडा संग्रह एवं भंडारण ब्रीडर फार्म में प्राप्त प्रत्येक अंडा आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण होता है। अंडा संग्रह करते समय निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए- * दिन में कम से कम 4-5 बार अंडे एकत्र करें। * टूटे एवं गंदे अंडों को अलग रखें। * अंडों को नुकीला सिरा नीचे की ओर रखें। * अंडों को स्वच्छ ट्रे में रखें। * संग्रह कक्ष का तापमान लगभग 16-18°C तथा आर्द्रता 70-80% रखें। * अधिक समय तक अंडे संग्रहित न करें। सही भंडारण से हैचबिलिटी में सुधार होता है।

7. जैव सुरक्षा (Biosecurity) प्रबंधन- ब्रॉयलर ब्रीडर फार्म में जैव सुरक्षा सबसे महत्वपूर्ण प्रबंधन उपाय है। इसके लिए निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए- * फार्म में अनावश्यक व्यक्तियों का प्रवेश प्रतिबंधित करें। * प्रवेश द्वार पर फुटबाथ रखें। * वाहन एवं उपकरणों को कीटाणुनाशित करें। * कर्मचारियों के लिए अलग जूते एवं कपड़े रखें। * मृत पक्षियों का वैज्ञानिक तरीके से निस्तारण करें।

* फार्म के चारों ओर बाउंड्री एवं सुरक्षा व्यवस्था रखें। जैव सुरक्षा अपनाने से अनेक संक्रामक रोगों से बचाव संभव है।

8. स्वास्थ्य प्रबंधन- स्वस्थ पक्षी ही अधिक उत्पादन देते हैं इसलिए स्वास्थ्य प्रबंधन में निम्न लिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए - * निर्धारित टीकाकरण कार्यक्रम का पालन करें। * नियमित कुमिनाशक दवा दें। * रोगी पक्षियों को तुरंत अलग करें। * पशु चिकित्सक की सलाह लें। * मृत्यु दर का नियमित रिकॉर्ड रखें। रोग की शीघ्र पहचान से आर्थिक नुकसान कम किया जा सकता है।

9. रिकॉर्ड प्रबंधन- सफल ब्रीडर फार्म के लिए सही रिकॉर्ड रखना अत्यंत आवश्यक है। निम्न रिकॉर्ड नियमित रखना चाहिए - * पक्षियों की संख्या * दैनिक दाना खपत * पानी की खपत * शरीर भार * अंडा उत्पादन * निषेचित अंडों की संख्या * हैचबिलिटी * टीकाकरण * दवा उपयोग * मृत्यु दर रिकॉर्ड के आधार पर भविष्य की योजना एवं उत्पादन में सुधार किया जा सकता है।

10. आर्थिक प्रबंधन- अच्छा आर्थिक प्रबंधन लाभ बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसके लिए निम्न बातें आवश्यक हैं- * संतुलित आहार का उपयोग करें। * दाना बर्बादी रोकें। * बिजली एवं पानी की बचत करें। * नियमित स्वास्थ्य परीक्षण कराएँ। * गुणवत्तापूर्ण चूजे एवं आहार खरीदें। * बाजार की मांग के अनुसार उत्पादन योजना बनाएं। * चूजे बेचने का मार्केटिंग चैनल को मजबूत बनाएं।

निष्कर्ष- ब्रॉयलर ब्रीडर फार्म पूरे पोल्ट्री उद्योग की आधारशिला है। स्वस्थ ब्रीडर पक्षी, संतुलित पोषण, उचित शरीर भार, वैज्ञानिक प्रकाश व्यवस्था, जैव सुरक्षा, नियमित स्वास्थ्य देखभाल तथा सही रिकॉर्ड प्रबंधन अपनाकर उच्च गुणवत्ता वाले निषेचित अंडों का उत्पादन किया जा सकता है। आधुनिक वैज्ञानिक तकनीकों को अपनाने से उत्पादन लागत कम होती है, हैचबिलिटी बढ़ती है तथा किसानों की आय में उल्लेखनीय वृद्धि होती है। इसलिए प्रत्येक ब्रीडर फार्म संचालक को अच्छे ढंग से वैज्ञानिक प्रबंधन करना चाहिए, जिससे टिकाऊ एवं लाभदायक पोल्ट्री व्यवसाय विकसित किया जा सके।



SWARAJ

Deming Prize 2012



P. N. Gupta



Rishi Gupta
M. 9425736999, 8224004848
7999799399

SHREE PITAMBRA AUTOMOILES

39/1668, Near Volkswagen Showroom, Jhansi Road, Lashkar-Gwalior (M.P.)
Mob.: 94253-35532, 94257-36999,
E-mail : shreepitambraautomobile2015@gmail.com



डॉ. शैलेन्द्र सिंह

डॉ. शैलेश कुमार पटेल, डॉ. स्वतंत्र सिंह

पशु चिकित्सा विज्ञान एवं पशुपालन महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

रोगकारक

यह एक संक्रामक जीवाणु जनित रोग है। जो कि क्लोस्ट्रिडियम सौवी नामक जीवाणु से होता है। जो कि ग्रामधनी, श्वसन वाला जीवाणु है। यह जीवाणु मिट्टी में कई सालों तक जीवित रहता है।

रोगप्रसारण

वह रोग मुख्यतः गौवश भैंस और भेड़ में होता है। कभी-कभी घोड़ों में भी यह बीमारी देखी जाती है।

यह रोग मुख्यतः वर्षा ऋतु में होती है। गौवश में यह रोग अधिकांशतः गर्मियों में होती है। 6 साल से 2 साल के पशु में ज्यादा होता है।

* वह मिट्टी द्वारा फैलने वाला रोग है। रस रोग के जीवाणु संक्रमित पशु के मल द्वारा या संक्रमित पशु के मृत्यु होने पर इसके शव द्वारा मिट्टी में फैल जाते हैं। जहाँ से ये जीवाणु स्वस्थ पशु को संक्रमित करते हैं।

* संक्रमित खाद पदार्थों के द्वारा।

* भेड़ों में यह रोग त्वचा के सावों के संक्रमण से होता है।

रोगजनकता

मुख्यतः जीवाणु के बिजाणु शरीर के अंदर प्रवेश करता है। इसके बाद में छोटी आंत में जीवाणु पहुंचता है संचार तंत्र में पहुँचकर खून के द्वारा पूरे शरीर में प्रवेश करता है। यहाँ से मांसपेशियों में और शरीर के अन्य स्वस्थ ऊतकों में प्रवेश करता है। जब मांसपेशियाँ थकान अघात आदि के कारण निष्प्राण हो जाती है तो बीजाणु उत्तेजित होकर बिपैले पदार्थ उत्पन्न करती हैं। (मुख्यतः अल्फा, बीटा और डेल्टा टॉक्सिन) ये टॉक्सिन मांसपेशियों को क्षति पहुंचाती है और मांसपेशियाँ गल जाती हैं। प्रभावित मांसपेशियाँ काले रंग की हो जाती हैं क्योंकि मांसपेशियों में आयरन सल्फाइड का निर्माण हो जाता है।

रोग के लक्षण

इस रोग का काल सामान्य: 1:5 दिनों का होता है। इस रोग को निम्नलिखित लक्षणों के आधार पर पहचान जा सकता है।

(1) इस रोग का प्रथम लक्षण है कि पशु अचानक

गोवंशीय पशुओं में होने वाली एक टगिया रोग

लेंगड़ाने लगता है। और इसकी चाल में अकड़न आ जाती है। (2) प्रभावित पैंरो के उपरी हिस्से पर चुर - चुर जैसे ध्वनि सुनाई देती है। सूजन के ऊपर त्वचा रोग हल्का पड़ जाता है। और सुखी और दायर होती है। (3) भूख कम हो जाना (4) जुगाली बंद कर देना है। (5) उच्च तापमान (104-107F) तक हो सकता है। (6) रोगी पशु की उत्पादन क्षमता कम हो जाती है।

शव परीक्षण

पशु की मृत्यु के पश्चात निम्नलिखित परिवर्तन देखकर रोग की पहचान की जा सकती है।

- (1) प्रभावित मांसपेशी काले रंग की हो जाती है। क्योंकि प्रभावित मांसपेशी में आयरन सल्फाइड का निर्माण हो जाता है। प्रभावित मांसपेशी छिद्रिल हो जाती है जो कि बीच में सुखी और किनारे में इडमेटस (फूली हुई) प्रतीत होती है।
- (2) श्रेणीय लसिका ग्रंथि में सूजन और रक्त के घण्टे दिखाई देते हैं।
- (3) पेरीकार्डियटिस और अल्सरेटिव टूंडोकार्डियटिस

रोग की पहचान

* इस रोग की पहचान रोग के लक्षण और मृत पशुओं के शव परीक्षण से किया जा सकता है। इसके अलावा रोग के सूक्ष्मजीवी की संवर्धन माध्यम में वृद्धि करवाकर व अन्य प्रयोगशाला

तकनीकों द्वारा रोग की पहचान की जा सकती है।

उपचार

समय पर रोग की पहचान कर रोग का इलाज किया जा सकता है। इसके लिए निम्न प्रकार से उपचार किया जा सकता है। 3 से 5 दिनों तक प्रतिजैविक औषधियों की उचित मात्रा देना चाहिए। आक्सीटेट्रासाइलिन -5-10 मि.ग्रा./कि. शरीर के भार आर.-पेनासिलीन मुख्यतः उपयोग किया जाता है।

* डेक्सामेथासोन-0.5.2 मि.ग्रा./कि.भारानुसार नस में साथ ही सम्बंधित मांसपेशी में भरा हुआ तरह पदार्थ या स्वरात हो चुका भाग को बाहर निकाल दिया जाना चाहिए।

* रोगी पशु को आवश्यकतानुसार लक्षणात्मक और सहारात्मक उपचार भी करना चाहिए।

रोकथाम व बचाव

क्योंकि यह एक संक्रामक रोग है। अतः रोगी पशु को अन्य स्वस्थ पशुओं से दूर रखना चाहिए। पशुशाल में साफ-सफाई रखना चाहिए। स्वस्थ पशु को संक्रमित भूमि और चारागाह से दूर रखना चाहिए। रोगी जनवार की मृत्यु होने पर शव को भली-भाँति जमीन में गहरा गाड़ देना चाहिए। और उस पर चूने का छिड़काव कर देना चाहिए। इस रोग की रोकथाम के लिए वर्षों वस्तु शुरू होने के पूर्व स्वस्थ पशु को टीका प्रतिवर्ष लगाना चाहिए।

कुंज एजेंसीज



अपने भाई चप्पा सेठ की दुकान

हमारे यहां सभी प्रकार के खाद बीज एवं कीटनाशक दवाईयाँ उचित रेट पर मिलती हैं

प्रो. कार्तिक गुप्ता 9589545404

प्रो. हार्दिक गुप्ता 9644689094

भितरवार रोड, डबरा, जिला-ग्वालियर (म.प्र.)



✍ **सुनित भदरगे** पि.एच.डी. शोध छात्र, (फल विज्ञान) बागवानी विभाग, स्कूल ऑफ एग्रीकल्चर, आई.टी.एम. विश्वविद्यालय, ग्वालियर-475001 (म.प्र.)

संरक्षित खेती

परिचय-संरक्षित खेती (Protected Cultivation) वह आधुनिक कृषि पद्धति है जिसमें फसलों को प्रतिकूल मौसम, कीटों, रोगों तथा अन्य पर्यावरणीय प्रभावों से बचाने के लिए विशेष संरचनाओं के अंदर उगाया जाता है। इस तकनीक में तापमान, आर्द्रता, प्रकाश, जल एवं पोषक तत्वों को नियंत्रित करके पौधों की वृद्धि के लिए अनुकूल वातावरण बनाया जाता है।

वर्तमान समय में जलवायु परिवर्तन, भूमि की कमी तथा गुणवत्तापूर्ण उत्पादन की बढ़ती मांग के कारण संरक्षित खेती का महत्व तेजी से बढ़ रहा है। यह उद्यानिकी फसलों, विशेषकर सब्जियों, फूलों एवं फल फसलों के लिए अत्यंत उपयोगी है।

संरक्षित खेती की परिभाषा-"फसलों को नियंत्रित या अर्ध-नियंत्रित वातावरण में उगाने की वह तकनीक, जिसमें बाहरी मौसम के प्रतिकूल प्रभावों से सुरक्षा प्रदान की जाती है, संरक्षित खेती कहलाती है।"

संरक्षित खेती के उद्देश्य

1. वर्षभर उत्पादन प्राप्त करना।
2. फसलों को प्रतिकूल मौसम से बचाना।
3. उच्च गुणवत्ता वाली उपज प्राप्त करना।
4. जल एवं उर्वरकों का कुशल उपयोग करना।
5. कीट एवं रोगों का प्रबंधन करना।
6. प्रति इकाई क्षेत्र अधिक उत्पादन प्राप्त करना।

संरक्षित खेती के प्रमुख प्रकार

1. ग्रीनहाउस (Greenhouse)- ग्रीनहाउस पारदर्शी सामग्री जैसे पॉलीथीन, कांच या प्लास्टिक से बनी संरचना होती है, जिसमें तापमान एवं आर्द्रता को नियंत्रित किया जाता है।

लाभ * वर्षभर उत्पादन * उच्च गुणवत्ता वाली उपज * अधिक उत्पादन क्षमता

2. पॉलीहाउस (Polyhouse)

पॉलीथीन शीट से ढकी संरचना को पॉलीहाउस कहा जाता है।

विशेषताएँ * तापमान नियंत्रण * तेज हवा एवं वर्षा से सुरक्षा * सब्जी एवं फूल उत्पादन के लिए उपयुक्त

3. नेट हाउस (Net House)-जाल (नेट) से निर्मित संरचना, जो कीटों एवं पक्षियों से फसल की सुरक्षा करती है।

लाभ * कम लागत * बेहतर वायु संचार * कीट नियंत्रण

4. लो टनल और हाई टनल

पॉलीथीन शीट से ढकी सुरंगनुमा संरचनाएँ।

उपयोग * पौध तैयार करने में * प्रारंभिक उत्पादन प्राप्त करने में

संरक्षित खेती के घटक

1. तापमान नियंत्रण * वेंटिलेशन * कूलिंग पैड * फॉगिंग सिस्टम * हीटिंग सिस्टम



2. सिंचाई प्रबंधन

ड्रिप सिंचाई-पौधों की जड़ों तक सीधे पानी पहुंचाया जाता है।

फर्टिगेशन-सिंचाई जल के साथ उर्वरकों का प्रयोग।

3. प्रकाश प्रबंधन * प्राकृतिक प्रकाश * कृत्रिम प्रकाश व्यवस्था

4. आर्द्रता नियंत्रण-उचित आर्द्रता बनाए रखने से रोगों की संभावना कम होती है तथा पौधों की वृद्धि बेहतर होती है।

संरक्षित खेती में उगाई जाने वाली प्रमुख फसलें
सब्जियाँ * टमाटर * शिमला मिर्च * खीरा * बैंगन
फूल * गुलाब * गेरबेरा * कार्नेशन

फल फसलें

* स्ट्रॉबेरी * अंगूर * पपीता

संरक्षित खेती के लाभ

1. अधिक उत्पादन-खुले खेत की तुलना में 2-5 गुना तक अधिक उत्पादन प्राप्त हो सकता है।

2. बेहतर गुणवत्ता-फल एवं सब्जियाँ आकार, रंग एवं गुणवत्ता में बेहतर होती हैं।

3. जल की बचत

ड्रिप सिंचाई से 40-60% तक जल की बचत होती है।

4. कम कीटनाशक उपयोग

संरक्षित वातावरण में कीटों का प्रकोप कम होता है।

5. ऑफ-सीजन उत्पादन

मौसम के विपरीत समय में भी उत्पादन संभव है।

6. अधिक लाभ

उच्च गुणवत्ता एवं समय से पहले उत्पादन के कारण बाजार में बेहतर मूल्य मिलता है।

संरक्षित खेती की सीमाएँ

1. प्रारंभिक लागत अधिक होती है।
2. तकनीकी ज्ञान की आवश्यकता होती है।
3. संरचना के रखरखाव पर खर्च आता है।
4. तापमान नियंत्रण में लापरवाही से नुकसान हो सकता है।

फल फसलों में संरक्षित खेती का महत्व फल विज्ञान में संरक्षित खेती का उपयोग विशेष रूप से पौधशाला (नर्सरी) प्रबंधन, उच्च गुणवत्ता वाले पौध उत्पादन तथा कुछ विशेष फलों के ऑफ-सीजन उत्पादन के लिए किया जाता है।

लाभ * स्वस्थ पौध तैयार करना। * रोग एवं कीट नियंत्रण। * पौधों की तेज वृद्धि। * उच्च गुणवत्ता वाले फल उत्पादन।

निष्कर्ष-संरक्षित खेती आधुनिक उद्यानिकी की एक उन्नत तकनीक है, जो सीमित भूमि और संसाधनों में अधिक उत्पादन तथा बेहतर गुणवत्ता प्राप्त करने का प्रभावी माध्यम है। जलवायु परिवर्तन, जल संकट और बढ़ती जनसंख्या की चुनौतियों के बीच यह तकनीक कृषि को अधिक लाभकारी, टिकाऊ और वैज्ञानिक बनाती है। फल, सब्जी और पुष्प उत्पादन में संरक्षित खेती का भविष्य अत्यंत उज्ज्वल है और यह किसानों की आय बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।



शीतला कृषि सेवा केन्द्र

बंटी सिंह गुर्जर (बामौर बाली)

99267-31867, 83055-69923

खाद, बीज एवं कीटनाशक दवाओं के थोक एवं खेरीज विक्रेता



हमारे यहां धान, गेहूँ, सोयाबीन, सरसों, तिली एवं सब्जियों के बीज, खाद एवं उच्चकोटि की कीटनाशक दवाईयाँ उचित मूल्य पर मिलती है।

पता : पशु अस्पताल के सामने, भितरवार रोड, डबरा ग्वालियर (म.प्र.)



डॉ. नीरज श्रीवास्तव, डॉ. अंकुश किरण निरंजन

डॉ. अर्पिता श्रीवास्तव पशु चिकित्सा एवं पशुपालन
महाविद्यालय रीवा (म.प्र.)

विषाक्तता का निदान, किसी भी अन्य बीमारी की तरह, इतिहास, नैदानिक लक्षणों, घावों/क्षतियों, प्रयोगशाला जांच, और कुछ मामलों में, विश्लेषणात्मक प्रक्रियाओं पर आधारित होता है। परिस्थितिजन्य साक्ष्य मूल्यवान होते हैं और उन्हें नोट किया जाना चाहिए। पशु मालिकों द्वारा दिए गए इतिहास में प्रत्यक्ष कारकों पर अधिक जोर दिया जा सकता है और सूक्ष्म लेकिन महत्वपूर्ण विवरण छूट सकते हैं। जानवरों में अचानक मृत्यु की रिपोर्ट वास्तव में अत्यधिक तीव्र मृत्यु को नहीं दर्शा सकती है वे केवल यह दिखा सकते हैं कि जानवर मृत पाए गए थे।

खाद्य उत्पादक जानवरों में विषाक्तता के कई मामलों में डायग्नोस्टिक प्रयोगशाला में नमूने भेजना आवश्यक होता है। किसी अप्रत्याशित उत्पाद संदूषण या अन्य जानवरों के लगातार संपर्क में आने की चिंता हो, तो प्रयोगशाला के परिणाम मददगार होते हैं। **डायग्नोस्टिक प्रयोगशाला में नमूने जमा करते समय निम्न बिंदुओं पर ध्यान देना चाहिए:**

प्रभावित, बीमार या मृत जानवरों की संख्या, उम्र, वजन, रगणता और मृत्यु दर का कालानुक्रमिक विवरण, नैदानिक लक्षण और बीमारी का कोर्स (अवधि), पहले की बीमारी की स्थिति, शव परीक्षण में देखे गए घाव क्षतियां, और खाए गए भोजन की सावधानीपूर्वक जांच, उपचार के प्रति प्रतिक्रिया, संबंधित घटनाएं (कीटनाशक का प्रयोग, चारे में बदलाव, या दवाओं की शुरुआत, चारे में मिलाए जाने वाले तत्व, पानी के नए स्रोत आदि), सुविधाओं बाड़े का विवरण, कचरे या मशीनरी तक पहुंच आदि, विशिष्ट पदार्थ, उसकी क्षमता, रूप, और विषैले तत्व की मात्रा, एक्सपोजर का मार्ग, जानवर की प्रजाति और नस्ल, एक्सपोजर के बाद बीता हुआ समय।

वर्तमान नैदानिक लक्षण- प्रत्येक पशु चिकित्सा डायग्नोस्टिक प्रयोगशाला नैदानिक परीक्षणों का एक अनुय सट प्रदान करती है, जिसमें नए और बेहतर परीक्षण उपलब्ध होने पर अक्सर बदलाव होते रहते हैं। चिकित्सकों को अपने परीक्षण अनुसंधानों में विशिष्ट और स्पष्ट होना चाहिए। प्रयोगशाला के कर्मचारी नमूना संग्रह और रख-रखाव के नियमों के संबंध में मार्गदर्शन के साथ-साथ परीक्षण परिणामों की व्याख्या में सहायता प्रदान करेंगे। अधिकांश डायग्नोस्टिक प्रयोगशालाएं नमूना संग्रह और जमा करने के पसंदीदा नियमों के साथ उपयोगकर्ता दिशानिर्देश प्रकाशित करती हैं। हालांकि, निम्नलिखित व्यापक सिफारिशें काफी मानक हैं। जमा किए गए नमूनों के साथ एक विस्तृत केस इतिहास शामिल होना चाहिए। पैकेज्ड सामग्री में मौजूद किसी भी तरल पदार्थ से होने वाले नुकसान से बचाने के लिए सबमिशन फॉर्म को एक वाटरपूफ बैग में सुरक्षित रखा जाना चाहिए। मालिक का नाम और उपनाम, प्रजाति, नस्ल या आकार (यदि नस्ल अज्ञात हो), लिंग, उम्र, जानवर की पहचान, प्रासंगिक नैदानिक लक्षण, घावों का स्थूल रूप (आकार और शारीरिक स्थान सहित) पिछला उपचार, जिसमें उपचार के प्रति प्रतिक्रिया (यदि कोई हो) शामिल है, प्रासंगिक नैदानिक परीक्षणों के परिणाम, जैसे कि सीरम बायोकेमिकल विश्लेषण, साइटोलॉजिक और हिस्टोलॉजिक मूल्यांकन, और इमेजिंग अध्ययन (एक्स-रे/अल्ट्रासाउंड), समूह के स्वास्थ्य अध्ययन के लिए, समूह में रगणता और मृत्यु दर।

शिपमेंट के लिए जानवरों के नमूनों की पैकेजिंग- जैविक नमूनों का शिपमेंट उपयोग की जाने वाली कूरियर या शिपिंग सेवा द्वारा

पशुओं में निदान परीक्षण

स्थापित नियमों के अनुरूप होना चाहिए। कुछ मामलों में, हवाई परिवहन के लिए खतरनाक सामग्रियों के संबंध में परिवहन संघ के नियमों का अनुपालन आवश्यक होता है। इन नियमों में फॉर्मेलिन की मात्रा पर प्रतिबंध शामिल है जिसे एक कंटेनर में भेजा जा सकता है। प्रत्येक आंतरिक कंटेनर में 30 मिलीलीटर से अधिक मुक्त तरल समाधान नहीं होना चाहिए, और पूरे बाहरी पैकेज में 1 लीटर से अधिक नहीं होना चाहिए। बड़ी मात्रा में फॉर्मेलिन भेजने के बजाय, ऊतक के नमूनों को कम से कम 24 घंटे के लिए उचित मात्रा में में ही फिक्स किया जा सकता है और फिर शिपमेंट के लिए ताजे फॉर्मेलिन की कम मात्रा में स्थानांतरित किया जा सकता है। ताजे ऊतक के नमूनों वाले शिपमेंट पर स्पष्ट रूप से लेबल लगाना आवश्यक है, संक्रामक पदार्थ, मनुष्यों को प्रभावित करने वाले, संक्रामक पदार्थ, जानवरों को प्रभावित करने वाले, जैविक पदार्थ।

माइक्रोबायोलॉजिकल परीक्षण के लिए जानवरों के नमूनों की तैयारी- नैदानिक रूप से जिन विशिष्ट संक्रामक एजेंटों (कीटाणुओं) का संदेह हो, उन्हें सबमिशन फॉर्म पर नोट किया जाना चाहिए। कुछ जीवों को विशेष विकास आवश्यकताओं की आवश्यकता होती है, जिनका उपयोग प्रयोगशालाओं में नियमित रूप से तब तक नहीं किया जाता है जब तक कि उस रोगजनक का उल्लेख संभावित निदान के रूप में न किया गया हो। माइक्रो बायोलॉजिकल परीक्षण के लिए प्रयोगशाला की तकनीकों और क्षमताएं अलग-अलग होती हैं, हालांकि, अधिकांश परीक्षण या तो जीवित जीवों के विकास या दृश्यता पर, या इन रोगजनकों के न्यूक्लिक एसिड और प्रोटीन के पता लगाने पर निर्भर करते हैं। इसलिए, संदूषण से बचाने के लिए बिना फिक्स किए हुए नमूनों (ऊतक, तरल पदार्थ आदि) को सड़न रहित एकर किया जाना चाहिए और तुरंत भेजा जाना चाहिए। यदि मूत्र या किसी अन्य शारीरिक तरल पदार्थ का माइक्रोबियल कल्चर (जीवाणु संवर्धन) करना हो, तो एक अलग रोगाणु-रहित, एंटीबैट-मुक्त (बिना किसी प्रिजर्वेटिव वाले) कंटेनर में तरल पदार्थ भेजा जाना चाहिए। साइटोलॉजिक मूल्यांकन के लिए ई.डी.टी.ए. या अन्य प्रिजर्वेटिव वाले ट्यूब आदर्श होते हैं लेकिन कल्चर के लिए अस्वीकार्य हैं। यदि

पी.सी.आर. परीक्षण किया जाना है, तो एक ही बार में भेजे जा रहे कई जानवरों के नमूनों के बीच क्रॉस-कंटामिनेशन से बचना विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। यह सिद्धांत ऊतकों, तरल पदार्थों और यहाँ तक कि डिसेक्शन उपकरणों पर भी लागू होता है। इसके अलावा, पी.सी.आर. विश्लेषण के लिए स्वाब को अगर या चारकोल-आधारित परिवहन मीडिया में नहीं रखा जाना चाहिए, और कैल्शियम एलिगनेट स्वाब से बचना चाहिए। इसके बजाय, बाँझ कपास या पॉलिएस्टर की नोक वाले एलिगनेट्स को एक ट्यूब में भेजा जाना चाहिए, या तो सूखा (बिना परिवहन मीडिया के) या प्रयोगशाला की आवश्यकताओं के आधार पर सेलाइन सॉल्यूशन या वायरल परिवहन मीडिया की कुछ बूंदों के साथ। पी.सी.आर. परीक्षण की आवश्यकताएं विशिष्ट परीक्षण के आधार पर व्यापक रूप से भिन्न हो सकती हैं, इसलिए नमूना लेने से पहले प्राप्तकर्ता प्रयोगशाला से परामर्श करने की दृढ़ता से सिफारिश की जाती है।

कुछ परीक्षण नियम किसी व्यक्ति के अंगों के नमूनों को एक साथ पूलिंग की अनुमति दे सकते हैं, हालांकि, आमतौर पर यह बेहतर होता है कि प्रत्येक ऊतक को शिपिंग के लिए अलग, स्पष्ट रूप से लेबल किए गए बैग या ट्यूबों में एकत्र किया जाए। आंत के नमूनों को कभी भी अन्य ऊतकों के नमूनों के साथ एक कंटेनर में नहीं मिलाया जाना चाहिए। अधिकांश माइक्रोबायोलॉजिकल परीक्षणों के लिए ऊतकों और तरल पदार्थों को शिपमेंट से पहले फ्रोजन किया जा सकता है, लेकिन यदि नमूनों को ठंडा करके संग्रह के 24 घंटे के भीतर सीधे प्रयोगशाला में पहुंचाया जा सकता है, तो फ्रीजिंग आमतौर पर अवांछनीय है। इस नियम के अपवादों में कुछ विषाक्त पदार्थों का विश्लेषण शामिल है, जैसे कि क्लोस्ट्रीडियम परफिरिंजेंस और सी बोटुलिनम जिनमें विषाक्त पदार्थ के क्षरण को रोकने के लिए संग्रह के तुरंत बाद फ्रीजिंग आवश्यक है। पर्याप्त क्लेन्ट प्रदान किया जाना चाहिए ताकि नमूने प्रयोगशाला तक पहुँचने तक ठंडे रहें। परजीवी परीक्षण के लिए मल के नमूने उचित रूप से सीलबंद कंटेनरों में ठंडे करके भेजे जाने चाहिए। फ्रीजिंग का नियमित फ्लोटेसन या सेडिमेंटेशन परीक्षणों पर बहुत कम प्रभाव पड़ सकता है, लेकिन यह नेमाटोड लार्वा के लिए बेयरमैन विश्लेषण की संभावना को समाप्त कर देगा। पहचान के लिए भेजे जा रहे बाहरी परजीवियों या नेमाटोड को 70% अल्कोहल वाले वायल्स में भेजा जाना चाहिए।

॥ जय माँ सीतला ॥

कृषक सेवा केन्द्र

खाद बीज एवं कीटनाशक दवाओं के थोक एवं खेजि विक्रेता

हमारे यहाँ धान, गेहूँ, सोयाबीन, सरसों, तिली एवं सब्जियों के बीज, खाद एवं उच्च कोटी की कीटनाशक दवाईयाँ उचित मूल्य पर मिलती है।

प्रो. रामकृष्ण गुर्जर
(बामोर वाले)

मो. 9098945189

पता : पशु अस्पताल के सामने, भितरवार रोड, डबरा, ग्वालियर



ज्योति कहार (पीएच.डी. रिसर्च स्कॉलर)

एनआरएम विभाग/कृषि विज्ञान प्रभाग

महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय

चित्रकूट सतना मध्य प्रदेश -485334

मक्का के लिए रेज्ड बेड (उठी हुई क्यारी) विधि

रेज्ड बेड (Raised Bed) विधि मक्का की एक आधुनिक एवं संसाधन-संरक्षण आधारित खेती की तकनीक है, जिसमें फसल को 15-20 सेंमी ऊँची उठी हुई क्यारियों पर तथा उनके बीच 30-40 सेंमी चौड़ी नालियों के साथ उगाया जाता है। इस प्रणाली में सिंचाई केवल नालियों में की जाती है, जिससे जल का कुशल उपयोग होता है और जलभराव की समस्या कम होती है। सामान्यतः एक पंक्ति वाले बेड की चौड़ाई 67-75 सेंमी तथा दो पंक्ति वाले बेड की चौड़ाई 100-120 सेंमी रखी जाती है। यह तकनीक जड़ों के बेहतर विकास, पोषक तत्वों के अधिक कुशल उपयोग, मृदा संरक्षण, जल उपयोग दक्षता में वृद्धि तथा 10-20% तक अधिक उपज प्राप्त करने में सहायक है। साथ ही यह कृषि यंत्रीकरण, खरपतवार प्रबंधन तथा जलवायु-स्मार्ट कृषि के लिए भी उपयुक्त मानी जाती है। सीमित जल संसाधनों एवं बदलती जलवायु परिस्थितियों में रेज्ड बेड विधि मक्का की टिकाऊ एवं लाभकारी खेती के लिए एक प्रभावी विकल्प है।

मापदण्ड

अनुशंसित आकार

बेड की चौड़ाई (एक पंक्ति)	67-75 सेंमी
बेड की चौड़ाई (दो पंक्ति)	100-120 सेंमी
बेड की ऊँचाई	15-20 सेंमी
नाली (Furrow) की चौड़ाई	30-40 सेंमी
पौधे से पौधे की दूरी	20-25 सेंमी
बुवाई की गहराई	4-6 सेंमी

रेज्ड बेड (Raised Bed) विधि मक्का उत्पादन की एक आधुनिक एवं संसाधन-संरक्षण आधारित कृषि तकनीक है। इस पद्धति में फसल को उठी हुई क्यारियों पर बोया जाता है तथा सिंचाई का जल क्यारियों के बीच बनी नालियों (Furrows) में प्रवाहित किया जाता है। इससे जल, पोषक तत्व एवं मृदा का अधिक कुशल उपयोग होता है तथा फसल की वृद्धि एवं उत्पादकता में उल्लेखनीय सुधार होता है। इसके प्रमुख लाभ निम्नलिखित हैं

1. जल की बचत एवं जल उपयोग दक्षता

- * सिंचाई का जल केवल नालियों में दिया जाता है, जिससे जल की बर्बादी कम होती है।
- * पारंपरिक समतल बुवाई की तुलना में लगभग 20-30% तक सिंचाई जल की बचत हो सकती है।
- * जल उपयोग दक्षता (Water Use Efficiency) में वृद्धि होती है।

2. जलभराव की समस्या में कमी

- * उठी हुई क्यारियों पर पौधे होने के कारण अतिरिक्त वर्षा या

मक्का (Zea mays L.) में रेज्ड बेड (उठी हुई क्यारी) विधि के प्रमुख लाभ

- * सिंचाई का पानी नालियों में निकल जाता है।
- * जड़ों में ऑक्सीजन की पर्याप्त उपलब्धता बनी रहती है।
- * जड़ गलन एवं अन्य जलजनित रोगों की संभावना कम हो जाती है।

3. जड़ों का बेहतर विकास

- * मिट्टी भुरभुरी एवं हवादार बनी रहती है।
- * जड़ें अधिक गहराई तक फैलती हैं।
- * पौधे पानी एवं पोषक तत्वों का अधिक कुशलता से अवशोषण करते हैं।

4. पोषक तत्वों की उपयोग दक्षता में वृद्धि

- * उर्वरकों का सही स्थान पर प्रयोग होने से नाइट्रोजन, फॉस्फोरस एवं पोटैश का उपयोग बेहतर होता है।
- * पोषक तत्वों की हानि (Leaching एवं Runoff) कम होती है।
- * उर्वरकों की उपयोग दक्षता बढ़ती है।

5. अधिक एवं गुणवत्तापूर्ण

उत्पादन

- * पौधों की समान वृद्धि होती है।
- * भुंटे बड़े एवं दानों का भराव अच्छा होता है।
- * अनुकूल परिस्थितियों में उत्पादन में 10-20% तक वृद्धि देखी गई है।

6. खरपतवार नियंत्रण में सुविधा

- * क्यारियों एवं नालियों के कारण यांत्रिक निराई-गुड़ाई सरल होती है।
- * खरपतवारों का प्रबंधन अधिक प्रभावी ढंग से किया जा सकता है।
- * खरपतवारनाशी के उपयोग की आवश्यकता कम हो सकती है।

7. मृदा संरक्षण

- * वर्षा के समय मृदा अपरदन (Soil Erosion) कम होता है।
- * मृदा की संरचना एवं भौतिक गुण बेहतर बने रहते हैं।
- * कार्बनिक पदार्थों के संरक्षण में सहायता मिलती है।

8. कृषि यंत्रीकरण में सुविधा

- * बेड प्लांटर, रिजर एवं अन्य कृषि यंत्रों का उपयोग आसानी से किया जा सकता है।
- * बुवाई, उर्वरक प्रयोग, सिंचाई एवं कटाई जैसे कार्य अधिक व्यवस्थित होते हैं।

- * श्रम एवं समय की बचत होती है।

9. ऊर्जा एवं लागत में कमी

- * सिंचाई के लिए कम पानी एवं कम ऊर्जा की आवश्यकता होती है।
- * ईंधन एवं श्रम लागत में कमी आती है।
- * उत्पादन लागत घटने से शुद्ध लाभ बढ़ता है।

10. जलवायु परिवर्तन के प्रति अनुकूल तकनीक

- * अधिक वर्षा की स्थिति में जलभराव से सुरक्षा मिलती है।
- * सूखे की स्थिति में नमी संरक्षण बेहतर होता है।
- * यह तकनीक जलवायु-स्मार्ट (Climate-Smart) कृषि के लिए उपयुक्त मानी जाती है।

11. फसल प्रबंधन में सुविधा

- * उर्वरकों एवं सूक्ष्म पोषक तत्वों का सटीक प्रयोग संभव होता है।
- * कीट एवं रोगों की निगरानी तथा नियंत्रण सरल हो जाता है।
- * खेत में आवागमन एवं अन्य कृषि कार्य सुविधाजनक होते हैं।

12. संरक्षण कृषि के लिए उपयुक्त

- * जीरो टिलेज (Zero Tillage), न्यूनतम जुताई (Minimum Tillage) एवं फसल अवशेष प्रबंधन (Residue Management) के साथ आसानी से अपनाई जा सकती है।
- * मृदा स्वास्थ्य एवं दीर्घकालीन उत्पादकता में सुधार होता है।

13. आर्थिक लाभ

- * सिंचाई एवं उत्पादन लागत में कमी आती है।
- * जल एवं उर्वरकों की बचत से लाभ बढ़ता है।
- * अधिक उत्पादन एवं बेहतर गुणवत्ता के कारण किसानों की आय में वृद्धि होती है।

निष्कर्ष

रेज्ड बेड (उठी हुई क्यारी) विधि मक्का उत्पादन के लिए एक वैज्ञानिक, टिकाऊ एवं लाभकारी तकनीक है। यह जल संरक्षण, मृदा स्वास्थ्य, पोषक तत्वों की उपयोग दक्षता, बेहतर जड़ विकास, जलभराव नियंत्रण तथा उच्च उपज सुनिश्चित करती है। सीमित संसाधनों की उपलब्धता और बदलती जलवायु परिस्थितियों में यह तकनीक किसानों के लिए अधिक उत्पादन, कम लागत और अधिक लाभ प्राप्त करने का प्रभावी विकल्प सिद्ध हो रही है।



डॉ. नवनीत मौर्य (सहायक प्रोफेसर)

सरदार पटेल विश्वविद्यालय, बालाघाट (म.प्र.)

कृषि में कृत्रिम बुद्धिमत्ता : एआई से स्मार्ट खेती की ओर



प्रस्तावना - भारत की अर्थव्यवस्था की रीढ़ कृषि है। देश की 54% आबादी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कृषि पर निर्भर है। लेकिन पिछले 20 सालों में जलवायु परिवर्तन, घटती उपजाऊ भूमि, पानी की कमी, कीट-रोग और बाजार की अस्थिरता ने खेती को जोखिम भरा बना दिया है। इसी समय दुनिया में चौथी औद्योगिक क्रांति आई - जिसे हम Artificial Intelligence यानी कृत्रिम बुद्धिमत्ता कहते हैं। AI वह तकनीक है जिसके द्वारा मशीनें इंसान की तरह सोचती हैं, सीखती हैं और निर्णय लेती हैं। पहले खेती "अनुभव आधारित" थी। अब ये "डेटा आधारित" हो रही है। AI, Big Data, IoT, Drone और Satellite के मिलने से "Smart Agriculture" या "Precision Farming" का युग शुरू हुआ है। भारत सरकार का लक्ष्य 2025 तक कृषि में AI का उपयोग 3 गुना करना है।

1. कृत्रिम बुद्धिमत्ता : AI कंप्यूटर विज्ञान की एक शाखा है। इसका उद्देश्य ऐसी मशीन बनाना है जो देख सके, सुन सके, सीख सके और समस्या सुलझा सके।

2. कृषि में AI के 10 प्रमुख उपयोग

i. मृदा और फसल निगरानी - पहले किसान पूरे खेत में घूमकर देखते थे। अब खेत में लगे IoT सेंसर मिट्टी की नमी, pH, NPK, तापमान हर 10 मिनट में डेटा भेजते हैं। AI इस डेटा को एनालाइज करके बताता है "इस कोने में नाइट्रोजन कम है, यहां यूरिया डालो"। उदाहरण: Fasal, CropIn, DeHaat

ii. कीट और रोग की शीघ्र पहचान : रोग फैलने के बाद इलाज महंगा होता है। AI आधारित ऐप में किसान पत्ते की फोटो खींचता है। Computer Vision 3 सेकंड में बता देता है कि ये "Leaf Blight" है और कौन सी दवा डालें। उदाहरण: Plantix App - 17 फसलों के 400+ रोग पहचानता है। ICAR + Microsoft का "AI Sowing App" आंध्र में कपास के लिए।

iii. सटीक खेती : "सही जगह, सही समय, सही मात्रा" - यही Precision Farming है। AI ड्रोन से पूरे खेत का NDVI मैप बनाता है। लाल रंग = स्वस्थ फसल, पीला = पानी की कमी। इसके बाद सिर्फ उसी जगह स्प्रे होता है। फायदा: 30% पानी, 25% खाद की बचत। 4. मौसम और जलवायु पूर्वानुमान उदाहरण: Meghdoot App, IBM Watson

iv. उपज और उत्पादन पूर्वानुमान : पिछले 10 साल का मौसम, मिट्टी, बीज का डेटा + Satellite इमेज = AI बता देता है जिले में गेहूं का उत्पादन 22 लाख टन होगा। इससे सरकार भंडारण और MSP तय करती है।

1. स्वचालित मशीनें और रोबोट : AI वाले ट्रैक्टर बिना ड्राइवर के चल सकते हैं। "Weeding Robot"

खरपतवार पहचान कर सिर्फ उसे उखाड़ता है। "Harvesting Robot" पके फल तोड़ता है।

vi. सिंचाई प्रबंधन : जब मिट्टी में नमी 30% से कम होगी तभी मोटर चलेगी। इससे बिजली और पानी दोनों बचते हैं।

3. किसानों को AI से 7 बड़े फायदे

i. उत्पादन में 20-40% वृद्धि : समय पर रोग पकड़ में आने से।

ii. लागत में 30% कमी : सिर्फ जरूरत पर ही इनपुट का उपयोग।

iii. जोखिम प्रबंधन : सूखा, बाढ़, मंडी गिरावट का पहले अलर्ट।

iv. पानी की बचत : ड्रिप + AI से 50% तक पानी बचा।

4. चुनौतियां और बाधाएं

i. डिजिटल डिवाइड : गांव में 4%, बिजली और

स्मार्टफोन अभी भी समस्या है। NSSO के अनुसार सिर्फ 32% किसान स्मार्टफोन उपयोग करते हैं।

ii. डिजिटल साक्षरता : 70% छोटे किसान ऐप नहीं चला पाते। भाषा की समस्या।

iii. उच्च लागत : 1 ड्रोन 5-10 लाख का। सेंसर सेट 50 हजार का। छोटे किसान नहीं खरीद सकते।

iv. डेटा की समस्या : AI को ट्रेनिंग हेतु "स्थानीय भाषा+स्थानीय फसल" का डेटा चाहिए। भारत में ये कम है।

v. भरोसे की कमी : किसान को लगता है "मशीन से ज्यादा मैं जानता हूँ"।

vi. निजता का मुद्दा : किसान का डेटा कंपनी के पास जाएगा तो दुरुपयोग हो सकता है।

7. समाधान और सुझाव

i.. KVK + ATMA के माध्यम से प्रशिक्षण : हर ब्लॉक में "AI साक्षरता केंद्र"।

ii. किराये पर मॉडल : Custom Hiring Centre से किसान 500 रु में ड्रोन किराये पर ले।

iii. सब्सिडी : PM-KUSUM की तरह AI उपकरणों पर 50% सब्सिडी।

iv. क्षेत्रीय भाषा में ऐप : हिंदी, मराठी, तमिल में वॉइस आधारित AI।

v. FPO को मजबूत करना : 10 किसान मिलकर 1 AI सेट खरीदें।

vi. डेटा सुरक्षा कानून : किसान का डेटा किसान का ही रहे।

8. निष्कर्ष : AI जादू नहीं है, ये एक औजार है। अगर सही नीति, सही ट्रेनिंग और सही सहयोग से इसे अपनाया जाए तो ये "दूसरी हरित क्रांति" ला सकता है। लक्ष्य सिर्फ उत्पादन बढ़ाना नहीं, बल्कि किसान की आय दोगुनी करना है।

सत्येन्द्र (बेरू वाले) Mob. 9425630881 9691896745

श्री जीवन कृषक सेवा केन्द्र

हमारे यहाँ सभी प्रकार के खेती के बीज, कीटनाशक खरपतवार नाशक दवाईयाँ एवं खाद उचित रेट पर मिलता है।

पता— पिछोर तिराहा, ग्वालियर रोड, डबरा, जिला—ग्वालियर (म.प्र.)



डॉ. राकेश कुमार बरहैया
डॉ. राहुल शर्मा, डॉ. निधि गुप्ता
डॉ. पायल जैन, डॉ. शशि टेकाम
(सहायक प्राध्यापक) पशु चिकित्सा एवं
पशुपालन महाविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

कम लागत में प्रोटीन की आपूर्ति (पशु चारे का यूरिया उपचार)

हमारे देश में तेजी से बढ़ती हुई जनसंख्या के साथ दूध की मांग लगातार बढ़ती जा रही है। संकर गायों की नस्लों में दुग्ध उत्पादन की क्षमता बहुत अधिक है। पर इस क्षमता का पूरा लाभ उठाने के लिये पशुओं को भरपूर अच्छा आहार मिलना बहुत जरूरी है, परंतु दुर्भाग्यवश देश के अधिकतर पशुओं को उनकी आवश्यकतानुसार पोषण आहार नहीं मिल पाता है। इसका मुख्य कारण है हरे चारे एवं दाने की कमी। साथ ही पशुओं को खिलाये जाने वाले चारे में भूसे का अहम योगदान होता है परंतु इसमें उपस्थित पौष्टिक तत्व लिगनिन के अंदर जकड़े रहते हैं जो पशु के पाचन तंत्र द्वारा नहीं लिए जा सकते। सभी प्रकार के मूलभूत दैनिक क्रियाओं के लिए प्रोटीन की आवश्यकता होती है और दुग्ध उत्पादन के लिए ये अति आवश्यक है। ये शारीरिक ऊतकों के क्षति को ठीक करने एवं कोशिकाओं के निर्माण हेतु मूल इकाई (एमिनो अम्लों) की पूर्ति करते हैं।

पशु शरीर में बहुत कम मात्रा में प्रोटीन का संचय होता है और इसी कारण से इन्हें लगातार प्रोटीन देने की आवश्यकता होती है। प्रोटीन हीनता से वर्धन, प्रजनन, उत्पादन आदि सभी प्रभावित होते हैं। कम लागत में प्रोटीन की आंशिक पूर्ति के लिए यूरिया जैसे अप्रोटीनिया नाइट्रोजन का उपयोग किया जा सकता है। सूखे चारे का यूरिया द्वारा रासायनिक उपचार अनुसंधान के द्वारा यह पाया गया है कि अगर सूखे चारे को यूरिया के द्वारा उपचारित कर दिया जाता है तो उसकी पौष्टिकता और पाचकता में वृद्धि हो जाती है और पशु उपचारित चारे को बड़े चाव से व अधिक मात्रा में खाते हैं, जिससे उनके शरीर को पौष्टिक तत्व काफी अधिक मात्रा में मिलते हैं। जो कि उनके उत्पादन में वृद्धि करते हैं।

सिद्धांत

पशुपालकों को ये जानना जरूरी है कि यूरिया कैसे प्रोटीन के आपूर्ति करता है। सूक्ष्मजीवों द्वारा यूरिया के अपघटन से अमोनिया उत्पन्न होती है, ये सूक्ष्मजीव समान्यतः नमी युक्त भूसे में पाये जाते हैं जो बाद में यूरियेज एंजाइम उत्पन्न करते हैं। अमोनिया भूसे में अवशोषित हो जाती है जिससे इसमें नाइट्रोजन की मात्रा बढ़ जाती है इस उपचार से भूसे में रेशों की पाचकता भी अधिक हो जाती है। रोमान्थी पशुओं के रूमेन (पेट का एक भाग) में बहुत प्रकार के सूक्ष्म जीव उपस्थित होते हैं जो यूरिया (अमोनिया) का उपयोग कर इसे अपने सूक्ष्माण्विक प्रोटीन में परिवर्तित कर देते हैं जिसका उपयोग अंततः पशुओं द्वारा किया जाता है।

यूरिया उपयोग करने की विधि

भूसे का यूरिया उपचार- भूसे में प्रोटीन की मात्रा अत्यधिक कम होती है एवं उसकी सुपाच्यता भी कम होती है। 100 कि. ग्रा. भूसे को तैयार करने के लिए 4 कि. ग्रा. यूरिया

का उपयोग करना चाहिए। सर्वप्रथम भूसे को साफ-सुथरे फर्श या भिछवन पर अच्छी तरह से फैला लें। 4 कि. ग्रा. यूरिया को 50 ली. स्वच्छ पानी में अच्छे से घोल ले, फिर इस घोल को भूसे के उपर छिड़काव करते हुए अच्छे से मिलाते रहें। यूरिया का संपूर्ण भूसे में एक सामान रूप से मिलना आवश्यक है। इसके बाद उपचारित भूसे को अच्छी तरह से दबाते हुए गुम्बद के आकार में ले आए। फिर पूरे भूसे को चारों तरफ से पॉलीथिन द्वारा अच्छे से ढक दे ताकि हवा का आवागमन ना हो सके जिससे की बाद में बनने वाली अमोनिया गैस बाहर न निकल सके। इसके पश्चात् भूसे को कम से कम तीन हफ्तों के किये छोड़ दें। यूरिया उपचारित भूसे का रंग पीले से गहरा भूरा हो जाता है। फिर यह रोमान्थी पशुओं को खिलाने हेतु तैयार हो जाता है। यह उपचार विधि किसी बड़े छायादार वृक्ष के नीचे करने पर बेहतर परिणाम देती है, साथ ही, वर्षा ऋतु या बारिश के दिनों में यूरिया उपचार (urea treatment) नहीं करना चाहिए।

इस तकनीक का महत्त्व क्या है

अनुसंधान द्वारा ज्ञात हुआ है कि यूरिया उपचारित भूसा खिलाने से बछड़ों की आहार ग्राह्यता में 10 से 20% वृद्धि होती है तथा इनमें अच्छी वृद्धि देखने को मिलती है, इसको खिलाने से पशुओं का दुग्ध उत्पादन 1 से 1.5 लीटर तक बढ़ जाता है। शुष्क पदार्थ पचनशीलता एवं सकल पचनीय पोषक तत्व 10% तक बढ़ जाती है इसी के साथ पचनशील प्रोटीन कि मात्रा बढ़कर लगभग तीन गुना हो जाती है। यूरिया उपचारित चारे को पशु आहार में सम्मिलित करने से दाने में कमी की जा सकती है जिससे दूध के उत्पादन की लागत कम हो सकती है। उपचारित चारा नरम व स्वादिष्ट होने के कारण पशु उसे खूब

चाव से खाते हैं तथा चारा बर्बाद नहीं होता।

खिलाने से पहले कुछ महत्वपूर्ण ध्यान रखने योग्य बातें

1. यूरिया उपचारित भूसे को बछड़ों या कम उम्र के रोमान्थी पशुओं को नहीं खिलाना चाहिए।
2. खिलाने से पहले भूसे को लगभग 20 मिनट तक खुली हवा में फैला दें, जिससे उसकी गैस उड़ जाए।
3. यूरिया उपचारित भूसा अरोमन्थी पशु जैसे सुअर व घोड़ों को नहीं खिलाना चाहिए।
4. भूसे खिलाने की मात्रा को धीरे- धीरे बढ़ाना चाहिए।
5. दुधारू व कार्यवाहक पशुओं (गाय व बैल) को 4-5 कि. ग्रा./जानवर प्रतिदिन तक दिया जा सकता है।
6. प्रोटीन की जगह यूरिया का सही उपयोग करने के लिए, आहार में घुलनशील शर्करा जैसे मोलासेस आदि देना चाहिए या उनकी मात्रा को बढ़ाना चाहिए।
7. गंधक (सल्फर) युक्त एमिनो अम्ल को भी देना चाहिए।
8. यूरिया उपचारित भूसे को देते समय कुल राशन में से सान्द्र आहार (कंसंट्रेट) की मात्रा को 1 कि. ग्रा तक कम कर सकते हैं।
9. पर्याप्त मात्रा में साफ पीने योग्य पानी की व्यवस्था होनी चाहिए।
10. कुल आहार में यूरिया की मात्रा 11 से अधिक नहीं होना चाहिए।

किसी कारणवश यूरिया की विषाक्तता हो जाये तो, पशु को ज्यादा से ज्यादा ठंडा पानी पिलाना चाहिये, शर्करा ज्यादा खिलाना चाहिये एवं चिकित्सक परामर्श अनुसार 3-4 ली. तक तनुकरित एसिटिक एसिड या विनेगर दिया जा सकता है।

विवेक राजौरिया !! श्री !!
(सातवई वाले)

Mob.: 9827254232
8109320262
9926297033



श्री सिद्धगुरु खाद बीज भण्डार

खाद, बीज एवं कीटनाशक दवाओं के थोक व खेरीज विक्रेता

हमारे यहाँ धान, गेहूँ, सोयाबीन, सरसों, तिली एवं सब्जियों के बीज, खाद एवं उच्चकोटि की कीटनाशक दवाईयाँ उचित मूल्य पर मिलती हैं।

गौतम पेट्रोल पम्प के सामने, भितरवार रोड, डबरा



अमित कुमार झा, राजेश कुमार वांदे, सुलोचना सेन
शेख टी. जे., राजीव रंजन, बालेश्वरी दीक्षित एवं मानसी शुक्ला
पशु चिकित्सा विज्ञान एवं पशुपालन महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

सूअर पालन (Pig Farming) एक अत्यधिक लाभकारी व्यवसाय है, लेकिन इसकी सफलता पूरी तरह से इस बात पर निर्भर करती है कि आप पिगलेट्स (सूअर के बच्चों) का प्रजनन और प्रबंधन (Breeding Management) कितनी कुशलता से करते हैं। पिगलेट्स के जन्म से लेकर उनके बड़े होने तक का समय सबसे संवेदनशील होता है। इस अवधि में की गई एक छोटी सी लापरवाही मृत्यु दर (Mortality Rate) को बढ़ा सकती है, जिससे सीधे तौर पर आपका मुनाफा प्रभावित होता है।



1. प्रजनन प्रबंधन (Breeding Management)- सफल पिगलेट्स उत्पादन की नींव एक मजबूत और वैज्ञानिक प्रजनन योजना पर टिकी होती है। इसमें मादा सूअर (Sow) और नर सूअर (Boar) का सही चयन और मिलन (Mating) सबसे महत्वपूर्ण है।

नर और मादा सूअर का चयन

* **मादा सूअर (Sow/Gilt) का चयन:** प्रजनन के लिए चुनी गई मादा के कम से कम 12 से 14 थन (Teats) होने चाहिए ताकि वह सभी बच्चों को अच्छे से दूध पिला सके। वह शांत स्वभाव की और अच्छे स्वास्थ्य वाली होनी चाहिए।

नर सूअर (Boar) का चयन: नर सूअर शारीरिक रूप से मजबूत, फुर्तीला और आक्रामक (प्रजनन के प्रति) होना चाहिए। इसके पिछले पैर मजबूत होने चाहिए ताकि मारटिंग के समय कोई समस्या न हो।

प्रजनन की सही उम्र और वजन- मादा सूअर (Gilt) को उसके पहले प्रजनन के लिए तब तैयार करना चाहिए जब उसकी उम्र 8 से 9 महीने हो और वजन कम से कम 100 से 120 किलोग्राम हो। बहुत कम उम्र में प्रजनन करने से बच्चों का आकार छोटा होता है और मादा के स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ता है।

गर्भकाल (Gestation Period)- सूअर का गर्भकाल औसतन 114 दिनों का होता है, जिसे याद रखने का एक आसान तरीका है: 3 महीने, 3 सप्ताह और 3 दिन। इस दौरान गर्भवती मादा को तनावमुक्त माहौल और उच्च गुणवत्ता वाला पौष्टिक आहार देना चाहिए।

2. प्रसव कक्ष की तैयारी (Farrowing House Preparation)- मादा के बच्चे देने की प्रक्रिया को फैरोइंग (Farrowing) कहा जाता है। प्रसव से लगभग 7-10 दिन पहले मादा को एक अलग और साफ-सुथरे प्रसव कक्ष (Farrowing Pen) में स्थानांतरित कर देना चाहिए।

* **सफाई और कीटाणुशोधन:** प्रसव कक्ष को ब्लिचिंग पाउडर या उपयुक्त कीटाणुनाशक से अच्छी तरह धोकर सुखा लेना चाहिए।

* **बिछौना (Bedding):** फर्श पर सूखी घास, पुआल या लकड़ी का बुरादा बिछाएं ताकि बच्चों को गर्माहट मिल सके।

* **गार्ड रेल्स (Guard Rails):** प्रसव कक्ष की दीवारों के सहारे लोहे के पाइप या लकड़ी की रेलिंग (फर्श से 8-10 इंच ऊपर) लगानी चाहिए। यह पिगलेट्स को मादा के नीचे दबकर मरने से बचाती है।

3. नवजात पिगलेट्स का तत्काल प्रबंधन (Immediate Care of Newborn Piglets)- जैसे ही पिगलेट्स का जन्म होता है, अगले 24 से 48 घंटे उनके जीवित रहने के लिए सबसे महत्वपूर्ण होते हैं।

अ. श्वसन मार्ग की सफाई-जन्म के तुरंत बाद पिगलेट्स के मुंह और नाक पर जमा श्लेष्मा (Mucus) या झिल्ली को साफ करें ताकि वे आसानी से सांस ले सकें। यदि कोई बच्चा सांस नहीं ले पा रहा है, तो उसकी छाती को धीरे से थपथपाएं।

ब. नाभि की देखभाल (Navel Cord Care)-नाभि को शरीर से लगभग 1 से 2 इंच छोड़कर साफ कैंची से काट दें। संक्रमण (Navel Ill) से बचाने के लिए कटी हुई नाभि पर तुरंत आयोडीन टिंचर (Tincture of Iodine) लगाएं।

स. कोलोस्ट्रम (खीस/पहला दूध) पिलाना-जन्म के 30 मिनट के भीतर पिगलेट्स को मादा का पहला गाढ़ दूध (Colostrum) मिलना अनिवार्य है। इस दूध में प्रचुर मात्रा में एंटीबॉडीज (Antibodies) होती हैं, जो बच्चों को बीमारियों से लड़ने की रोग प्रतिरोधक क्षमता प्रदान करती हैं। जो बच्चे कमजोर हैं, उन्हें पकड़कर थन तक पहुंचाना चाहिए।

4. पिगलेट्स की सामान्य स्वास्थ्य और शारीरिक देखभाल

शुरुआती दिनों में पिगलेट्स को विशेष शारीरिक देखभाल की आवश्यकता होती है, जिसमें निम्नलिखित प्रक्रियाएं शामिल हैं:

सूअर के बच्चों (पिगलेट्स) की देखभाल, पोषण और सफल प्रजनन प्रबंधन

तापमान नियंत्रण (Brooding/Temperature Management)-नवजात पिगलेट्स के शरीर में वसा (Fat) की कमी होती है, जिससे उन्हें बहुत जल्दी ठंड लग जाती है। * पहले सप्ताह में प्रसव कक्ष का तापमान 32°C से 35°C होना चाहिए। * इसके लिए इन्फ्रारेड बल्ब (Infrared Bulbs) या हीटिंग पैड का उपयोग करें। * जैसे-जैसे बच्चे बड़े होते हैं, तापमान को धीरे-धीरे कम किया जा सकता है।

दांत काटना (Teat Clipping / Tooth Clipping)-पिगलेट्स के जन्म के समय 8 बहुत नुकीले सुई जैसे दांत (Needle Teeth) होते हैं। दूध पीते समय ये दांत मादा के थनों को घायल कर सकते हैं या आपस में लड़ते समय एक-दूसरे को चोट पहुंचा सकते हैं। इसलिए, जन्म के 24 घंटे के भीतर एक विशेष 'टूथ क्लिपर' की मदद से इन दांतों के केवल नुकीले सिरों को काट देना चाहिए। ध्यान रहे कि मसूड़ों को चोट न पहुंचे।

आयरन का इंजेक्शन (Iron Injection)-सूअर के दूध में आयरन (Loha) की मात्रा बहुत कम होती है, और पिगलेट्स बहुत तेजी से बढ़ते हैं। यदि उन्हें अतिरिक्त आयरन न मिले, तो वे एनीमिया (रक्तअल्पता) का शिकार हो जाते हैं, जिसे 'पिगलेट एनीमिया' कहा जाता है। इससे बचाव के लिए जन्म के 3 से 4 दिनों के भीतर प्रत्येक पिगलेट को 100 से 200 मिलीग्राम आयरन डेक्सट्रान (Iron Dextran) का इंजेक्शन मांसपेशियों में (Intramuscular) देना चाहिए।

पूंछ काटना (Tail Docking)-घने माहौल में रहने पर पिगलेट्स कभी-कभी एक-दूसरे की पूंछ चबाने लगते हैं (Tail Biting), जिससे संक्रमण फैल सकता है। इससे बचने के लिए जन्म के 1-2 दिनों के भीतर पूंछ का दो-तिहाई हिस्सा काट दिया जाता है और वहां एंटीसेप्टिक लगाया जाता है।

5. पिगलेट्स का पोषण प्रबंधन (Nutritional Management)-पिगलेट्स के त्वरित और स्वस्थ विकास के लिए उनका सही पोषण बेहद जरूरी है।

क्रीप फीडिंग (Creep Feeding)-जब पिगलेट्स लगभग 10 से 14 दिन के हो जाते हैं, तो केवल मादा का दूध उनकी बढ़ती पोषण संबंधी आवश्यकताओं के लिए पर्याप्त नहीं होता। इस समय उन्हें एक विशेष प्रकार का सुपाच्य और उच्च प्रोटीन युक्त दाना दिया जाता है, जिसे क्रीप फीड (Creep Feed) कहते हैं। * यह दाना एक छोटे घेरे (Creep Area) में रखा जाता है जहाँ केवल बच्चे जा सकते हैं।

6. बधियाकरण (Castration)-जिन नर पिगलेट्स को भविष्य में प्रजनन (Breeding) के लिए नहीं रखना है और केवल मांस उत्पादन (Meat Production) के लिए पालना है, उनका बधियाकरण कर देना चाहिए।

सही समय: यह प्रक्रिया जन्म के 1 से 2 सप्ताह के भीतर कर लेनी चाहिए, क्योंकि इस उम्र में बच्चों को दर्द कम होता है, खून कम बहता है और घाव जल्दी भरता है।

लाभ: बधिया किए गए नर सूअर शांत होते हैं, तेजी से वजन बढ़ाते हैं और उनके मांस से एक विशेष प्रकार की अप्रिय गंध (Boar Taint) नहीं आती।

7. वीनिंग या दूध छुड़ाना (Weaning Management)-मादा से पिगलेट्स को अलग करने की प्रक्रिया को 'वीनिंग' कहते हैं। आधुनिक सूअर पालन में यह एक अत्यंत तनावपूर्ण चरण होता है।

सही समय: आमतौर पर पिगलेट्स को 28 से 35 दिनों की उम्र में (जब उनका वजन 7-8 किलोग्राम हो जाए) मां से अलग कर दिया जाता है।

प्रबंधन: तनाव को कम करने के लिए बच्चों को उसी पेन (कमरे) में रहने दें और मादा सूअर को वहां से हटा दें। उन्हें वही क्रीप फीड देना जारी रखें जो वे पहले से खा रहे थे। पानी में विटामिन और इलेक्ट्रोलाइट्स मिलाने से उनका तनाव कम होता है।

8. रोग नियंत्रण और टीकाकरण (Disease Control and Vaccination)

पिगलेट्स में बीमारियों के प्रति संवेदनशीलता अधिक होती है। एक अच्छी जैव-सुरक्षा (Biosecurity) और टीकाकरण तालिका से नुकसान को टाला जा सकता है।

प्रमुख बीमारियां:

1.पिगलेट डायरिया (Scours): यह गंदगी और बैक्टीरिया (जैसे श्व. फ्लेवड) के कारण होता है। प्रसव कक्ष को सूखा और साफ रखकर इससे बचा जा सकता है।

2.स्वाइन फीवर (Swine Fever): यह एक अत्यंत घातक वायरल बीमारी है। इससे बचाव के लिए 6-8 सप्ताह की उम्र में पिगलेट्स को स्वाइन फीवर का टीका अवश्य लगाएं।

निष्कर्ष-सूअर पालन व्यवसाय की रीढ़ पिगलेट्स का कुशल प्रबंधन ही है। जन्म के समय सही देखभाल, उचित तापमान, समय पर आयरन का इंजेक्शन, पौष्टिक क्रीप फीड और वैज्ञानिक तरीके से दूध छुड़ाना (Weaning) ही वह चाबियां हैं जो पिगलेट्स की मृत्यु दर को 5% से भी कम रख सकती हैं। यदि एक पशुपालक इन सभी वैज्ञानिक तकनीकों को अपनाता है, तो वह न केवल अपने पशुओं को स्वस्थ रख सकता है, बल्कि अपने व्यवसाय से अधिकतम मुनाफा भी कमा सकता है।



श्रीमती ममता व्यास सहायक प्रोफेसर,
मंदसौर विश्वविद्यालय

डॉ. विपुल सिंह सहायक प्रोफेसर,
मंदसौर विश्वविद्यालय

प्रकाश रेगर सहायक प्रोफेसर, ज्ञानोदय
विश्वविद्यालय नीमच

चंचल भमोलिया प्रयोगशाला सहायक
मंदसौर विश्वविद्यालय

अरुण एम.एस.सी. (कृषि) शस्य विज्ञान
मंदसौर विश्वविद्यालय

कृषि विस्तार सेवाएँ-अर्थ और आवश्यकता- कृषि विस्तार का अर्थ है-किसानों तक नई तकनीकों, बेहतर बीजों, आधुनिक सिंचाई विधियों, जलवायु-अनुकूल खेती पद्धतियों और बाजार की जानकारी पहुँचाना। यह केवल जानकारी देने का काम नहीं, बल्कि किसानों को शिक्षित, प्रशिक्षित और सक्षम बनाने की प्रक्रिया है।

अध्ययन बताते हैं कि जिन किसानों तक विस्तार सेवाएँ पहुँचती हैं, उनकी आय में उल्लेखनीय वृद्धि होती है। मध्य प्रदेश में कृषि विज्ञान केंद्रों (KVKs) के हस्तक्षेप वाले क्षेत्रों में अध्ययन से पता चला कि विस्तार सेवाओं का लाभ उठाने वाले किसानों की शुद्ध आय गैर-लाभार्थी किसानों की तुलना में 111% अधिक थी। इसके अलावा, DFI (Doubling Farmers Income) योजना के तहत KVKs के हस्तक्षेप वाले परिवारों की आय में 2016-17 से 2020-21 के बीच 156% की वृद्धि दर्ज की गई। सरकारी आँकड़ों के अनुसार, एक कृषि परिवार की औसत मासिक आय 2012-13 में ₹. 6,426 से बढ़कर 2018-19 में ₹. 10,218 हो गई। यह वृद्धि विस्तार सेवाओं सहित विभिन्न योजनाओं के समन्वित प्रभाव का परिणाम है।

विस्तार सेवाओं के माध्यम से आय वृद्धि के मार्ग

(क) **उत्पादकता में वृद्धि-** विस्तार सेवाएँ किसानों को उन्नत बीज, संकर किस्में, जैविक खेती तकनीकें, एवं कीट प्रबंधन के बारे में जानकारी प्रदान करती हैं। सॉल्व हेल्थ कार्ड योजना के तहत किसानों को अपनी मिट्टी की सेहत जानने और उर्वरकों के सही उपयोग में मदद मिली है। डिजिटल कृषि मिशन के तहत 'अग्रिस्ट्रेक', 'किसान रजिस्ट्री', और 'जियो-रेफरेंस विलेज मैप' बनाए जा रहे हैं, जो किसानों को समय पर और विश्वसनीय फसल-संबंधी जानकारी उपलब्ध कराते हैं।

कृषि विज्ञान केंद्र (KVK) प्रशिक्षण का प्रभाव- असम के बरपेटा जिले में किए गए एक अध्ययन के अनुसार, KVK प्रशिक्षण प्राप्त करने के बाद किसानों के ज्ञान स्तर में 68.2% की वृद्धि हुई, और तकनीक अपनाने की दर 34.2% से बढ़कर 68.7% हो गई। इसका सीधा प्रभाव उत्पादन पर पड़ा-धान की पैदावार में 24.2% और सब्जी उत्पादन में 31.4% की वृद्धि दर्ज की गई।

(ख) **लागत में कमी-** ड्रिप सिंचाई और स्प्रिंकलर जैसी सूक्ष्म सिंचाई तकनीकों पानी और उर्वरक की महत्वपूर्ण बचत करती हैं। 'पर ड्रॉप मोर क्रॉप' योजना के तहत छोटे किसानों को सब्सिडी दी जाती है। विस्तार कार्यकर्ता इन तकनीकों को अपनाने में किसानों का मार्गदर्शन करते हैं, जिससे उत्पादन लागत में कमी आती है और लाभ-लागत अनुपात में सुधार होता है। बरपेटा अध्ययन में लाभ-लागत अनुपात में 40.1% सुधार दर्ज किया गया।

(ग) **विविधीकरण-** केवल पारंपरिक फसलों पर निर्भरता से आय दोगुनी नहीं हो सकती। विस्तार सेवाएँ किसानों को उच्च मूल्य वाली फसलों-सब्जियाँ, फल, तिलहन, दालें-की ओर रुख करने के लिए प्रेरित

किसानों की आय दोगुनी करने में कृषि विस्तार सेवाओं की भूमिका

करती हैं। मध्य प्रदेश के अध्ययन में पाया गया कि उच्च मूल्य वाली फसलों (सब्जियाँ, डेयरी आदि) की ओर कृषि विविधीकरण DFI परिवारों की आय बढ़ाने में महत्वपूर्ण रहा है।



सफलता की कहानी- उत्तराखंड के थराली, चमोली जिले के पूर्व सैनिक गोपाल सिंह रावत ने कृषि विज्ञान केंद्र, ग्वालदम के मार्गदर्शन में पॉलीटनल के तहत सब्जी उत्पादन शुरू किया। आज वह अपने 10 नाली खेत में सब्जियाँ उगा रहे हैं और अन्य किसानों की तुलना में सात गुना अधिक आय प्राप्त कर रहे हैं। उन्होंने छह महीने में ₹. 70,000 की आय अर्जित की।

(घ) **पशुधन प्रबंधन-** भारत दुनिया का सबसे बड़ा दूध उत्पादक देश है। विस्तार सेवाएँ पशु आहार, नस्ल सुधार, टीकाकरण और पशु रोग नियंत्रण के बारे में जानकारी देती हैं। 'राष्ट्रीय गोकुल मिशन' और 'राष्ट्रीय पशु रोग नियंत्रण कार्यक्रम' इस दिशा में महत्वपूर्ण पहल हैं।

(ङ) **डिजिटल विस्तार-** डिजिटल कृषि मिशन के तहत AI/ML, IoT, ब्लॉकचेन जैसी उभरती तकनीकों का उपयोग करके डिजिटल कृषि परियोजनाओं को राज्य सरकारों को वित्त पोषण दिया जाता है। ई-नाम प्लेटफॉर्म ने मंडियों को एकीकृत किया है, जिससे किसानों को बेहतर मूल्य मिल सके। प्रधानमंत्री अन्नदाता आय संरक्षण अभियान (PM-AASHA) के तहत मूल्य समर्थन योजना (PSS), मूल्य घाटा भुगतान योजना (PDPS) और बाजार हस्तक्षेप योजना (MIS) के माध्यम से किसानों को उनकी उपज का उचित मूल्य सुनिश्चित किया जाता है।

चुनौतियाँ-जहाँ विस्तार सेवाएँ कमजोर हैं
लक्ष्य महान है, परंतु मार्ग कठिन है। कृषि विस्तार सेवाओं के समक्ष अनेक चुनौतियाँ हैं-

(क) **अपर्याप्त बुनियादी सुविधाएँ-** असम के बरपेटा जिले के अध्ययन में पाया गया कि 64.2% किसानों ने अपर्याप्त भौतिक सुविधाओं को एक प्रमुख बाधा बताया।

(ख) **समय संबंधी संघर्ष-** 52% किसानों ने प्रशिक्षण के समय को अपनी खेती की गतिविधियों के साथ तालमेल बिठाने में कठिनाई का उल्लेख किया।

(ग) **अनुवर्ती सहायता का अभाव-** 46.7% किसानों ने पर्याप्त अनुवर्ती सहायता (follow-up support) न मिलने को एक बड़ी समस्या बताया। प्रशिक्षण के बाद निरंतर मार्गदर्शन की कमी से तकनीकों को स्थायी रूप से अपनाने में दिक्कत आती है।

(घ) **सीमित पहुँच-** उच्च मूल्य वाली कृषि (हॉर्टिकल्चर, पशुपालन, मत्स्यपालन) में विस्तार सेवाएँ सीमित हैं। अध्ययन बताते हैं कि शिक्षा स्तर, MSP जागरूकता, और FPO में सदस्यता विस्तार सेवाओं तक पहुँच को प्रभावित करते हैं।

(ङ) **डिजिटल विभाजन-** ग्रामीण क्षेत्रों में डिजिटल साक्षरता की कमी के कारण डिजिटल विस्तार सेवाओं का लाभ सभी किसानों तक नहीं पहुँच पाता।

सरकारी योजनाएँ और पहल- भारत सरकार ने किसानों की आय

बढ़ाने के लिए कृषि विस्तार एवं कल्याण विभाग का बजट 2013-14 के ₹. 21,933.50 करोड़ से बढ़कर 2025-26 में ₹. 1,27,290.16 करोड़ कर दिया है।

निम्नलिखित प्रमुख योजनाएँ इस लक्ष्य में योगदान दे रही हैं-

योजना का नाम एवं उद्देश्य

प्रधानमंत्री किसान सम्मान निधि : किसानों को आय सहायता

प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना : फसल हानि से बचाव

कृषि अवसंरचना कोष: कोल्ड स्टोरेज, आपूर्ति श्रृंखला विकास

10,000 FPOs का गठन: किसानों की सौदेबाजी शक्ति बढ़ाना

राष्ट्रीय प्राकृतिक खेती मिशन: टिकाऊ खेती को बढ़ावा

डिजिटल कृषि मिशन: डिजिटल DPI का निर्माण

इन योजनाओं के समन्वित प्रभाव से ICAR ने 75,000 किसानों की सफलता कहानियाँ प्रकाशित की हैं, जिन्होंने अपनी आय दोगुनी से अधिक बढ़ाई।

आगे का रास्ता- विस्तार सेवाओं को सशक्त करना

1.भौतिक बुनियादी ढाँचे को मजबूत करना- बरपेटा अध्ययन में 64.2% किसानों ने अपर्याप्त सुविधाओं को बाधा बताया, इसलिए KVK और विस्तार केंद्रों के बुनियादी ढाँचे में सुधार आवश्यक है।

2.अनुवर्ती सहायता प्रणाली- 46.7% किसानों ने follow-up की कमी को समस्या बताया, इसलिए प्रशिक्षण के बाद निरंतर सहायता और मार्गदर्शन की व्यवस्था की जानी चाहिए।

3.'किसान-से-किसान' (Farmer-to-Farmer) मॉडल- प्रशिक्षित प्रगतिशील किसानों को विस्तार सेवाओं से जोड़ना, जैसा कि गोपाल सिंह रावत के मामले में हुआ।

4.तकनीकी समावेशन-AI, IoT, ड्रोन और मोबाइल ऐप्स के माध्यम से विस्तार को स्केल करना।

5.समय-अनुकूल प्रशिक्षण- 52% किसानों ने समय संघर्ष को बाधा बताया, इसलिए प्रशिक्षण कार्यक्रमों को खेती के मौसम के अनुसार लचीला बनाया जाना चाहिए।

6.लिंग-विशिष्ट मॉड्यूल- महिला किसानों की विशिष्ट आवश्यकताओं के अनुरूप प्रशिक्षण मॉड्यूल विकसित करना।

निष्कर्ष- भारत सरकार ने किसानों की आय दोगुनी करने के लिए बजटीय आवंटन में अभूतपूर्व वृद्धि की है। कृषि विज्ञान केंद्रों (KVKs) की सफलता-जहाँ DFI परिवारों की आय में 156% की वृद्धि हुई और बरपेटा में औसत कृषि आय में 34.7% की वृद्धि हुई -यह साबित करती है कि विस्तार सेवाएँ किसानों की आय बढ़ाने में कितनी प्रभावी हैं। लेकिन यह धनराशि और योजनाएँ तभी सार्थक होंगी जब कृषि विस्तार सेवाएँ सशक्त, सुलभ और प्रभावी होंगी। बुनियादी सुविधाओं की कमी, समय संघर्ष, और अनुवर्ती सहायता की कमी जैसी चुनौतियों का समाधान करना आवश्यक है। 'कृषिकुल' मॉडल, गोपाल सिंह रावत जैसे सफल किसान, और KVKs के प्रभावशाली परिणाम बताते हैं कि सही दिशा में किया गया प्रयास ही सफलता की कुंजी है। अब समय आ गया है कि इन मॉडलों को देशव्यापी आंदोलन का रूप दिया जाए-एक ऐसा आंदोलन जो भारत के हर किसान को आत्मनिर्भर, समृद्ध और सशक्त बनाए।

"भारत गाँवों में बसता है।" किसान समृद्ध होगा तो भारत समृद्ध होगा। विस्तार सेवाएँ वह ओज़ार हैं, जो इस समृद्धि के द्वार खोल सकती हैं।



✍ नरेंद्र पाटीदार एमडीओ (मैनकाइंड एग्रीटेक), दलौदा, मंदसौर (म.प्र.)

18% प्रोटीन हाइड्रोलाइसेट (प्लांट-बेस्ड): फसलों में फूल और फल बढ़ाने का प्राकृतिक उपाय

परिचय- आधुनिक कृषि में उत्पादकता बढ़ाने के साथ-साथ टिकाऊ खेती पर जोर दिया जा रहा है। ऐसे में, जैव-उत्तेजक (Bio stimulants) किसानों के लिए एक कारगर उपाय के रूप में उभर कर सामने आए हैं। इन्हीं जैव-उत्तेजकों में प्रोटीन हाइड्रोलाइसेट (Protein Hydrolysates) एक महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं, जो पौधों को सीधे पोषण देने के बजाय उनकी आंतरिक क्षमता को जागृत करके वृद्धि, उपज और तनाव सहनशीलता को बढ़ाते हैं।

फसलों के जीवन चक्र में फूल आने की अवस्था (Flowering Stage) अत्यंत निर्णायक होती है। यह वह समय है जब पौधा वानस्पतिक (Vegetative) से जनन (Reproductive) अवस्था में प्रवेश करता है, और इसी का परिणाम फलों एवं उपज के रूप में सामने आता है। इस लेख में, हम फूल आने से पूर्व विभिन्न फसलों में 18% प्लांट-बेस्ड प्रोटीन हाइड्रोलाइसेट के उपयोग के वैज्ञानिक और व्यावहारिक पहलुओं पर गहराई से चर्चा करेंगे।

प्रोटीन हाइड्रोलाइसेट (18% प्लांट-बेस्ड) क्या है? प्रोटीन हाइड्रोलाइसेट, जैसा कि नाम से स्पष्ट है, प्रोटीन के एंजाइमिक या रासायनिक विघटन से बना एक उत्पाद है, जो बड़ी प्रोटीन श्रृंखलाओं को छोटे पेप्टाइड्स और मुक्त अमीनो एसिड में तोड़ देता है। 18% की सांद्रता वाला प्लांट-बेस्ड हाइड्रोलाइसेट मुख्यतः गैर-जीएम (Non-GMO) वनस्पति स्रोतों, जैसे सोयाबीन या अलफाल्फा, से एंजाइमेटिक प्रक्रिया द्वारा तैयार किया जाता है। इस उत्पाद में सभी 18 आवश्यक अमीनो एसिड होते हैं, जिनमें ट्रिप्टोफैन, हिस्टिडीन, मेथिओनिन, थ्रेओनिन, ग्लाइसिन और आर्जिनिन शामिल हैं, जिन्हें पौधे आसानी से अवशोषित कर सकते हैं।

प्रोटीन हाइड्रोलाइसेट के प्रमुख लाभ

प्रोटीन हाइड्रोलाइसेट कई तरह से फसलों के विकास को गति प्रदान करते हैं-

1. प्राकृतिक कैलेटिंग एजेंट: अमीनो एसिड प्राकृतिक कैलेटिंग एजेंट का काम करते हैं, जो प्रमुख, द्वितीयक और सूक्ष्म पोषक तत्वों को बांधकर पौधों तक अधिक कुशलता से पहुंचाते हैं, जिससे पोषक तत्वों की हानि कम होती है और उर्वरक दक्षता बढ़ती है।

2. एंजाइमी गतिविधि और प्रकाश-संश्लेषण में वृद्धि: यह पौधों में एंजाइम सिस्टम को उत्तेजित करता है, प्रोटीन संश्लेषण को बढ़ावा देता है और क्लोरोफिल गतिविधि को बढ़ाता है, जिससे पत्तियां हरी-भरी और स्वस्थ होती हैं।

3. बेहतर फूल एवं फल सेटिंग- नियमित उपयोग से समय से पहले फूल एवं फल गिरने की समस्या कम होती है और फलों का आकार, रंग एवं गुणवत्ता बेहतर होती है।

4. तनाव सहनशीलता- यह पौधों को सूखा, गर्मी और लवणता (Salinity) जैसे अजैविक तनावों (Abiotic Stress) से लड़ने में सहायता करता है।

फूल आने से पहले (Pre-Flowering Stage) क्यों करें उपयोग?- फसल के विकास में फूल आने से पहले का चरण अत्यधिक संवेदनशील होता है। इस समय पौधा वानस्पतिक से जनन अवस्था में प्रवेश करने की तैयारी कर रहा होता है, और पोषक तत्वों की मांग सबसे अधिक होती है। इस दौरान प्रोटीन हाइड्रोलाइसेट का प्रयोग क्यों लाभकारी है, आइए समझते हैं-

1. अधिकतम फूल एवं उपज

एक महत्वपूर्ण वैज्ञानिक अध्ययन में, कैलेंडुला (गेंदा) पौधों पर सोयाबीन प्रोटीन हाइड्रोलाइसेट (SPH) के प्रभाव का परीक्षण किया गया। परिणाम आश्चर्यजनक रहे-

* मिट्टी-सिंचन (Soil Drenching) विधि सबसे प्रभावी पाई गई। 1 ग्राम/लीटर की कम खुराक पर, प्रति पौधे फूलों की औसत संख्या 8.00 (नियंत्रण समूह) से बढ़कर 14.30 हो गई।

* पत्तीय छिड़काव (Foliar Spraying) की तुलना में मृदा-सिंचन अधिक प्रभावी था।

* इस उपचार से फूलों में LPE (16:0) और LPE (18:2) जैसे प्राकृतिक पौधा-विकास नियामक (Plant Growth Regulators) की मात्रा बढ़ गई।

2. प्रतिकूल परिस्थितियों के लिए तैयारी

शोध से पता चलता है कि प्रोटीन हाइड्रोलाइसेट का प्रयोग पौधों को सूखे जैसी गंभीर परिस्थितियों से बेहतर ढंग से उबरने में मदद करता है। फूल आने से पहले इसका उपयोग पौधों को तनाव-सहिष्णु बनाता है, जिससे फूल आने और फल बनने के दौरान आने वाली प्रतिकूल मौसम स्थितियों का सामना करने की क्षमता बढ़ जाती है।

तरीका और खुराक (Method & Dosage)

18% प्लांट-बेस्ड प्रोटीन हाइड्रोलाइसेट विभिन्न रूपों में उपलब्ध है, जैसे - तरल (Liquid) या पानी में घुलनशील पाउडर। **फसलों में इसके प्रयोग की मुख्य विधियाँ हैं-**

1. पत्तियों पर छिड़काव (Foliar Application): सबसे आम तरीका। इसे पानी में घोलकर बारीक स्प्रे के रूप में पत्तियों पर छिड़का जाता है। फूल आरंभ (Flower Initiation) के समय पहला छिड़काव करें, और फिर हर 15-20 दिनों पर 2-3 छिड़काव करें।



* **खुराक-** 2-3 मिली प्रति लीटर पानी।

2. मृदा-सिंचन (Soil Drenching / Drip Irrigation): इसे पानी में मिलाकर सीधे पौधों की जड़ों के पास डाला जाता है। अध्ययनों में यह विधि फूलों की बायोमास पर अधिक प्रभावी पाई गई है।

* **खुराक-** 1 लीटर प्रति एकड़ (ड्रिप सिंचाई के माध्यम से)।

खुराक और सावधानियाँ (Dosage & Precautions)

किसी भी जैव-उत्तेजक की तरह, सही खुराक ही सफलता की कुंजी है।

* **खुराक:** शोध में पाया गया है कि फूलों पर उच्चतम प्रभाव कम खुराक (1 ग्राम/लीटर) पर देखा गया है। बाजार में उपलब्ध तरल उत्पादों के लिए 2-3 मिली/लीटर की खुराक प्रभावी है।

सावधानियाँ

* हमेशा संतुलित पोषण (खाद/उर्वरक) के साथ ही जैव-उत्तेजक का उपयोग करें। यह किसी भी पोषण की कमी का विकल्प नहीं है।

* इस उत्पाद को सल्फर (Sulphur) या कॉपर (Copper) आधारित उत्पादों के साथ न मिलाएं, क्योंकि ये अमीनो एसिड के साथ प्रतिक्रिया करके इसकी प्रभावशीलता को कम कर देते हैं।

* छिड़काव हमेशा सुबह या शाम के समय करें, जब तापमान कम हो और अमीनो एसिड का अवशोषण अधिकतम हो।

* उत्पाद लेबल पर दी गई निर्देशों का पालन करें।

निष्कर्ष (Conclusion)

आधुनिक कृषि में उत्पादकता बढ़ाने के लिए नवीन तकनीकों का समावेश आवश्यक है। फूल आने से पूर्व 18% प्लांट-बेस्ड प्रोटीन हाइड्रोलाइसेट का प्रयोग एक वैज्ञानिक रूप से प्रमाणित और प्रभावी जैव-उत्तेजक रणनीति है। यह न केवल पौधे को त्वरित पोषण और आवश्यक अमीनो एसिड प्रदान करता है, बल्कि उसके हार्मोनल सिस्टम को सक्रिय करके अधिक फूल (More Flowers), बेहतर फल (Better Fruits) और अंततः बंपर पैदावार (Higher Yield) सुनिश्चित करने में सहायक होता है। साथ ही, यह पर्यावरण-अनुकूल (Eco-friendly) और जैविक खेती (Organic Farming) के लिए उपयुक्त होने के कारण टिकाऊ कृषि (Sustainable Agriculture) का एक मजबूत आधार प्रदान करता है।



अमरनाथ सक्सेना चीफ टेक्निकल
ऑफिसर- कमर्शियल, बजाज जनरल इंश्योरेंस
लिमिटेड (पूर्व नाम बजाज आलियांज जनरल
इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड)

आज की तेजी से बदलती दुनिया में, फाइनेंशियल सेक्योरिटी अब आपके स्वास्थ्य, जीवन या आपकी कार जैसे मूल्यवान एसेट की सेक्योरिटी तक सीमित नहीं है। जहां हेल्थ और लाइफ इंश्योरेंस आपके परिवार के भविष्य को सुरक्षित करता है, और मोटर इंश्योरेंस आपके वाहन की सुरक्षा करता है, वहीं एक ऐसा रिस्क भी है जिसे अक्सर नजरअंदाज कर दिया जाता है- और वह है अचानक नौकरी छूट जाने का संकट। नौकरी का छूटना, चाहे वह ले ऑफ के कारण हो या अचानक आई स्वास्थ्य समस्याओं की वजह से, आपकी नियमित आय में बाधा डाल सकता है और आपकी आर्थिक स्थिरता के लिए खतरा पैदा कर सकता है। जॉब लॉस कवर का उद्देश्य इसी फाइनेंशियल कमी को दूर करना है। यह आपको एक ऐसा सुरक्षा कवच प्रदान करता है जो आपके अगले करियर अवसर तक आपकी आर्थिक जरूरतों को पूरा करने में मदद करता है।

जॉब लॉस कवर क्या है?

जॉब लॉस कवर एक विशेष इंश्योरेंस लाभ है जो आपकी इच्छा के बिना नौकरी छूट जाने की स्थिति में आपको फाइनेंशियल सहायता प्रदान करता है। इसका मतलब है ऐसी स्थितियों में नौकरी जाना जो आपके नियंत्रण में न हों, जैसे कंपनियों का मर्जर, अधिग्रहण, कॉस्ट-कटिंग या ऑपरेशन बंद करना। यह उन स्थितियों को भी कवर करता है जब किसी बीमारी या चोट की वजह से आप अपनी नौकरी जारी नहीं रख पाते। इस लाभ का भुगतान आमतौर पर मासिक किश्तों के रूप में किया जाता है, जो चुने गए कवर और अवधि के अनुसार आपको कुछ समय के लिए आय का सहारा प्रदान करता है।

जॉब लॉस कवर की प्रमुख विशेषताएं

यह प्लान विशेष रूप से उन वेतनभोगी कर्मचारियों के लिए है जो सीधे कंपनी के पेरोल पर हैं; इसमें अस्थायी, कॉन्ट्रैक्टुअल और प्रोबेशनरी कर्मचारियों को शामिल नहीं किया गया है। अगर मर्जी के बिना नौकरी छूटती है, तो तय की गई राशि हर महीने तब तक दी जाती है जब तक कि इंड्योर्ड व्यक्ति द्वारा चुने गए महीनों की अवधि पूरी न हो जाए या उसे नई नौकरी न मिल जाए, इनमें से जो भी पहले हो। भुगतान शुरू होने से पहले एक प्रतीक्षा अवधि होती है। अगर आपकी कंपनी आपको सेवरेस पे या नोटिस पीरियड के बदले

जॉब लॉस कवर : आपकी फाइनेंशियल स्थिरता की सुरक्षा

वेतन देती है, तो ओवरलैपिंग लाभों से बचने के लिए इंश्योरेंस भुगतान को एडजस्ट किया जाता है। कवरेज की अधिकतम लिमिट आपके मासिक वेतन के एक निश्चित प्रतिशत, आमतौर पर लगभग 70% तक सीमित होती है, भले ही आपके पास एक से अधिक पॉलिसी क्यों न हों। यही कारण है कि जॉब लॉस कवर एक बहुत ही व्यावहारिक और मददगार प्लान बन जाता है, जो करियर में बदलाव



के मुश्किल समय में आपको स्थिर फाइनेंशियल सहायता प्रदान करता है।

जॉब लॉस कवर क्यों महत्वपूर्ण है

जॉब लॉस कवर होने से अचानक आने आर्थिक संकटों का सामना और भी बेहतर तरीके से कर सकते हैं। अगर आपके पास यह कवर नहीं है, तो अचानक नौकरी जाने से आप बड़ी मुश्किल में पड़ सकते हैं। किराया, EMIs और बच्चों की स्कूल फीस जैसे जरूरी खर्चों को रोकना नहीं जा सकता, इसलिए यह सुरक्षा होना बहुत जरूरी है। ऐसे मामलों में, लोग अक्सर केवल अपनी बचत पर निर्भर रहते हैं, लेकिन अगर नौकरी मिलने में देरी हो जाए, तो वह पैसा बहुत जल्दी खत्म हो सकता है। हालांकि, जॉब लॉस कवर होने से आपके पास एक सुरक्षित विकल्प रहता है, जो आपको हर महीने किश्तों में भुगतान देता है। यह इंश्योरेंस अवधि के दौरान आपको आर्थिक रूप से मजबूत रखता है ताकि आप बिना किसी तनाव के नई नौकरी की तलाश कर सकें। इस लगातार सहयोग से आप अपनी बचत को खर्च किए बिना अपने बुनियादी खर्च पूरे कर सकते हैं। यह आपको वह मानसिक शांति और भरोसा देता है जिससे आप आर्थिक तंगी की परवाह किए बिना फिर से

रोजगार पाने की कोशिश कर सकते हैं। संक्षेप में, जॉब लॉस कवर यह सुनिश्चित करता है कि कुछ समय के लिए आय रुकने का असर आपके भविष्य के बड़े प्लान्स पर न पड़े।

एक्सक्लूजिव जिनके बारे में आपको पता होना चाहिए

जॉब लॉस कवर में कुछ खास एक्सक्लूजिव होते हैं, जो यह तय करते हैं कि आप कब क्लेम का लाभ ले सकते हैं। इसका उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि सहायता केवल उन वास्तविक मामलों में मिले जहां नौकरी आपकी मर्जी के बिना गई हो। यह उन स्थितियों में लागू नहीं होता जहां आप अपनी इच्छा से नौकरी छोड़ते हैं, जैसे कि इस्तीफा देना या रिटायर होना, क्योंकि ये आपके स्वैच्छिक फैसले हैं। ठीक इसी तरह, अगर किसी को गलत व्यवहार, धोखाधड़ी या अनुशासन

तोड़ने की वजह से नौकरी से निकाला जाता है, तो उसे भी कवर नहीं दिया जाता है, क्योंकि ये आपकी अपनी गलतियों की वजह से हुए नुकसान माने जाते हैं। इसके अलावा, हड़तालें, श्रम विवादों या मैटर्निटी या पैटर्निटी लीव न बढ़ाए जाने के कारण होने वाली बेरोजगारी को भी इस कवर में शामिल नहीं किया जाता है, क्योंकि इन स्थितियों को अचानक होने वाली बेरोजगारी नहीं माना जाता है। अंत में, कवर केवल भारत के भीतर नौकरियों पर लागू होता है, जिसका मतलब है कि देश के बाहर रोजगार के नुकसान को कवर नहीं किया जाता है। इन एक्सक्लूजिव का उद्देश्य इस कवर को सिर्फ स्थाई नौकरी में आने वाली उन अचानक और बड़ी रुकावटों तक सीमित रखना है जिन्हें टाला न जा सके, न कि उन स्थितियों के लिए जो आपकी अपनी मर्जी से हों या जिनके बारे में पहले से पता हो।

कुल मिलाकर, जॉब लॉस कवर लेना आपके भविष्य की आर्थिक सुरक्षा के प्रति एक जिम्मेदारी भरा कदम है। यह सुनिश्चित करता है कि अचानक नौकरी जाने जैसा कोई संकट आपके फाइनेंशियल प्लान को खराब न करे। यह अनिश्चितता के समय में आपको सुरक्षा का भरोसा देता है और मानसिक शांति बनाए रखता है

डॉ. योगेश नाग, डॉ. आर.एफ. कुजूर

डॉ. डी.के. जोल्हे, डॉ. आर.सी. घोष

डॉ. पी. सिंह, डॉ. पावन सिदार

डॉ. नेहा भगत, डॉ. कालेश्वरी कंवर

डॉ. दिव्या महिलाने

डाऊ श्री वासुदेव चंद्राकर कामधेनु

विश्वविद्यालय, पशु चिकित्सा विज्ञान एवं

पशुपालन महाविद्यालय, अंजोरा, दुर्ग (छ.ग.)

परिचय

यह गंभीर बीमारी परजीवी जनित रोग है जिसमें तेज बुखार एवं लसिका ग्रन्थि में सुजन प्रमुख होते हैं। कम उम्र के बछड़ों इस रोग के प्रति अत्यधिक संवेदनशील होते हैं साथ ही साथ यह रोग संकर नस्ल के पशु में ज्यादा प्रभावकारी है। इस रोग का प्रकोप वर्षा एवं ग्रीष्म ऋतुओं में अधिक होता है, क्योंकि इस मौसम में रोग संचरण करने वाली किलनियों (चमोकन) की संख्या में अत्यधिक वृद्धि हो जाती है।

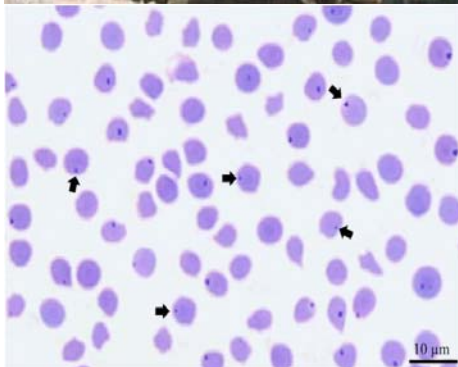
रोग का कारण और फैलाव

- * थिलेरियोसिस एक सूक्ष्म रक्त परजीवी 'थिलेरिया एनुलेटा' के कारण होता है।
- * यह मुख्य रूप से विदेशी और संकर नस्ल की गायों को अपना शिकार बनाता है।
- * भारत में यह 'हायलोमा एनाटोलिकम' (Hyalomma anatolicum) नाम की एक विशेष किलनी के काटने से फैलता है।
- * जब किलनी किसी संक्रमित जानवर का खून चूसती है, तो परजीवी किलनी की लार ग्रंथियों में पहुँचकर अपनी संख्या बढ़ा लेते हैं।
- * इसके बाद जब यह किलनी किसी स्वस्थ पशु को काटती है, तो यह परजीवी उसके खून की लाल और सफेद कोशिकाओं में प्रवेश कर जाते हैं।

बीमारी के लक्षण

- * संक्रमित किलनी के काटने के लगभग एक सप्ताह बाद पशु में बीमारी के लक्षण दिखाई देने लगते हैं।
- * कम उम्र के और लंबी यात्रा से थके हुए पशु इस बीमारी के प्रति अधिक संवेदनशील होते हैं।
- * शुरुआत में पशु को लगातार या चढ़ता-उतरता तेज बुखार रहता है।
- * आँखों से पानी आना, पुतली का लाल होना व सूजना, नाक से पानी गिरना और दिल की धड़कन तेज होना इसके मुख्य लक्षण हैं।

गोवंशीय पशुओं में थिलेरिया रोग



के अंदर लगभग 70 प्रतिशत बीमार पशुओं की मौत हो सकती है।

जांच और उपचार

- * इसकी जांच पशुपालन विभाग की प्रयोगशाला में खून की जांच (रक्त पट्टिका) द्वारा की जा सकती है।
- * इलाज के लिए 'बूपारवाक्वोन' (ब्यूटालैक्स) नामक दवा उपलब्ध है।
- * इसे 2.5 मिलीग्राम प्रति किलो शरीर के वजन के हिसाब से मांसपेशियों में इंजेक्शन के जरिए लगाया जाता है।
- * आमतौर पर एक इंजेक्शन पर्याप्त होता है, लेकिन बहुत गंभीर मामलों में 48 घंटे के बाद दूसरा इंजेक्शन दिया जाता है।
- * गलत इलाज से पशु की जान जा सकती है, इसलिए जांच और इलाज हमेशा एक प्रशिक्षित पशु चिकित्सक से ही करवाना चाहिए।

बचाव और रोकथाम

- * पशुशाला में साफ-सफाई रखकर और निश्चित अंतराल पर किलनी-नाशक दवाओं का प्रयोग करके इस बीमारी को रोका जा सकता है।
- * बाहर से आने वाले नए पशुओं को लगभग 40 दिन तक अन्य पशुओं से अलग (क्वारेन्टीन) रखना चाहिए।
- * यह ध्यान रखना जरूरी है कि किसी संवेदनशील पशु को बीमार करने के लिए मात्र एक संक्रमित किलनी का काटना ही काफी होता है।
- * बचाव के लिए 'एटीनुएटेड कल्चर' टीका (vaccine) बाजार में उपलब्ध है।

दिनेश शिवहरे

Mob. : 98263-55396

मध्य प्रदेश का पहला

श्री दयाल बन्धु केन्द्र

(हिनौतिया वालों की दुकान)

सभी प्रकार की कीटनाशक दवाईयां, जिन्क एवं बीज आदि के थोक एवं खेरीज विक्रेता

गायत्री मंदिर के पास, जवाहर गंज, डबरा जिला ग्वालियर (म.प्र.)

E-mail : shridayalbandhu@gmail.com, dineshshivhare66@yahoo.com



❧ **भूपिका देवांगन** एम.वी.एससी. शोधार्थी, पशु चिकित्सा विभाग, पशु चिकित्सा महाविद्यालय एवं पशुपालन, अंजोरा, (छत्तीसगढ़)

❧ **भुवनेश्वर पाल सिंह कंवर** सहायक प्राध्यापक, पशु चिकित्सा विभाग, पशु चिकित्सा महाविद्यालय एवं पशुपालन, अंजोरा, छत्तीसगढ़

❧ **स्वर्णलता बारा** सहायक प्राध्यापक, पशुधन उत्पादन और प्रबंधन विभाग, कृषि महाविद्यालय एवं अनुसंधान केंद्र, बेमेतरा, छत्तीसगढ़

❧ **छत्रपाल सिंह पुहुप** विषय वस्तु विशेषज्ञ, सस्य विज्ञान, कृषि विज्ञान केन्द्र, जशपुर, छत्तीसगढ़

परिचय- पशुपालन विशेष रूप से दुग्ध उत्पादन किसानों की आय का एक प्रमुख स्रोत है। दुधारू पशुओं से अधिक दुध प्राप्त करने के लिए उनके संपूर्ण जीवन चक्र में उचित प्रबंधन आवश्यक होता है। इस चक्र में 'सूखी अवधि' (Dry Period) एक ऐसा महत्वपूर्ण चरण है जिसे अक्सर नजर अंदाज कर दिया जाता है। जबकि यह अवधि भविष्य में होने वाले दुध उत्पादन को सीधा प्रभावित करती है। यदि इस अवधि का वैज्ञानिक ढंग से प्रबंधन किया जाए, तो गाय या भैंस के अगले दुध काल (lactation period) में दुध की मात्रा व गुणवत्ता में वृद्धि होती है।

सूखी अवधि क्या है?—सूखी अवधि वह समय होता है जब दुधारू पशु को दुध दोहन से विश्राम दिया जाता है। यह आमतौर पर 60 दिनों की होती है। इस दौरान पशु गर्भवती होती है और उसका शरीर अगली बियात (calving) की तैयारी करता है। इस समय में मधुमेय को मरम्मत (mammary tissue regeneration), भ्रूण की वृद्धि और शरीर के पोषण का संचय होता है।

सूखी अवधि का महत्व

1. थन ऊ तक की मरम्मत—दुध दोहन से थन की कोशिकाओं पर लगातार दबाव पड़ता है। सूखी अवधि में यह ऊतक स्वयं की मरम्मत कर पाते हैं जिससे अगली बार दुध उत्पादन बेहतर होता है।

2. शरीर पोषण की भरपाई—यह समय शरीर को पोषण संचय करने और दुध उत्पादन के लिए ऊर्जा एकत्र करने का अवसर देता है।

3. भ्रूण विकास—गर्भावस्था के अंतिम दो महीने भ्रूण विकास की दृष्टि से सबसे महत्वपूर्ण होते हैं। इस समय पर्याप्त पोषण और देख भाल से स्वस्थ बछड़े का जन्म होता है।

4. स्वास्थ्य सुधार—इस दौरान पशु को पर्याप्त आराम, विटामिन, खनिज व पोषक तत्व दिए जाते हैं जो उसकी प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाते हैं।

सूखी अवधि का आदर्श समय

गाय: 60 दिन, भैंस: 60-90 दिन

इससे कम या अधिक सूखी अवधि देने से दुध उत्पादन पर विपरीत असर पड़ सकता है। यदि अवधि बहुत कम होतो थनों की मरम्मत अधूरी रह जाती है, और यदि बहुत लंबी होतो शरीर में अतिरिक्त वसा संचय हो सकता है जिससे बियात में जटिलताएं हो सकती हैं।

सूखी अवधि का प्रभाव दुध उत्पादन पर— अनुसंधानों

गर्भवकालीन विश्राम, दुग्ध उत्पादन में विस्तार

से पता चला है कि जिन पशुओं को 60 दिन की समुचित सूखी अवधि दी जाती है, वे बियात के बाद 15-20% अधिक दुध देती हैं। साथ ही दुध की गुणवत्ता, फैट एवं SNF (solids not fat) भी बेहतर होता है। भारत में कई संस्थानों जैसे ICAR, NDRI & IVRI की रिपोर्टों ने भी इस बात को प्रमाणित किया है।

सूखी अवधि में प्रबंधन के मुख्य घटक

1. दुध दोहन बंद करना

जब गर्भावस्था 7वें महीने में पहुँच जाए, तब धीरे-धीरे दुध दोहन को बंद करना चाहिए। इसे 'बिल्कुल बंद विधि' या 'क्रमशः कम करने की विधि' द्वारा किया जा सकता है।

- * दुध दोहन की बारंबारता कम करें
- * धीरे-धीरे आहार में ऊर्जा और पानी की मात्रा घटाएं
- * एक बार दुध बनना रुक जाए तो थन को हाथ न लगाएं

2. आहार प्रबंधन

- * सूखी अवधि में आहार का विशेष ध्यान रखें।
- * ऊर्जा, प्रोटीन, खनिज व विटामिन पर्याप्त मात्रा में हो
- * सूखा चारा (Dry Roughage) और हरी घास के साथ संतुलित दाना दें
- * कैल्शियम, फॉस्फोरस, सेलेनियम, विटामिन (A, D, E) आदि की पूर्ति करें

विशेष: अधिक कैल्शियम देने से दुध ज्वर (Milk Fever) का खतरा बढ़ सकता है, अतः इसकी मात्रा पशु चिकित्सक के निर्देशानुसार ही दें।

3. रोग नियंत्रण

- * थन संक्रमण (mastitis) का सबसे ज्यादा खतरा इसी अवधि में होता है।
- * थन की नियमित सफाई और ड्राई काउ थेरेपी (Dry Cow Therapy) अपनाएं।

* ड्राई काउ थेरेपी में अंतिम दुहाई के बाद एंटीबायोटिक युक्त थन में लगाने वाली ट्यूब का प्रयोग कर संक्रमण श्रोका जाता है।

4. आवास व्यवस्था

- * पशु का आवास साफ-सुथरा, सूखा और हवादार होना चाहिए
- * ओहने-बिछाने के लिए साफ सूखी घास या भूसा दें
- * ग्रीष्म ऋतु में ठंडी छाया और शीत ऋतु में गर्मी से सुरक्षा दें

5. निगरानी एवं पशु चिकित्सा देखरेख

* पशु के शरीर का तापमान, भूख, पेशाब व मल त्याग टाढ़ पर नियमित नजर रखें * गर्भावस्था की स्थिति की जाँच कराते रहें * पशु चिकित्सक से समय-समय पर परामश लें

सूखी अवधि में कौन-कौन सी गलतियाँ नहीं करनी चाहिए? 1. दुध दोहन पूरी तरह न रोकना 2. पोषण में लापरवाही 3. थन की सफाई न करना 4. खनिज व विटामिन पूरक न देना 5. आवास को गंदा या असुरक्षित रखना 6. इनसे थन दोष, दुध ज्वर, कमजोर बछड़ा या दुध उत्पादन में कमी हो सकती है।

सरकारी व पशुपालन विभाग की भूमिका— कृषकों को सूखी अवधि के महत्व को बताने के लिए ग्राम स्तर पर प्रशिक्षण, कार्यशालाएं व पशु स्वास्थ्य शिविरों का आयोजन किया जाना चाहिए। सरकारी योजनाओं के तहत मिन्नरल मिक्स, विटामिन सप्लीमेंट्स और ड्राई काउ थेरेपी को सब्सिडी पर उपलब्ध कराया जाना चाहिए।

निष्कर्ष— सूखी अवधि का वैज्ञानिक प्रबंधन न केवल पशु के स्वास्थ्य और दुध उत्पादन को बढ़ाता है, बल्कि किसान की आर्थिक स्थिति को भी सुदृढ़ करता है। इस अवधि को नजर अंदाज करना, बियात के बादहोने वाले भारी नुकसान का कारण बन सकता है। इसलिए हर किसान को चाहिए कि वह सूखी अवधि में पशु को आराम दे, पोषण व देखरेख के सभी उपाय अपनाए और इस अवधि को दुध उत्पादन में निवेश की तरह समझे।

आक्षिता एग्रो



राघवेंद्र सिंह

8959728253

खाद, बीज एवं कीटनाशक दवाओं के थोक एवं खेरीज विक्रेता

हमारे यहां सभी प्रकार के बीज एवं कीटनाशक दवाएं एवं खरपतवार नाशक दवाएं और अधिक उपज की दवाएं उचित दामों पर मिलती हैं

पता : अरैया रोड, आंतरी, जिला-ग्वालियर (म.प्र.)



डॉ. सुमन रावटे (वैज्ञानिक)

डॉ. जेनू झा (समन्वयक), कृषि-

औद्योगिक जैव प्रौद्योगिकी में उत्कृष्टता केंद्र

(सीओई-एआईबी) इंदिरा गांधी कृषि

विश्वविद्यालय, रायपुर (छ.ग.)

बांस को "ग्रीन गोल्ड" कहा जाता है क्योंकि यह पर्यावरण संरक्षण और ग्रामीण अर्थव्यवस्था दोनों में अहम योगदान देता है। पारंपरिक तरीकों से बांस की वृद्धि धीमी और असमान होती है, जिससे उद्योगों की बढ़ती मांग पूरी नहीं हो पाती। ऐसे में टिशू कल्चर तकनीक ने बांस उत्पादन को नई दिशा दी है। यह तकनीक तेज़, रोगमुक्त और एकसमान पौध उत्पादन सुनिश्चित करती है, जिससे पर्यावरण और व्यापार दोनों को लाभ मिलता है।

पारंपरिक वृद्धि की सीमाएँ

पारंपरिक विधियों से बांस की खेती में कई चुनौतियाँ आती हैं। प्राकृतिक रूप से बांस के पौधे परिपक्व होने में 3-4 वर्ष लगते हैं और उनकी ऊँचाई व मोटाई में असमानता रहती है। रोग और कीटों के कारण पौधों की संख्या घट जाती है, जिससे उद्योगों को पर्याप्त कच्चा माल नहीं मिल पाता। इसके अलावा, पारंपरिक प्रसार विधियों से एक बार में सीमित संख्या में पौधे तैयार होते हैं, जो बढ़ती औद्योगिक मांग को पूरा करने में सक्षम नहीं होते।

टिशू कल्चर से तेज़ और एकसमान वृद्धि

टिशू कल्चर तकनीक प्रयोगशाला में पौधों को रोगमुक्त और नियंत्रित परिस्थितियों में तैयार करती है। इससे कम समय में हजारों पौधे उत्पन्न किए जा सकते हैं। इन पौधों की ऊँचाई, मोटाई और गुणवत्ता एकसमान रहती है, जिससे उद्योगों को स्थिर और भरोसेमंद आपूर्ति मिलती है। साथ ही, यह तकनीक स्थानीय जलवायु परिस्थितियों के अनुसार पौधों को अनुकूलित करने में भी सक्षम है। परिणामस्वरूप, किसानों को बेहतर उत्पादन और उद्योगों को सतत कच्चा माल मिलता है।

उद्योगों में बांस का उपयोग

बांस का उपयोग अनेक उद्योगों में होता है। फर्नीचर उद्योग में बांस से आधुनिक डिज़ाइन वाले उत्पाद जैसे कुर्सियाँ, टेबल और सजावटी वस्तुएँ बनाई जाती हैं। कागज उद्योग में बांस का रेशा उच्च गुणवत्ता वाले कागज निर्माण में सहायक है। निर्माण क्षेत्र में बांस का प्रयोग घरों, पुलों और सजावटी संरचनाओं में किया जाता है। इसके अतिरिक्त, बांस पर्यावरणीय दृष्टि से भी लाभकारी है क्योंकि यह कार्बन डाइऑक्साइड को अवशोषित कर वायु को शुद्ध करता है।

तेज़ वृद्धि, बेहतर आय का नया साधन 'किसानों हेतु बांस की टिशू कल्चर तकनीक'



किसानों के लिए लाभ

किसानों के लिए बांस की टिशू कल्चर तकनीक आय का नया साधन है। पारंपरिक खेती की तुलना में यह तकनीक कम समय में अधिक उत्पादन देती है, जिससे किसान जल्दी लाभ कमा सकते हैं। उद्योगों से सीधे अनुबंध करने का अवसर मिलता है, जिससे उनकी आय स्थिर रहती है और उन्हें बेहतर मूल्य प्राप्त होता है। बांस आधारित उत्पादों की निर्यात क्षमता भी है, जिससे किसानों को अंतरराष्ट्रीय बाज़ार तक पहुँचने का मौका मिल सकता है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि बांस की खेती पर्यावरण के लिए भी लाभकारी है। यह मिट्टी को बाँधकर कटाव रोकता है और कार्बन डाइऑक्साइड को अवशोषित कर वायु को शुद्ध करता है। किसान यदि बांस

की टिशू कल्चर तकनीक अपनाते हैं, तो वे न केवल अपनी आय बढ़ाएँगे बल्कि पर्यावरण संरक्षण में भी योगदान देंगे। इस तरह यह तकनीक किसानों को आर्थिक लाभ और सामाजिक सम्मान दोनों दिला सकती है।

निष्कर्ष

बांस की टिशू कल्चर तकनीक पर्यावरण और व्यापार दोनों के लिए वरदान है। यह तकनीक तेज़, रोगमुक्त और एकसमान पौध उत्पादन सुनिश्चित करती है, जिससे उद्योगों को स्थिर कच्चा माल मिलता है और किसानों को बेहतर आय के अवसर प्राप्त होते हैं। यदि इस तकनीक को व्यापक स्तर पर अपनाया जाए, तो बांस भारत की ग्रामीण अर्थव्यवस्था और पर्यावरण संरक्षण दोनों में क्रांतिकारी योगदान दे सकता है।





मनोज गुप्ता

जय पीताम्बर बीज भण्डार

हमारे यहाँ समस्त कंपनियों के बीज उचित दाम पर मिलते हैं।
खाद एवं दवाईयाँ मिलने का प्रमुख स्थान

रेल स्ट्रिंग कारखाने के सामने, डबरा रोड, सिधौली, ब्वालियर
मोबा.: 9301366887, फ़ोन : 0751-2434056



✍ **शाडिणजय सिंह, सुचिस्मिता साहू**
✍ **संदीप चौहान** शोध छात्र, कृषि प्रसार शिक्षा
विभाग आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी
विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या-224229 (उ.प्र.)

✍ **स्नेहा सिंह** सहायक प्राध्यापक, कृषि प्रसार शिक्षा
विभाग, राष्ट्रीय किसान स्नातकोत्तर महाविद्यालय, शामली

प्रस्तावना-वर्तमान समय में विश्व की खाद्य प्रणाली अनेक चुनौतियों का सामना कर रही है। बढ़ती जनसंख्या, जलवायु परिवर्तन, प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक दोहन, कुपोषण तथा खाद्य असमानता जैसी समस्याएँ मानव जीवन और कृषि क्षेत्र को प्रभावित कर रही हैं। संयुक्त राष्ट्र के अनुसार आने वाले वर्षों में विश्व की जनसंख्या लगभग 10 अरब तक पहुँच सकती है, जिसके कारण खाद्य मांग में अत्यधिक वृद्धि होगी। ऐसी स्थिति में केवल अधिक उत्पादन करना ही पर्याप्त नहीं होगा, बल्कि ऐसी खाद्य प्रणाली विकसित करना आवश्यक होगा जो टिकाऊ, पोषण-संवेदनशील, पर्यावरण अनुकूल और सभी वर्गों के लिए सुलभ हो। इसी व्यवस्था को "भविष्य की खाद्य प्रणाली" कहा जाता है।

भविष्य की खाद्य प्रणाली का उद्देश्य केवल भोजन उपलब्ध कराना नहीं, बल्कि मानव स्वास्थ्य, पर्यावरण संरक्षण, किसानों की आय और सामाजिक समानता को भी सुनिश्चित करना है। खाद्य परिवर्तन इसी दिशा में एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है, जिसके अंतर्गत खाद्य उत्पादन, प्रसंस्करण, भंडारण, वितरण और उपभोग की पूरी प्रणाली में सुधार किया जाता है। इस परिवर्तन को सफल बनाने में कृषि प्रसार सेवाओं की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। प्रसार सेवाएँ वैज्ञानिक अनुसंधान और किसानों के बीच एक सेतु का कार्य करती हैं। ये किसानों तक नई तकनीक, आधुनिक कृषि पद्धतियाँ और आवश्यक जानकारी पहुँचाकर कृषि विकास तथा खाद्य सुरक्षा में योगदान देती हैं।

भविष्य की खाद्य प्रणालियाँ-भविष्य की खाद्य प्रणाली ऐसी प्रणाली है जिसमें खाद्य उत्पादन और उपभोग इस प्रकार किया जाए कि वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताएँ पूरी हों तथा भविष्य की पीढ़ियों के लिए भी संसाधन सुरक्षित रहें। यह प्रणाली कृषि, पर्यावरण, पोषण और अर्थव्यवस्था के बीच संतुलन स्थापित करने पर आधारित होती है।

भविष्य की खाद्य प्रणालियों की विशेषताएँ

1. **टिकाऊ कृषि प्रणाली**-भविष्य की खाद्य प्रणाली का प्रमुख आधार टिकाऊ कृषि है। इसमें भूमि, जल, वनस्पति और जैव विविधता का संरक्षण करते हुए कृषि उत्पादन किया जाता है। रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के अत्यधिक उपयोग को कम करके जैविक एवं प्राकृतिक खेती को बढ़ावा दिया जाता है।

2. **पोषण आधारित कृषि**-वर्तमान में कई देशों में भोजन की उपलब्धता होने के बावजूद कुपोषण की समस्या बनी हुई है। इसलिए भविष्य की खाद्य प्रणाली में केवल अनाज उत्पादन पर नहीं, बल्कि पोषणयुक्त फसलों जैसे दालें, फल, सब्जियाँ और मोटे अनाज के उत्पादन पर भी विशेष ध्यान दिया जाएगा।

3. **जलवायु-स्मार्ट कृषि**-जलवायु परिवर्तन के कारण सूखा, बाढ़ और तापमान वृद्धि जैसी समस्याएँ बढ़ रही हैं। भविष्य की खाद्य प्रणाली में ऐसी कृषि तकनीकों को अपनाया जाएगा जो जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम कर सकें। उदाहरण के लिए कम पानी वाली फसलें, सूखा सहनशील बीज और जल संरक्षण तकनीकें।

4. **डिजिटल और स्मार्ट कृषि**-तकनीकी विकास के साथ कृषि

भविष्य की खाद्य प्रणालियाँ एवं खाद्य परिवर्तन में प्रसार सेवाओं की भूमिका

क्षेत्र में भी डिजिटल तकनीकों का उपयोग बढ़ रहा है। भविष्य की खाद्य प्रणाली में ड्रोन, सेंसर, कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI), मोबाइल ऐप और इंटरनेट आधारित सेवाओं का उपयोग अधिक होगा। इससे उत्पादन क्षमता बढ़ेगी तथा किसानों को सही समय पर जानकारी प्राप्त होगी।

5. **खाद्य सुरक्षा और गुणवत्ता**-भविष्य में लोगों को सुरक्षित और गुणवत्तापूर्ण भोजन उपलब्ध कराना अत्यंत आवश्यक होगा। खाद्य पदार्थों में रासायनिक अवशेषों को कम करने तथा स्वच्छ उत्पादन प्रणाली को बढ़ावा दिया जाएगा।

6. **स्थानीय खाद्य प्रणाली**-स्थानीय स्तर पर खाद्य उत्पादन और वितरण को बढ़ावा देने से परिवहन लागत कम होगी और किसानों को बेहतर बाजार उपलब्ध होगा। इससे पर्यावरण प्रदूषण भी कम होगा।

खाद्य परिवर्तन-खाद्य परिवर्तन का अर्थ है खाद्य प्रणाली में व्यापक सुधार लाना ताकि उत्पादन से लेकर उपभोग तक की पूरी प्रक्रिया अधिक प्रभावी, टिकाऊ और पोषण-संवेदनशील बन सके।

खाद्य परिवर्तन की आवश्यकता

1. **बढ़ती जनसंख्या**-विश्व की बढ़ती जनसंख्या के कारण खाद्य मांग लगातार बढ़ रही है। यदि वर्तमान कृषि प्रणाली में सुधार नहीं किया गया तो भविष्य में खाद्य संकट उत्पन्न हो सकता है।

2. **कुपोषण और स्वास्थ्य समस्याएँ**-आज भी विश्व की बड़ी आबादी पौष्टिक भोजन से वंचित है। दूसरी ओर जंक फूड और असंतुलित भोजन के कारण मोटापा और अन्य बीमारियाँ बढ़ रही हैं।

3. **पर्यावरण संरक्षण**-रासायनिक कृषि के कारण मिट्टी की उर्वरता कम हो रही है तथा जल और वायु प्रदूषण बढ़ रहा है। इसलिए पर्यावरण अनुकूल खाद्य प्रणाली की आवश्यकता है।

4. **किसानों की आय में वृद्धि**-खाद्य परिवर्तन के माध्यम से किसानों को आधुनिक तकनीक, बेहतर बाजार और मूल्य संवर्धन की सुविधा देकर उनकी आय बढ़ाई जा सकती है।

खाद्य परिवर्तन में कृषि प्रसार सेवाओं की भूमिका-कृषि प्रसार सेवाएँ कृषि विकास की रीढ़ मानी जाती हैं। इनका मुख्य उद्देश्य किसानों तक वैज्ञानिक ज्ञान और आधुनिक तकनीकों को पहुँचाना है। भविष्य की खाद्य प्रणाली को सफल बनाने में प्रसार सेवाएँ महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

1. **नई तकनीकों का प्रसार**-प्रसार कार्यकर्ता किसानों को उन्नत बीज, आधुनिक कृषि यंत्र, जैविक खेती, ड्रिप सिंचाई और आधुनिक उत्पादन तकनीकों की जानकारी प्रदान करते हैं। इससे कृषि उत्पादन और गुणवत्ता दोनों में सुधार होता है।

2. **जलवायु-स्मार्ट कृषि को बढ़ावा**-प्रसार सेवाएँ किसानों को जल संरक्षण, फसल विविधीकरण और मौसम आधारित कृषि पद्धतियों के बारे में प्रशिक्षण देती हैं। इससे किसान जलवायु परिवर्तन के प्रभावों का सामना बेहतर ढंग से कर पाते हैं।

3. **पोषण संवेदनशील कृषि का प्रचार**-प्रसार सेवाएँ किसानों को केवल अनाज उत्पादन तक सीमित न रहकर फल, सब्जियाँ, दालें और पोषण वाटिका अपनाने के लिए प्रेरित करती हैं। इससे ग्रामीण परिवारों के पोषण स्तर में सुधार होता है।

4. **जैविक एवं प्राकृतिक खेती को प्रोत्साहन**-आज के समय में जैविक उत्पादों की मांग तेजी से बढ़ रही है। प्रसार सेवाएँ

किसानों को जैविक खाद, वर्मी कम्पोस्ट तथा प्राकृतिक कीटनाशकों के उपयोग के बारे में प्रशिक्षण देती हैं।

5. **डिजिटल कृषि का विकास**-डिजिटल तकनीकों ने कृषि प्रसार को अधिक प्रभावी बना दिया है। मोबाइल फोन, व्हाट्सएप, किसान ऐप, ऑनलाइन प्रशिक्षण और सोशल मीडिया के माध्यम से किसानों तक शीघ्र जानकारी पहुँचाई जाती है।

6. **किसानों की क्षमता निर्माण**-प्रसार सेवाएँ प्रशिक्षण कार्यक्रम, किसान मेले, प्रदर्शन और कार्यशालाओं के माध्यम से किसानों के ज्ञान और कौशल का विकास करती हैं।

7. **बाजार और विपणन संबंधी जानकारी**-कई बार किसानों को उचित बाजार और सही मूल्य की जानकारी नहीं मिल पाती। प्रसार सेवाएँ किसानों को बाजार मूल्य, भंडारण, प्रसंस्करण और विपणन की जानकारी देकर उनकी आय बढ़ाने में सहायता करती हैं।

8. **महिला एवं युवा सशक्तिकरण**-ग्रामीण महिलाओं और युवाओं को कृषि उद्यमिता, मशरूम उत्पादन, मधुमक्खी पालन, डेयरी और खाद्य प्रसंस्करण जैसे कार्यों में प्रशिक्षित किया जाता है। इससे रोजगार और आय के नए अवसर उत्पन्न होते हैं।

डिजिटल प्रसार सेवाओं का महत्व-वर्तमान समय में डिजिटल तकनीक खाद्य परिवर्तन का महत्वपूर्ण माध्यम बन चुकी है। डिजिटल प्रसार सेवाएँ कम समय में अधिक किसानों तक जानकारी पहुँचाने में सक्षम हैं।

प्रमुख डिजिटल माध्यम

- * किसान कॉल सेंटर, मोबाइल ऐप, ऑनलाइन प्रशिक्षण, सोशल मीडिया, ड्रोन तकनीक, ई-मार्केटिंग प्लेटफॉर्म
- * इन तकनीकों से किसानों को मौसम, बाजार मूल्य और आधुनिक कृषि पद्धतियों की जानकारी तुरंत प्राप्त होती है।

भविष्य की चुनौतियाँ

हालाँकि खाद्य परिवर्तन की दिशा में अनेक प्रयास किए जा रहे हैं, फिर भी कुछ चुनौतियाँ बनी हुई हैं।

- * ग्रामीण क्षेत्रों में तकनीकी ज्ञान की कमी
- * छोटे किसानों की आर्थिक स्थिति कमजोर होना
- * डिजिटल सुविधाओं का अभाव
- * जलवायु परिवर्तन का बढ़ता प्रभाव
- * प्राकृतिक संसाधनों की कमी

इन चुनौतियों से निपटने के लिए सरकार, वैज्ञानिक संस्थानों और प्रसार सेवाओं के बीच समन्वय आवश्यक है।

निष्कर्ष-भविष्य की खाद्य प्रणालियाँ मानव स्वास्थ्य, पर्यावरण संरक्षण और कृषि विकास के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। खाद्य परिवर्तन के माध्यम से कृषि प्रणाली को अधिक टिकाऊ, पोषण-संवेदनशील और आधुनिक बनाया जा सकता है। इस परिवर्तन को सफल बनाने में कृषि प्रसार सेवाओं की भूमिका केंद्रीय है। प्रसार सेवाएँ किसानों तक नई तकनीक, वैज्ञानिक जानकारी और प्रशिक्षण पहुँचाकर कृषि विकास को गति प्रदान करती हैं। यदि प्रसार सेवाओं को डिजिटल तकनीक, जलवायु-स्मार्ट कृषि और पोषण आधारित दृष्टिकोण से जोड़ा जाए, तो भविष्य में खाद्य सुरक्षा, किसानों की आय और ग्रामीण विकास को मजबूत बनाया जा सकता है। इस प्रकार, भविष्य की खाद्य प्रणाली एक स्वस्थ, सुरक्षित और समृद्ध समाज के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान देगी।



प्रखर राय सस्य विज्ञान विभाग, कृषि संकाय,
प्रो. राजेंद्र सिंह (रज्जू भैया) विश्वविद्यालय, प्रयागराज

सर्वेश कुमार एमबीए (खाद्य एवं कृषि
व्यवसाय प्रबंधन) काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

डॉ. ललित कुमार सनोदिया

डॉ. अखिलेश कुमार सिंह

डॉ. अवनीश यादव

सहायक प्रोफेसर, कृषि संकाय, प्रो. राजेंद्र सिंह
(रज्जू भैया) विश्वविद्यालय, प्रयागराज (उ.प्र.)

प्रस्तावना: भारत एक कृषि प्रधान देश है, जहाँ गेहूँ प्रमुख खाद्यान्न फसलों में से एक है और विशेष रूप से उत्तर भारत में यह दैनिक आहार का मुख्य आधार है। हरित क्रांति के पश्चात उच्च उत्पादक किस्मों के विकास ने देश को खाद्यान्न उत्पादन में आत्मनिर्भर बनाया, किंतु इसके साथ ही आधुनिक गेहूँ के स्वास्थ्य प्रभावों को लेकर नई बहस भी प्रारंभ हुई है। हाल के वर्षों में William Davis द्वारा लिखित पुस्तक Wheat Belly: Lose the Wheat, Lose the Weight, and Find Your Path Back to Health. जैसी पुस्तकों ने गेहूँ के प्रति एक नई सोच को जन्म दिया है। इन विचारों के अनुसार आधुनिक गेहूँ पारंपरिक गेहूँ से भिन्न है और इसका नियमित सेवन मोटापा, मधुमेह, हृदय रोग तथा अन्य चयापचयी विकारों को बढ़ावा दे सकता है। इस दृष्टिकोण में यह भी बताया गया है कि गेहूँ रक्त में शर्करा की मात्रा को तीव्रता से बढ़ाता है तथा शरीर में वसा संचय को बढ़ावा देता है। हालांकि, वैज्ञानिक अनुसंधानों में इस विषय पर पूर्ण सहमति नहीं है। अनेक अध्ययनों से यह संकेत मिलता है कि गेहूँ के दुष्प्रभाव मुख्यतः उसके परिष्कृत रूप तथा प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थों के अत्यधिक सेवन से जुड़े होते हैं। अतः आवश्यक है कि गेहूँ के प्रभावों का मूल्यांकन संतुलित एवं प्रमाण-आधारित दृष्टिकोण से किया जाए।

गेहूँ का पोषण महत्व- गेहूँ एक महत्वपूर्ण खाद्यान्न है, जो मानव शरीर को ऊर्जा एवं आवश्यक पोषक तत्व प्रदान करता है। इसमें लगभग 60 से 70 प्रतिशत तक कार्बोहाइड्रेट पाया जाता है, जो शरीर के लिए ऊर्जा का मुख्य स्रोत है। इसके अतिरिक्त इसमें लगभग 10 से 12 प्रतिशत प्रोटीन पाया जाता है, जिसमें मुख्य रूप से ग्लूटेन होता है। साबुत गेहूँ में चोकर तथा अंकुर उपस्थित रहते हैं, जो इसे आहार रेशा, विटामिन (विशेषकर बी वर्ग) तथा खनिज जैसे लौह, जिंक एवं मैग्नीशियम से समृद्ध बनाते हैं। इसके विपरीत, परिष्कृत गेहूँ (मैदा) से इन पोषक तत्वों का अधिकांश भाग हट जाता है, जिससे उसका पोषण स्तर कम हो जाता है।

गेहूँ के विभिन्न रूप एवं उनका प्रभाव- गेहूँ का स्वास्थ्य पर प्रभाव उसके उपयोग के रूप पर निर्भर करता है। साबुत गेहूँ में उच्च मात्रा में आहार रेशा पाया जाता है, जिससे इसका पाचन धीमा होता है तथा रक्त शर्करा का स्तर संतुलित बना रहता है। यह हृदय स्वास्थ्य के लिए भी लाभकारी होता है। इसके विपरीत, परिष्कृत गेहूँ में रेशा की मात्रा कम होती है तथा यह शीघ्र पच जाता है, जिससे रक्त में शर्करा की मात्रा तेजी से बढ़ती है। इस कारण मोटापा एवं मधुमेह का जोखिम बढ़ सकता है। अतः यह स्पष्ट है कि समस्या गेहूँ में नहीं, बल्कि उसके अत्यधिक परिष्कृत रूप में है।

गेहूँ: समस्या या समाधान? स्वास्थ्य पर प्रभाव का वैज्ञानिक विश्लेषण



ग्लाइसेमिक प्रभाव एवं चयापचय संबंध- ग्लाइसेमिक प्रभाव यह दर्शाता है कि कोई खाद्य पदार्थ रक्त में शर्करा की मात्रा को कितनी तेजी से बढ़ाता है। परिष्कृत गेहूँ से बने खाद्य पदार्थों का प्रभाव अधिक होता है, जबकि साबुत गेहूँ का प्रभाव अपेक्षाकृत नियंत्रित होता है। उच्च ग्लाइसेमिक प्रभाव वाले खाद्य पदार्थों के बार-बार सेवन से रक्त शर्करा में तीव्र उतार-चढ़ाव होता है, जिससे इंसुलिन का स्तर बढ़ता है और शरीर में वसा संचय की संभावना बढ़ जाती है। यही स्थिति लंबे समय में मधुमेह तथा अन्य चयापचयी विकारों का कारण बन सकती है।

ग्लूटेन एवं स्वास्थ्य- ग्लूटेन गेहूँ में पाया जाने वाला एक प्रमुख प्रोटीन है, जो आटे को लोच प्रदान करता है। सामान्य व्यक्तियों में इसका सेवन सुरक्षित एवं पाचन योग्य होता है। किन्तु कुछ विशेष स्थितियों जैसे सीलिएक रोग तथा ग्लूटेन संवेदनशीलता में यह हानिकारक सिद्ध हो सकता है। यह समस्याएँ जनसंख्या के बहुत छोटे भाग में ही पाई जाती हैं, इसलिए सामान्य व्यक्तियों के लिए इसका त्याग आवश्यक नहीं है।

प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थों की भूमिका- वर्तमान समय में गेहूँ से बने प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थों जैसे ब्रेड, बिस्किट, केक एवं अन्य उत्पादों का उपयोग बढ़ गया है। इन उत्पादों में सामान्यतः अधिक मात्रा में चीनी एवं वसा पाई जाती है, जबकि आहार रेशा कम होता है। इनका अत्यधिक सेवन स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं का प्रमुख

कारण बनता है। अतः यह कहा जा सकता है कि समस्या गेहूँ में नहीं, बल्कि उसके प्रसंस्करण एवं असंतुलित सेवन में है।

मोटापा एवं गेहूँ का संबंध- मोटापा एक बहु-कारक समस्या है, जो केवल किसी एक खाद्य पदार्थ पर निर्भर नहीं करता। इसके प्रमुख कारणों में अधिक ऊर्जा सेवन, शारीरिक गतिविधि की कमी तथा असंतुलित आहार शामिल हैं। वैज्ञानिक अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि साबुत अनाज का संतुलित सेवन वजन नियंत्रण में सहायक हो सकता है। अतः केवल गेहूँ को मोटापे का कारण मानना उचित नहीं है।

किसानों के लिए महत्व- वर्तमान समय में उपभोक्ताओं के बीच पोषक एवं स्वास्थ्यवर्धक खाद्य पदार्थों की मांग बढ़ रही है, जिससे किसानों के लिए नए अवसर उत्पन्न हो रहे हैं। साबुत गेहूँ एवं बहु-अनाज आटे की मांग में वृद्धि हो रही है। किसान यदि गुणवत्ता, पोषण एवं मूल्य संवर्धन पर ध्यान दें, तो वे अपनी आय में वृद्धि कर सकते हैं। इसके साथ ही जैविक खेती को अपनाकर भी बेहतर बाजार मूल्य प्राप्त किया जा सकता है।

चर्चा- कुछ लोकप्रिय पुस्तकों में गेहूँ को स्वास्थ्य समस्याओं का मुख्य कारण बताया गया है, परंतु यह दृष्टिकोण पूर्णतः वैज्ञानिक नहीं है। गेहूँ के प्रति अत्यधिक नकारात्मक दृष्टिकोण मुख्यतः आधुनिक प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थों के प्रभाव को सीधे गेहूँ से जोड़ता है। वास्तव में स्वास्थ्य पर प्रभाव अनेक कारकों पर निर्भर करता है, जैसे आहार की गुणवत्ता, जीवनशैली, शारीरिक गतिविधि एवं आनुवंशिकता। इसलिए इस विषय में संतुलित एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाना आवश्यक है।

निष्कर्ष- गेहूँ एक महत्वपूर्ण एवं पोषक खाद्यान्न है, जो संतुलित आहार का महत्वपूर्ण भाग हो सकता है। साबुत गेहूँ स्वास्थ्य के लिए लाभकारी है, जबकि परिष्कृत गेहूँ उत्पादों का अत्यधिक सेवन हानिकारक हो सकता है। अतः यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि समस्या गेहूँ में नहीं, बल्कि उसके उपयोग के तरीके में है।

लता खाद एवं सीमेन्ट मण्डार

मो. 7974259803 (मुफ्ता ली)
9630470111 सागर (छोटा)

हमारे यहाँ खाद, बीज एवं दवाईयाँ उचित रेट पर उपलब्ध है। थोक एवं खैरिज विक्रेता

पता: भितरवार रोड़, डबरा जिला ग्वा. (म.प्र.)



आकांक्षा (शोध छात्रा) सेंटर ऑफ फूड टेक्नोलॉजी इंस्टीट्यूट ऑफ प्रोफेशनल स्टडीज, इलाहाबाद विश्वविद्यालय प्रयागराज (उ.प्र.)

फलों एवं सब्जियों के उप-उत्पादों का उपयोग

खाद्य उद्योग में उप-उत्पादों का उपयोग

1. **आहार रेशा युक्त खाद्य उत्पाद-** सेब, संतरा, आम एवं केले के छिलकों से प्राप्त फाइबर का उपयोग बिस्कुट, ब्रेड, केक, पास्ता, नूडल्स तथा स्नैक उत्पादों में किया जाता है। इससे उत्पादों की पोषण गुणवत्ता बढ़ती है और वे कार्यात्मक खाद्य के रूप में विकसित होते हैं।

2. **पेक्टिन का उत्पादन-** संतरा, नींबू एवं सेब के छिलकों से पेक्टिन निकाला जाता है, जिसका उपयोग जैम, जेली, मुरब्बा, कैन्डी तथा डेयरी उत्पादों में गाढ़ापन प्रदान करने के लिए किया जाता है।

3. **प्राकृतिक खाद्य रंग-** चुकंदर से बेटानिन, गाजर से बीटा-कैरोटीन, टमाटर से लाइकोपीन तथा अंगूर एवं जामुन के अवशेषों से एंथोसायनिन प्राप्त किए जाते हैं। ये कृत्रिम रंगों के सुरक्षित विकल्प हैं।

4. **प्राकृतिक एंटीऑक्सीडेंट-** अनार के छिलके, अंगूर के बीज, आम के छिलके तथा सेब के अवशेषों से पॉलीफेनॉल युक्त अर्क तैयार किए जाते हैं। इनका उपयोग खाद्य पदार्थों की गुणवत्ता बनाए रखने तथा ऑक्सीकरण को कम करने के लिए किया जाता है।

5. **आवश्यक तेलों का उत्पादन-** संतरा, नींबू, मौसमी एवं किनू के छिलकों से आवश्यक तेल प्राप्त किए जाते हैं। इनका उपयोग पेय पदार्थों, बेकरी उत्पादों, मिठाइयों, सौंदर्य प्रसाधनों तथा औषधीय उत्पादों में किया जाता है।

उप-उत्पादों से मूल्य संवर्धित उत्पाद-

आज खाद्य उद्योग उप-उत्पादों को विभिन्न मूल्य संवर्धित उत्पादों में परिवर्तित कर रहा है-

* फलों के छिलकों का पाउडर * आहार रेशा अनुपूरक

* प्राकृतिक एंटीऑक्सीडेंट अर्क * फलों के बीजों से खाद्य तेल * स्टार्च आधारित जैव अपघटनीय पैकेजिंग

विभिन्न फलों एवं सब्जियों के उप-उत्पादों का उपयोग

आम- आम के छिलकों में कैरोटेनॉयड्स एवं पॉलीफेनॉल प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। इनके पाउडर का उपयोग बेकरी उत्पादों एवं स्वास्थ्यवर्धक खाद्य पदार्थों में किया जाता है। आम की गुठली से स्टार्च एवं खाद्य तेल प्राप्त किया जाता है।

केला- केले के छिलकों में पोर्टैशियम, फाइबर एवं एंटीऑक्सीडेंट पाए जाते हैं। इनका उपयोग पशु आहार, बायोफर्टिलाइजर, बिस्कुट एवं फाइबर युक्त खाद्य पदार्थों में किया जाता है।

संतरा एवं नींबू- इनके छिलकों से पेक्टिन, आवश्यक तेल एवं फ्लेवोनॉयड्स प्राप्त किए जाते हैं। ये खाद्य उद्योग के साथ-साथ औषधि एवं कॉस्मेटिक उद्योग में भी उपयोगी हैं।

टमाटर- टमाटर के छिलके एवं बीज लाइकोपीन तथा प्राकृतिक तेल के अच्छे स्रोत हैं। इनका उपयोग स्वास्थ्य अनुपूरकों एवं प्राकृतिक रंगों के उत्पादन में किया जाता है।

आलू- आलू के छिलकों में स्टार्च, फाइबर एवं फेनोलिक यौगिक पाए जाते हैं। इनसे स्टार्च, पशु आहार, जैव ईंधन तथा बायोडिग्रेडेबल पैकेजिंग सामग्री विकसित की जा सकती है।

अनार- अनार के छिलकों में टैनिन एवं पॉलीफेनॉल की उच्च मात्रा होती है। इनका उपयोग प्राकृतिक एंटीऑक्सीडेंट, खाद्य परिरक्षक तथा औषधीय उत्पादों के निर्माण में किया जाता है।

अंगूर- अंगूर के बीजों से प्राप्त तेल असंतृप्त वसीय अम्लों एवं विटामिन ई से भरपूर होता है। इसका उपयोग खाद्य, औषधीय एवं सौंदर्य प्रसाधन उद्योग में किया जाता है।

औषधीय एवं स्वास्थ्य संबंधी उपयोग

फल एवं सब्जी उप-उत्पादों से प्राप्त जैव सक्रिय यौगिक अनेक स्वास्थ्य लाभ प्रदान करते हैं-

* मुक्त कणों से सुरक्षा * हृदय रोगों का जोखिम कम करना * मधुमेह नियंत्रण में सहायता * कैन्सर-रोधी गुण * रोग प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि * पाचन स्वास्थ्य में सुधार * सूजन कम करने में सहायक

इसी कारण इनका उपयोग न्यूट्रास्यूटिकल्स, कार्यात्मक खाद्य तथा आहार अनुपूरकों के निर्माण में तेजी से बढ़ रहा है।

पर्यावरण संरक्षण में भूमिका- यदि फलों एवं सब्जियों के अपशिष्ट का उचित प्रबंधन न किया जाए, तो यह पर्यावरण प्रदूषण, दुर्गंध तथा ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन का कारण बनता है। उप-उत्पादों का पुनः उपयोग निम्नलिखित लाभ प्रदान करता है-

* खाद्य अपशिष्ट में कमी * लैंडफिल पर दबाव कम होना * ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन घटना * जैविक खाद एवं बायोगैस का उत्पादन * प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण * सतत कृषि एवं प्रसंस्करण को बढ़ावा

किसानों एवं खाद्य उद्योग के लिए लाभ

उप-उत्पादों का वैज्ञानिक उपयोग किसानों एवं उद्योगों दोनों के लिए लाभदायक है- * अतिरिक्त आय के नए स्रोत * मूल्य संवर्धित उत्पादों का विकास * उत्पादन लागत में कमी * रोजगार के अवसरों में वृद्धि * निर्यात की संभावनाओं का विस्तार * ग्रामीण उद्यमिता को प्रोत्साहन * लघु एवं मध्यम खाद्य उद्योगों का विकास

उभरती प्रौद्योगिकियां- आधुनिक खाद्य विज्ञान में उप-उत्पादों के उपयोग हेतु अनेक नवीन तकनीकों का विकास हुआ है-

* एंजाइम आधारित निष्कर्षण * अल्ट्रासोनिक निष्कर्षण * माइक्रोवेव आधारित निष्कर्षण * सुपरक्रिटिकल फ्लूइड निष्कर्षण * माइक्रोएनकैप्सुलेशन * फ्रीज ड्राइंग * स्प्रे ड्राइंग * नैनो प्रौद्योगिकी आधारित जैव सक्रिय यौगिकों का संरक्षण

चुनौतियां- उप-उत्पादों के व्यापक उपयोग में कुछ प्रमुख चुनौतियां भी हैं-

* मौसमी उपलब्धता एवं गुणवत्ता में भिन्नता * संग्रहण एवं परिवहन की समस्याएँ * प्रसंस्करण हेतु आधुनिक तकनीकों की आवश्यकता * छोटे उद्योगों में निवेश की कमी निष्कर्ष- फलों एवं सब्जियों के उप-उत्पाद पोषण, स्वास्थ्य, खाद्य उद्योग और पर्यावरण के लिए अत्यंत उपयोगी संसाधन हैं। इनका वैज्ञानिक उपयोग खाद्य अपशिष्ट को कम करने, मूल्य संवर्धित उत्पादों के निर्माण, किसानों की आय बढ़ाने तथा पर्यावरण संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। आधुनिक प्रसंस्करण तकनीकों और सतत विकास की अवधारणा के साथ इन उप-उत्पादों का प्रभावी उपयोग पोषण सुरक्षा, आर्थिक विकास एवं हरित अर्थव्यवस्था को बढ़ावा देने में सहायक सिद्ध होगा।

प्रस्तावना: भारत विश्व के प्रमुख फल एवं सब्जी उत्पादक देशों में से एक है। इनके प्रसंस्करण के दौरान छिलके, बीज, गूदा, डंटल एवं अन्य अवशेष बड़ी मात्रा में उत्पन्न होते हैं, जिन्हें सामान्यतः अपशिष्ट माना जाता है। जबकि ये उप-उत्पाद आहार रेशा, विटामिन, खनिज, पेक्टिन, प्राकृतिक रंगद्रव्य, एंटीऑक्सीडेंट तथा अन्य जैव सक्रिय यौगिकों के समृद्ध स्रोत हैं। इन उप-उत्पादों का वैज्ञानिक उपयोग खाद्य अपशिष्ट को कम करने, मूल्य संवर्धित उत्पादों के निर्माण, पर्यावरण संरक्षण, किसानों की आय बढ़ाने तथा पोषण सुरक्षा को सुदृढ़ करने में महत्वपूर्ण योगदान देता है। वर्तमान में शून्य अपशिष्ट प्रसंस्करण एवं परिपत्र अर्थव्यवस्था की अवधारणाओं के कारण फलों एवं सब्जियों के उप-उत्पादों का प्रभावी उपयोग सतत विकास की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम माना जा रहा है।

फल एवं सब्जी उप-उत्पादों का स्वरूप: फल एवं सब्जियों के प्रसंस्करण के दौरान प्राप्त विभिन्न उप-उत्पाद निम्नलिखित हैं-

* फलों के छिलके (आम, केला, संतरा, सेब, अनार, कीवी आदि)

* बीज (आम, तरबूज, कद्दू, पपीता, अंगूर आदि)

* गूदा एवं पल्प अवशेष

* पत्तियाँ एवं डंटल

* बाहरी आवरण एवं छिलके (प्याज, आलू, लहसुन आदि)

* गन्ने की खोई, टमाटर की त्वचा एवं बीज, गाजर एवं चुकंदर के अवशेष

इन उप-उत्पादों में अनेक ऐसे पोषक एवं जैव सक्रिय घटक पाए जाते हैं जो स्वास्थ्य के लिए अत्यंत लाभकारी होते हैं।

उप-उत्पादों का पोषण महत्व

फल एवं सब्जियों के उप-उत्पाद पोषण की दृष्टि से अत्यंत समृद्ध होते हैं। इनमें निम्नलिखित प्रमुख पोषक तत्व पाए जाते हैं-

* आहार रेशा - पाचन तंत्र को स्वस्थ रखने, कब्ज कम करने तथा मधुमेह एवं हृदय रोगों के जोखिम को घटाने में सहायक।

* **पॉलीफेनॉल एवं फ्लेवोनॉयड्स:** शक्तिशाली एंटीऑक्सीडेंट जो कोशिकाओं को ऑक्सीडेटिव क्षति से बचाते हैं।

* **पेक्टिन:** जैम एवं जेली निर्माण में उपयोगी तथा कोलेस्ट्रॉल कम करने में सहायक।

* **प्राकृतिक रंगद्रव्य:** कैरोटेनॉयड्स, एंथोसायनिन, लाइकोपीन एवं क्लोरोफिल प्राकृतिक खाद्य रंग के रूप में उपयोगी।

* **विटामिन एवं खनिज:** विटामिन सी, विटामिन ई, पोर्टैशियम, कैल्शियम एवं मैग्नीशियम की पर्याप्त मात्रा।

* **आवश्यक तेल एवं सुगंधित यौगिक:** विशेषकर खट्टे फलों के छिलकों में पाए जाते हैं।



✍ **सिद्धार्थ मिश्रा, अनंत शर्मा** (शोध छात्र
सस्य विज्ञान संकाय)

✍ **राहुल कुमार** कृषि प्रसार शिक्षा विभाग,
आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय
कुमारगंज, अयोध्या-224229 (उ.प्र.)

✍ **रितु यादव** सस्य विज्ञान संकाय, सैम हिंगिनबॉटम
कृषि, प्रौद्योगिकी और विज्ञान विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्रस्तावना: वर्तमान समय में कृषि क्षेत्र अनेक चुनौतियों का सामना कर रहा है। बढ़ती जनसंख्या, जलवायु परिवर्तन, मृदा उर्वरता में कमी, जल संकट तथा उत्पादन लागत में वृद्धि जैसी समस्याएँ कृषि को प्रभावित कर रही हैं। दूसरी ओर, खाद्यान्न की मांग निरंतर बढ़ रही है। ऐसी स्थिति में केवल पारंपरिक कृषि पद्धतियाँ पर्याप्त नहीं रह गई हैं। किसानों को ऐसी तकनीकों की आवश्यकता है जो कम संसाधनों में अधिक उत्पादन प्रदान करें तथा पर्यावरण संरक्षण भी सुनिश्चित करें। इसी आवश्यकता को पूरा करने के लिए "प्रिसीजन फार्मिंग" अर्थात् "सटीक कृषि" की अवधारणा विकसित हुई है।

प्रिसीजन फार्मिंग की अवधारणा- प्रिसीजन फार्मिंग वह कृषि प्रणाली है जिसमें खेत के प्रत्येक भाग की स्थिति का विश्लेषण करके आवश्यकतानुसार इनपुट प्रदान किए जाते हैं। इसमें "सही मात्रा, सही समय, सही स्थान और सही विधि" का सिद्धांत अपनाया जाता है। उदाहरण के लिए यदि खेत के किसी भाग में नाइट्रोजन की कमी है, तो केवल उसी क्षेत्र में उर्वरक दिया जाता है। इससे उर्वरक की बचत होती है तथा पर्यावरण प्रदूषण भी कम होता है।

प्रिसीजन फार्मिंग के प्रमुख उद्देश्य- 1. कृषि उत्पादन में वृद्धि करना। 2. जल एवं उर्वरकों का कुशल उपयोग। 3. उत्पादन लागत में कमी लाना। 4. मृदा स्वास्थ्य का संरक्षण। 5. पर्यावरण प्रदूषण को कम करना। 6. किसानों की आय में वृद्धि। 7. टिकाऊ कृषि विकास को बढ़ावा देना।

प्रिसीजन फार्मिंग में उपयोग होने वाली आधुनिक तकनीकें 1. ग्लोबल पोजिशनिंग सिस्टम- ग्लोबल पोजिशनिंग तकनीक खेत की सटीक स्थिति, क्षेत्रफल तथा भौगोलिक जानकारी प्रदान करती है। इसके माध्यम से किसान खेत का डिजिटल नक्शा तैयार कर सकते हैं तथा उर्वरक, बीज एवं सिंचाई की मात्रा का वैज्ञानिक निर्धारण कर सकते हैं। आधुनिक कृषि में जीपीएस आधारित प्रिसीजन फार्मिंग से 10-20 प्रतिशत तक उर्वरक बचत तथा 15-25% तक उत्पादन वृद्धि देखी गई है। यह तकनीक ट्रैक्टर एवं कृषि मशीनों के संचालन को भी अधिक सटीक बनाती है। जीपीएस द्वारा खेत की सही मैपिंग संभव होती है, जिससे श्रम एवं समय की बचत होती है तथा इनपुट प्रबंधन अधिक प्रभावी एवं सुविधाजनक बनता है।

2. **भौगोलिक सूचना प्रणाली (GIS)-** भौगोलिक सूचना प्रणाली GIS ऐसी आधुनिक तकनीक है, जो खेत की मिट्टी, जल, फसल तथा जलवायु से संबंधित आंकड़ों का विश्लेषण करती है। इसके माध्यम से किसान विभिन्न क्षेत्रों की उत्पादकता, मृदा स्वास्थ्य तथा संसाधनों की स्थिति का अध्ययन कर सकते हैं। वैज्ञानिक दृष्टि से GIS तकनीक कृषि नियोजन एवं संसाधन प्रबंधन में अत्यंत उपयोगी मानी जाती है। इससे मृदा उर्वरता का विश्लेषण, रोग एवं कीट प्रबंधन तथा सिंचाई योजना तैयार करने में सहायता मिलती है। GIS आधारित प्रबंधन से जल उपयोग दक्षता बढ़ती है तथा उर्वरकों एवं अन्य कृषि निवेशों का वैज्ञानिक उपयोग संभव होता है।

3. **ड्रोन तकनीक-** ड्रोन तकनीक आधुनिक कृषि की एक महत्वपूर्ण वैज्ञानिक तकनीक बन चुकी है। इसके माध्यम से किसान कम समय में बड़े क्षेत्र की निगरानी कर सकते हैं। ड्रोन द्वारा फसलों के स्वास्थ्य की जांच,

प्रिसीजन कृषि और आधुनिक तकनीकों द्वारा सतत कृषि विकास की नई दिशा

रोग एवं पोषक तत्वों की कमी की पहचान तथा कीटनाशकों और उर्वरकों का सटीक छिड़काव किया जाता है। इससे समय, श्रम एवं लागत की बचत होती है तथा उत्पादन क्षमता में वृद्धि होती है। ड्रोन तकनीक पर्यावरण संरक्षण में भी सहायक है क्योंकि इससे रसायनों का संतुलित उपयोग संभव होता है। भारत में कई राज्यों में ड्रोन आधारित कृषि सेवाएँ तेजी से लोकप्रिय हो रही हैं और किसान आधुनिक खेती की ओर अग्रसर हो रहे हैं।

4. **सेंसर तकनीक** - सेंसर तकनीक आधुनिक कृषि में अत्यंत उपयोगी सिद्ध हो रही है। मिट्टी की नमी, तापमान तथा पोषक तत्वों की सही जानकारी प्राप्त करने के लिए विभिन्न प्रकार के सेंसरों का उपयोग किया जाता है। प्रमुख सेंसरों में मिट्टी नमी सेंसर, तापमान सेंसर तथा चभ सेंसर शामिल हैं। ये सेंसर खेत की वास्तविक स्थिति का निरंतर आंकलन करते हैं और किसानों को आवश्यक जानकारी प्रदान करते हैं। प्राप्त आंकड़ों के आधार पर सिंचाई एवं उर्वरक प्रबंधन वैज्ञानिक ढंग से किया जाता है। इससे पानी और उर्वरकों की बचत होती है, लागत कम होती है तथा फसलों की उत्पादकता और गुणवत्ता में वृद्धि होती है।

5. **इंटरनेट ऑफ थिंग्स (IoT)** - आधारित उपकरण आधुनिक कृषि को स्मार्ट बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। ये उपकरण इंटरनेट से जुड़े रहते हैं और वास्तविक समय में जानकारी प्रदान करते हैं। इनका उपयोग स्वचालित सिंचाई प्रणाली, मौसम की निगरानी तथा फसल स्वास्थ्य प्रबंधन में किया जाता है। उदाहरण के रूप में, स्मार्ट सिंचाई प्रणाली मिट्टी की नमी के अनुसार स्वतः पानी प्रदान करती है, जिससे जल की बचत होती है। IoT तकनीक किसानों को सही समय पर निर्णय लेने में सहायता करती है तथा उत्पादन और संसाधन प्रबंधन को अधिक प्रभावी बनाती है।

6. **कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI)** - कृत्रिम बुद्धिमत्ता कृषि क्षेत्र में डेटा का विश्लेषण करके सही निर्णय लेने में सहायता करती है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता के माध्यम से फसल रोग पहचान, मौसम पूर्वानुमान, उपज अनुमान तथा खरपतवार पहचान जैसे कार्य अधिक सटीकता से किए जा रहे हैं।

7. **रिमोट सेंसिंग तकनीक** - उपग्रह एवं ड्रोन से प्राप्त चित्रों के माध्यम से खेत की स्थिति का अध्ययन किया जाता है।

उपयोग * फसल वृद्धि का मूल्यांकन * सूखा एवं बाढ़ की निगरानी * रोगप्रस्त क्षेत्रों की पहचान

टिकाऊ कृषि विकास में प्रिसीजन फार्मिंग की भूमिका

1. **जल संरक्षण** - कृषि क्षेत्र में जल की अत्यधिक खपत होती है। प्रिसीजन फार्मिंग के माध्यम से ड्रिप एवं स्प्रिंकलर सिंचाई प्रणाली अपनाकर जल की बचत की जा सकती है।

परिणाम- * 30-50 प्रतिशत तक जल की बचत * अधिक सिंचाई से होने वाले नुकसान में कमी * भूजल संरक्षण

2. **उर्वरकों का संतुलित उपयोग** - प्रिसीजन फार्मिंग में आवश्यकता के अनुसार ही उर्वरकों का उपयोग किया जाता है, जिससे खेत में रासायनिक उर्वरकों का अत्यधिक प्रयोग नहीं होता। इससे मृदा की गुणवत्ता बनी रहती है और उसका स्वास्थ्य सुरक्षित रहता है। इस पद्धति से उर्वरक लागत में कमी आती है तथा नाइट्रेट प्रदूषण भी घटता है। वैज्ञानिक पोषक प्रबंधन के कारण कृषि अधिक टिकाऊ, संतुलित और पर्यावरण-अनुकूल बनती है।

3. **कीटनाशकों का नियंत्रित उपयोग** - ड्रोन एवं सेंसर तकनीक के माध्यम से केवल प्रभावित क्षेत्रों में ही कीटनाशकों का छिड़काव किया जाता है। इससे रसायनों का अनावश्यक उपयोग कम होता है और पर्यावरण प्रदूषण घटता है।

4. **मृदा स्वास्थ्य प्रबंधन** - मृदा परीक्षण एवं डिजिटल मैपिंग द्वारा खेत की पोषक स्थिति का वैज्ञानिक विश्लेषण किया जाता है। इससे संतुलित पोषण प्रबंधन संभव होता है और फसलों को आवश्यक तत्व उचित मात्रा में मिलते हैं।

5. **जलवायु परिवर्तन से अनुकूलन** - आधुनिक तकनीकें किसानों को मौसम संबंधी महत्वपूर्ण जानकारी समय पर प्रदान करती हैं, जिससे वे कृषि कार्यों की सही योजना बना सकते हैं। वर्षा पूर्वानुमान, तापमान चेतावनी तथा सूखा प्रबंधन जैसी सुविधाएँ किसानों को प्राकृतिक जोखिमों से बचाने में सहायक होती हैं।

भारत में प्रिसीजन फार्मिंग की स्थिति - भारत में प्रिसीजन फार्मिंग का उपयोग धीरे-धीरे बढ़ रहा है। विशेष रूप से पंजाब, हरियाणा, महाराष्ट्र, कर्नाटक तथा तमिलनाडु जैसे राज्यों में आधुनिक कृषि तकनीकों का उपयोग किया जा रहा है। भारत सरकार की प्रमुख आधुनिक कृषि योजनाएँ-

1- **डिजिटल कृषि मिशन** - इस योजना का उद्देश्य कृषि क्षेत्र में डिजिटल तकनीकों का उपयोग बढ़ाना है। इसके अंतर्गत किसानों को डिजिटल डेटा, स्मार्ट उपकरण, कृषि एप तथा ऑनलाइन सेवाओं से जोड़ा जाता है। इससे खेती अधिक वैज्ञानिक और आधुनिक बनती है।

2- **प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना** - इस योजना का मुख्य उद्देश्य "हर खेत को पानी" उपलब्ध कराना तथा जल संरक्षण को बढ़ावा देना है। सूक्ष्म सिंचाई तकनीकों जैसे ड्रिप एवं स्प्रिंकलर प्रणाली को प्रोत्साहित किया जाता है।

3. **मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना** - इस योजना के अंतर्गत किसानों की मिट्टी का परीक्षण कर उसकी पोषक स्थिति की जानकारी दी जाती है। इससे संतुलित उर्वरक उपयोग और मृदा स्वास्थ्य संरक्षण संभव होता है।

4- **किसान ड्रोन योजना** - इस योजना के माध्यम से कृषि में ड्रोन तकनीक को बढ़ावा दिया जा रहा है। ड्रोन द्वारा फसल निगरानी, उर्वरक एवं कीटनाशक छिड़काव तथा भूमि सर्वेक्षण जैसे कार्य किए जाते हैं।

5- **स्मार्ट कृषि परियोजनाएँ** - इन परियोजनाओं का उद्देश्य प्लव्ज एप सेंसर एवं आधुनिक मशीनों के माध्यम से कृषि को स्मार्ट बनाना है। इससे उत्पादन क्षमता, संसाधन प्रबंधन तथा किसानों की आय में वृद्धि होती है।

प्रिसीजन फार्मिंग के आर्थिक लाभ

1. **उत्पादन लागत में कमी** - उर्वरक, जल एवं कीटनाशकों का नियंत्रित उपयोग लागत घटाता है।

2. **उत्पादन में वृद्धि** - सटीक प्रबंधन से फसल की वृद्धि बेहतर होती है।

3. **किसानों की आय में वृद्धि** - अधिक उत्पादन और कम लागत से लाभ बढ़ता है।

4. **संसाधनों की बचत** - जल, ऊर्जा और श्रम का कुशल उपयोग संभव होता है।

प्रिसीजन फार्मिंग की चुनौतियाँ - हालाँकि प्रिसीजन फार्मिंग के अनेक लाभ हैं, फिर भी इसके व्यापक प्रसार में कई बाधाएँ हैं।

1. **उच्च प्रारंभिक लागत** - ड्रोन, सेंसर और एआई उपकरण महंगे होते हैं।

2. **तकनीकी ज्ञान की कमी** - कई किसानों को आधुनिक तकनीकों की जानकारी नहीं है।

3. **छोटे खेतों की समस्या** - भारत में अधिकांश किसानों के पास छोटे एवं बिखरे खेत हैं।

4. **इंटरनेट एवं बिजली की कमी** - ग्रामीण क्षेत्रों में तकनीकी आधारभूत संरचना सीमित है।

5. **प्रशिक्षण की आवश्यकता** - तकनीकों के प्रभावी उपयोग हेतु किसानों को प्रशिक्षण आवश्यक है।



नीरज पाली पीएचडी स्कॉलर, उद्यानिकी विभाग
(सब्जी विज्ञान) शुआट्स, नैनी, प्रयागराज-211007

हेमंत सिंह परमार टीचिंग असिस्टेंट, विज्ञान और
अनुसंधान विभाग, IPS एकेडमी, इंदौर 452012

भूमिका-भारत विश्व के प्रमुख बागवानी उत्पादक देशों में से एक है। देश में प्रतिवर्ष 350 मिलियन टन से अधिक फल एवं सब्जियों का उत्पादन होता है, जो पोषण सुरक्षा, रोजगार सृजन तथा कृषि अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। फल एवं सब्जियाँ विटामिन, खनिज, एंटीऑक्सीडेंट तथा आहार रेशों का समृद्ध स्रोत हैं, इसलिए संतुलित आहार में इनका विशेष महत्व है। यद्यपि भारत उत्पादन के क्षेत्र में अग्रणी है, फिर भी कटाई के बाद उचित प्रबंधन के अभाव में अनुमानतः 15-30 प्रतिशत तक उपज नष्ट हो जाती है। यह हानि केवल किसानों की आय को प्रभावित नहीं करती, बल्कि खाद्य सुरक्षा, पोषण उपलब्धता और राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था पर भी प्रतिकूल प्रभाव डालती है। ऐसी परिस्थिति में कटाई उपरांत प्रबंधन (Post-Harvest Management) आधुनिक कृषि का एक महत्वपूर्ण घटक बन गया है। यह केवल उपज को सुरक्षित रखने की तकनीक नहीं, बल्कि गुणवत्ता संरक्षण, मूल्य संवर्धन, बाजार प्रतिस्पर्धा तथा किसानों की आय बढ़ाने का प्रभावी माध्यम है।

कटाई उपरांत प्रबंधन का महत्व-कटाई उपरांत प्रबंधन से आशय उन सभी वैज्ञानिक प्रक्रियाओं से है, जो फसल की कटाई के बाद उपभोक्ता तक पहुँचने तक अपनाई जाती हैं। इसमें कटाई, सफाई, ग्रेडिंग, पैकेजिंग, प्री-क्लिंग, भंडारण, परिवहन, प्रसंस्करण तथा विपणन जैसी गतिविधियाँ सम्मिलित हैं। यदि इन प्रक्रियाओं को वैज्ञानिक ढंग से अपनाया जाए तो उत्पाद की गुणवत्ता लंबे समय तक बनी रहती है, खराब होने की संभावना कम होती है तथा किसानों को बेहतर बाजार मूल्य प्राप्त होता है। विशेषकर फल एवं सब्जियाँ अत्यधिक नाशवान होती हैं, जिनमें कटाई के बाद भी श्वसन, वाष्पोत्सर्जन तथा जैव-रासायनिक क्रियाएँ लगातार चलती रहती हैं। इसलिए समय पर उचित प्रबंधन अत्यंत आवश्यक है।

कटाई के समय अपनाई जाने वाली सावधानियाँ-गुणवत्ता संरक्षण की शुरुआत खेत से ही होती है। उचित परिपक्वता अवस्था में कटाई करना सबसे महत्वपूर्ण कदम है। समय से पहले कटाई करने पर स्वाद एवं पोषण गुणवत्ता प्रभावित होती है, जबकि अधिक देर से कटाई करने पर भंडारण क्षमता कम हो जाती है।

कटाई के समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए- * सुबह या शाम के समय कटाई करें। * तेज धूप या वर्षा के समय कटाई से बचें। * धारदार एवं स्वच्छ उपकरणों का उपयोग करें। * फल एवं सब्जियों को गिरने या चोट लगने से बचाएँ। * साफ प्लास्टिक क्रेट या टोकरीयों का उपयोग करें।

गुणवत्ता संरक्षण की प्रमुख तकनीकें-कटाई के तुरंत बाद उपज का तापमान कम करना, जिसे प्री-क्लिंग कहा जाता है, गुणवत्ता संरक्षण की सबसे प्रभावी तकनीकों में से एक है। इससे श्वसन दर कम होती है, जल हानि घटती है तथा ताजगी लंबे समय तक बनी रहती है।

इसके अतिरिक्त निम्न तकनीकों का अत्यंत उपयोगी है-

ग्रेडिंग एवं छंटाई: आकार, रंग एवं गुणवत्ता के आधार पर वर्गीकरण करने से बाजार मूल्य बढ़ता है।

उचित पैकेजिंग: नालीदार गत्ते के डिब्बे, प्लास्टिक क्रेट तथा

फल एवं सब्जी फसलों का कटाई उपरांत प्रबंधन: गुणवत्ता संरक्षण, मूल्य संवर्धन एवं किसानों की आय वृद्धि की प्रभावी कुंजी

वेंटिलेटेड पैकेजिंग उत्पाद को यांत्रिक क्षति से बचाते हैं।

शीत भंडारण: नियंत्रित तापमान एवं आर्द्रता पर भंडारण करने से शेल्फ लाइफ कई गुना बढ़ जाती है।

कोल्ड चेन प्रबंधन: खेत से बाजार तक नियंत्रित तापमान बनाए रखने से गुणवत्ता सुरक्षित रहती है तथा निर्यात योग्य उत्पाद प्राप्त होते हैं।

मूल्य संवर्धन: आय वृद्धि का सशक्त माध्यम-फल एवं सब्जियों को प्रसंस्कृत कर उनके आर्थिक मूल्य में वृद्धि करना मूल्य संवर्धन (Value Addition) कहलाता है। यह किसानों की आय बढ़ाने का सबसे प्रभावी उपाय माना जाता है।

आम, अमरूद, आंवला, टमाटर, प्याज, लहसुन, अदरक तथा अन्य बागवानी उत्पादों से अनेक मूल्यवर्धित उत्पाद तैयार किए जा सकते हैं, जैसे- * जैम एवं जेली * स्कैश एवं सिरप * अचार एवं चटनी * टमाटर सॉस एवं केचप * निर्जलित (डिहाइड्रेटेड) सब्जियाँ * फल कैन्डी एवं मुरब्बा * पल्प, प्युरी एवं रेडी-टू-सर्व पेय

इन उत्पादों की शेल्फ लाइफ अधिक होती है तथा बाजार में इनका मूल्य कच्चे उत्पादों की तुलना में कहीं अधिक मिलता है। इससे किसानों को वर्षभर आय प्राप्त करने के अवसर मिलते हैं।

आधुनिक तकनीकों की भूमिका-वर्तमान समय में पोस्ट हार्वेस्ट प्रबंधन में अनेक आधुनिक तकनीकों का उपयोग बढ़ रहा है। नियंत्रित वातावरण भंडारण (Controlled Atmosphere Storage), परिवर्तित वातावरण पैकेजिंग (Modified Atmosphere Packaging), खाद्य कोटिंग (Edible Coating), वैक्यूम पैकेजिंग तथा सौर ऊर्जा आधारित कोल्ड स्टोरेज जैसी तकनीकें गुणवत्ता संरक्षण में अत्यंत प्रभावी सिद्ध हो रही हैं। इसके अतिरिक्त डिजिटल सप्लाय चेन, ट्रेसिबिलिटी सिस्टम तथा किसान उत्पादक संगठन (FPO) के माध्यम से सामूहिक विपणन किसानों को बेहतर बाजार उपलब्ध करा रहे हैं।

ई-मार्केटिंग तथा ऑनलाइन विपणन प्लेटफॉर्म भी बागवानी उत्पादों के लिए नए अवसर प्रदान कर रहे हैं।

सरकारी पहल एवं संभावनाएँ-भारत सरकार द्वारा कटाई उपरांत अवसंरचना के विकास हेतु अनेक योजनाएँ संचालित की जा रही हैं। इनमें एकीकृत बागवानी विकास मिशन (MIDH), प्रधानमंत्री किसान संपदा योजना (PMKSY), ऑपरेशन ग्रीन्स, प्रधानमंत्री सूक्ष्म खाद्य प्रसंस्करण उद्यम उन्नयन योजना (PMFME) तथा राष्ट्रीय बागवानी बोर्ड (NHB) की योजनाएँ प्रमुख हैं। इन योजनाओं के माध्यम से कोल्ड स्टोरेज, पैक हाउस, प्रसंस्करण इकाइयों तथा मूल्य संवर्धन परियोजनाओं के लिए वित्तीय सहायता उपलब्ध कराई जाती है। यदि किसान इन योजनाओं का लाभ उठाते हुए वैज्ञानिक कटाई उपरांत प्रबंधन अपनाएँ, तो वे अपनी उपज का अधिकतम आर्थिक लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

निष्कर्ष-वर्तमान समय में कृषि की सफलता केवल अधिक उत्पादन तक सीमित नहीं है, बल्कि गुणवत्तापूर्ण उत्पादन, वैज्ञानिक कटाई उपरांत प्रबंधन तथा प्रभावी विपणन पर निर्भर करती है। फल एवं सब्जी फसलों में कटाई के बाद होने वाली हानि को कम करके न केवल खाद्य अपव्यय रोका जा सकता है, बल्कि किसानों की आय में उल्लेखनीय वृद्धि भी की जा सकती है। वैज्ञानिक कटाई, उचित पैकेजिंग, शीत भंडारण, कोल्ड चेन, प्रसंस्करण तथा मूल्य संवर्धन जैसी तकनीकों को अपनाकर कृषि को अधिक लाभकारी, टिकाऊ एवं प्रतिस्पर्धी बनाया जा सकता है। "उत्पादन से अधिक संरक्षण और मूल्य संवर्धन" की अवधारणा ही भविष्य की स्मार्ट एवं आत्मनिर्भर कृषि की वास्तविक पहचान है। यदि किसान, वैज्ञानिक, उद्योग एवं सरकार मिलकर कटाई उपरांत प्रबंधन को प्राथमिकता दें, तो भारत न केवल बागवानी उत्पादन में बल्कि गुणवत्तापूर्ण प्रसंस्कृत उत्पादों के वैश्विक बाजार में भी अग्रणी स्थान प्राप्त कर सकता है।

Mob. : 8887712163
8982873459



प्रो. दीपक नरवरिया
(B.Sc. कृषि)

नरवरिया कृषि सेवा केन्द्र

रासायनिक एवं जैविक खाद, हाईब्रीड बीज
कीटनाशक दवाईयाँ, स्पेयर पम्प विक्रेता

इटवा होटल के सामने, पिछोर तिराहा, ग्वालियर रोड, इबरा



✍ मयंक कुमार पी.एच.डी. शोध छात्र

✍ डॉ. अनिल कुमार सिंह सह-प्राध्यापक, मृदा विज्ञान एवं कृषि रसायन विभाग चन्द्रशेखर आज़ाद कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय कानपुर (उ.प्र.)

प्रस्तावना: बुंदेलखंड भारत का एक महत्वपूर्ण अर्ध-शुष्क कृषि क्षेत्र है, जो मुख्यतः उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश के कुछ जिलों में फैला हुआ है। यह क्षेत्र अपनी ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और भौगोलिक विशेषताओं के साथ-साथ सूखा, जल संकट, मृदा अपरदन और कम कृषि उत्पादकता जैसी समस्याओं के लिए भी जाना जाता है। बुंदेलखंड की कृषि आज भी बड़े पैमाने पर वर्षा पर निर्भर है, इसलिए यहाँ की मिट्टी की गुणवत्ता और उसमें उपलब्ध पोषक तत्व सीधे तौर पर खेती की सफलता को प्रभावित करते हैं। मिट्टी केवल पौधों को सहारा देने वाला माध्यम नहीं है, बल्कि यह नाइट्रोजन (N), फॉस्फोरस (P), पोटैश (K), सल्फर (S) और सूक्ष्म पोषक तत्व जैसे जिंक (Zn), बोरॉन (B), आयरन (Fe), मैंगनीज (Mn) आदि का प्रमुख स्रोत भी है। यदि मिट्टी में इन पोषक तत्वों की कमी हो जाए, तो फसलें कमजोर होती हैं, उत्पादन घटता है और किसानों की आय प्रभावित होती है। बुंदेलखंड की मिट्टी में यही समस्या तेजी से सामने आई है—मिट्टी में पोषक तत्वों का असंतुलन और कमी। यह केवल कृषि की समस्या नहीं, बल्कि ग्रामीण आजीविका, खाद्य सुरक्षा और पर्यावरणीय संतुलन से जुड़ा गंभीर मुद्दा है।

1. बुंदेलखंड की मिट्टी का स्वरूप और कृषि पृष्ठभूमि

बुंदेलखंड क्षेत्र की मिट्टियाँ भौगोलिक विविधता के कारण एकरूप नहीं हैं। यहाँ सामान्यतः लाल, काली, दोमट, हल्की पथरीली तथा कुछ स्थानों पर बलुई मिट्टी पाई जाती है। कई हिस्सों में मिट्टी की ऊपरी उपजाऊ परत पतली है और उसके नीचे चट्टानी संरचना या कंकरीली सतह मिलती है। इससे मिट्टी की जलधारण क्षमता, जैविक पदार्थ की मात्रा और पोषक तत्वों को रोककर रखने की क्षमता सीमित हो जाती है। बुंदेलखंड की कृषि का प्रमुख आधार वर्षा है। वर्षा अनियमित होने के कारण फसलें कभी सूखे तो कभी अतिवृष्टि से प्रभावित होती हैं। लंबे समय से लगातार खेती, सीमित सिंचाई, फसल अवशेषों का खेत से बाहर जाना, पशुधन आधारित जैविक खाद का कम उपयोग तथा असंतुलित उर्वरक प्रयोग ने मिट्टी की उर्वरता को कमजोर किया है। कुछ अध्ययनों में बुंदेलखंड क्षेत्र की मिट्टियों में नाइट्रोजन की कमी, कई स्थानों पर सल्फर, जिंक और बोरॉन की कमी तथा जैविक कार्बन का निम्न स्तर पाया गया है। दूसरी ओर कुछ क्षेत्रों में उपलब्ध फॉस्फोरस मध्यम से उच्च भी मिल सकता है, पर समग्र तस्वीर यही है कि मिट्टी का पोषण संतुलित नहीं है।

2. मिट्टी में पोषक तत्वों का महत्व- पौधों की वृद्धि और उत्पादन के लिए मिट्टी में उपलब्ध पोषक तत्व अत्यंत आवश्यक हैं। इन्हें मुख्यतः तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है—

(क) प्रमुख पोषक तत्व- * नाइट्रोजन (N) - पौधों की हरित वृद्धि, पत्तियों के विकास और प्रोटीन निर्माण के लिए आवश्यक। * फॉस्फोरस (P) - जड़ विकास, पुष्प, बीज निर्माण और ऊर्जा स्थानांतरण में सहायक। * पोटैश (K) - जल संतुलन, रोग प्रतिरोधक क्षमता और दाने भरने में महत्वपूर्ण।

(ख) द्वितीयक पोषक तत्व- * सल्फर (S) - प्रोटीन निर्माण, तेलहन फसलों की गुणवत्ता और एंजाइम क्रियाओं के लिए

बुंदेलखंड की मिट्टी में पोषक तत्वों की कमी और उसका कृषि पर प्रभाव



आवश्यक। * कैल्शियम (Ca) और मैग्नीशियम (Mg) - कोशिका निर्माण, प्रकाश संश्लेषण और पौधों के स्वास्थ्य में सहायक।

(ग) सूक्ष्म पोषक तत्व- जिंक, बोरॉन, आयरन, मैंगनीज, कॉपर आदि बहुत कम मात्रा में चाहिए होते हैं, पर इनकी कमी होने पर फसल की वृद्धि बुरी तरह प्रभावित होती है।

3. बुंदेलखंड की मिट्टी में पोषक तत्वों की कमी के प्रमुख कारण

* **वर्षा की अनिश्चितता और मृदा अपरदन-** बुंदेलखंड में वर्षा कम ही नहीं, बल्कि अत्यधिक अनियमित भी होती है। जब कम समय में तेज बारिश होती है, तो खेतों की ऊपरी उपजाऊ मिट्टी बह जाती है। बुंदेलखंड में शीट एरोजन, रील एरोजन और गली एरोजन जैसी समस्याएँ कई इलाकों में देखी जाती हैं, जो पोषक तत्वों की हानि को तेज करती हैं।

* **जैविक कार्बन की कमी-** मिट्टी में जैविक कार्बन पोषक तत्वों का भंडार होता है। यही मिट्टी की संरचना, नमी धारण क्षमता, सूक्ष्मजीव गतिविधि और पोषक तत्वों की उपलब्धता को बनाए रखता है। बुंदेलखंड में पशुधन आधारित खाद, हरी खाद, कम्पोस्ट और फसल अवशेषों का पर्याप्त उपयोग नहीं हो पाता। फसल कटाई के बाद अवशेष जलाने या बाहर ले जाने से मिट्टी में जैविक पदार्थ की वापसी कम हो जाती है। परिणामस्वरूप मिट्टी "भूखी" होती जाती है।

* **असंतुलित उर्वरक उपयोग-** कई किसान मुख्य रूप से

यूरिया या केवल NPK उर्वरकों पर निर्भर रहते हैं। इससे फसल को तत्काल हरियाली तो मिल जाती है, पर मिट्टी का समग्र पोषण नहीं हो पाता।

* **लगातार एक जैसी फसलें लेना-** जहाँ सिंचाई या नमी उपलब्ध होती है, वहाँ गेहूँ, चना, सरसों, अरहर जैसी फसलें बार-बार ली जाती हैं। हर फसल मिट्टी से कुछ खास पोषक तत्व अधिक मात्रा में खींचती है। यदि उतनी ही मात्रा में पोषक तत्व वापस न दिए जाएँ, तो न्यूट्रिएंट माइनिंग यानी पोषक तत्वों का लगातार क्षय होने लगता है।

* **कम सिंचाई और नमी की कमी-** सूखी मिट्टी में पोषक तत्व घुलकर पौधों की जड़ों तक आसानी से नहीं पहुँच पाते। नमी की कमी के कारण पौधों द्वारा पोषक तत्वों का अवशोषण कम हो जाता है।

4. पोषक तत्वों की कमी का कृषि पर प्रभाव

* फसल उत्पादन में गिरावट * पौधों की कमजोर वृद्धि और पीलेपन की समस्या * जड़ विकास पर नकारात्मक प्रभाव * दानों और उपज की गुणवत्ता में कमी * सूखा सहन करने की क्षमता में कमी * भूमि की दीर्घकालीन उत्पादकता में गिरावट

5. बुंदेलखंड की प्रमुख फसलों पर पोषक तत्वों की कमी का प्रभाव

गेहूँ- गेहूँ में नाइट्रोजन और जिंक की कमी से पौधे पीले, कमजोर और कम बालियों वाले हो जाते हैं। दाने छोटे रह जाते हैं और उत्पादन घटता है। चना और अन्य दलहन- दलहनी फसलों को फॉस्फोरस, सल्फर और बोरॉन की पर्याप्त उपलब्धता चाहिए। कमी होने पर जड़ ग्रंथियाँ कम बनती हैं, फलियाँ कम लगती हैं और दानों का विकास प्रभावित होता है। सरसों- सरसों में सल्फर और बोरॉन की कमी उपज और तेल प्रतिशत दोनों को कम कर सकती है। फूल-फलन प्रभावित होने से दाने कम बनते हैं।

॥ श्री गणेशाय नमः ॥



फफकड़ बाबा
खाद बीज भण्डार

खाद बीज एवं कृषि
कीटनाशक दवाईयों
के विक्रेता



सदर बाजार गंज मुरार, ग्वालियर, मोबा. 9926988124, 9340964335



दिलीप व्यास शोधार्थी (पीएच.डी.), कृषि प्रसार शिक्षा विभाग, चन्द्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कानपुर (उ.प्र.)

मृदा संरक्षण की दिशा में आईसीएआर का भूमि बचाओ अभियान

देश की खाद्य एवं पोषण सुरक्षा का आधार स्वस्थ मृदा है। बढ़ते रासायनिक उर्वरकों के असंतुलित उपयोग, मृदा अपरदन, कार्बनिक पदार्थों की कमी तथा जलवायु परिवर्तन के कारण भूमि की उर्वरता प्रभावित हो रही है। इसी चुनौती से निपटने के लिए भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (आई.सी.ए.आर.) द्वारा 'भूमि बचाओ अभियान' के अंतर्गत किसानों को मृदा संरक्षण एवं संतुलित पोषण प्रबंधन के प्रति जागरूक किया जा रहा है। देश की खाद्य एवं पोषण सुरक्षा का आधार स्वस्थ मृदा है।

बढ़ते रासायनिक उर्वरकों के असंतुलित उपयोग, मृदा अपरदन, कार्बनिक पदार्थों की कमी तथा जलवायु परिवर्तन के कारण भूमि की उर्वरता प्रभावित हो रही है। इसी चुनौती से निपटने हेतु भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (आई.सी.ए.आर.) द्वारा 'भूमि बचाओ अभियान' के अंतर्गत किसानों को मृदा संरक्षण एवं संतुलित पोषण प्रबंधन के प्रति जागरूक किया जा रहा है। इस अभियान का उद्देश्य किसानों को मृदा परीक्षण, मृदा स्वास्थ्य कार्ड, संतुलित उर्वरक उपयोग, जैविक एवं प्राकृतिक खेती, हरी खाद, फसल अवशेष प्रबंधन, सूक्ष्म पोषक तत्वों का संतुलित प्रयोग तथा जल संरक्षण जैसी तकनीकों को अपनाने के लिए प्रेरित करना है। कृषि विज्ञान केन्द्र (के.वी.के.), आईसीएआर संस्थान तथा कृषि विश्वविद्यालय प्रशिक्षण, किसान गोष्ठी, खेत प्रदर्शन और जागरूकता कार्यक्रमों के माध्यम से इस अभियान को गाँव-गाँव तक पहुँचा रहे हैं।

भूमि बचाओ अभियान के प्रमुख लाभ

- * मृदा की उर्वरता एवं जैविक कार्बन में वृद्धि।
- * संतुलित उर्वरक उपयोग से उत्पादन लागत में कमी।
- * जल संरक्षण एवं पर्यावरण सुरक्षा को बढ़ावा।
- * फसल उत्पादकता एवं गुणवत्ता में सुधार।
- * दीर्घकालीन टिकाऊ कृषि प्रणाली का विकास।

किसानों के लिए वैज्ञानिक सुझाव

1. **नियमित मृदा परीक्षण कराएं:** प्रत्येक 2-3 वर्ष में खेत की मिट्टी का परीक्षण कराएं और मृदा स्वास्थ्य कार्ड की अनुशंसाओं के अनुसार ही उर्वरकों का प्रयोग करें।

2. **संतुलित पोषक तत्व प्रबंधन अपनाएं:** केवल यूरिया पर निर्भर न रहें। नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटाश के साथ-साथ जिंक, सल्फर, बोरॉन जैसे सूक्ष्म पोषक तत्वों का भी आवश्यकता अनुसार उपयोग करें।

3. **जैविक कार्बन बढ़ाएं:** प्रति वर्ष खेत में गोबर की सड़ी खाद, कम्पोस्ट, वर्मी कम्पोस्ट, हरी खाद तथा फसल अवशेष मिलाएं। इससे मिट्टी की संरचना, जल धारण क्षमता एवं सूक्ष्मजीवों की संख्या बढ़ती है।

4. **फसल चक्र अपनाएं:** गेहूँ-धान जैसे एक ही फसल चक्र के स्थान पर दलहनी एवं तिलहनी फसलों को शामिल करें। इससे मृदा की उर्वरता बनी रहती है और रोग-कीटों का प्रकोप भी कम होता है।

5. **फसल अवशेष न जलाएं:** पराली एवं अन्य फसल अवशेषों को जलाने के बजाय खेत में मिलाकर कम्पोस्ट या मल्टच के रूप में उपयोग करें। इससे कार्बनिक पदार्थ बढ़ते हैं और प्रदूषण भी कम होता है।

6. **जल संरक्षण तकनीक अपनाएं:** ड्रिप, स्प्रिंकलर, वर्षा जल संचयन तथा मल्टिचिंग जैसी तकनीकों से जल की बचत करें और मिट्टी में नमी बनाए रखें।

7. **मृदा अपरदन रोकें:** ढाल वाले क्षेत्रों में मेड़बंदी, समोच्च खेती, घास की पट्टियाँ एवं वृक्षारोपण अपनाकर मिट्टी के कटाव को रोकें।

8. **जैव उर्वरकों का उपयोग करें:** राइजोबियम, एजोटोबैक्टर, पी.एस.बी. (फॉस्फेट घुलनशील बैक्टीरिया) जैसे जैव उर्वरकों का उपयोग कर रासायनिक उर्वरकों पर निर्भरता कम करें।

9. **प्राकृतिक एवं एकीकृत कृषि अपनाएं:** जहाँ संभव हो, प्राकृतिक खेती, एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन (फ़ड) तथा एकीकृत कीट प्रबंधन अपनाएं ताकि मिट्टी का स्वास्थ्य लंबे समय तक सुरक्षित रहे।

10. **कृषि विशेषज्ञों से नियमित सलाह लें:** कृषि विज्ञान केन्द्र (के.वी.के.) कृषि विश्वविद्यालय एवं कृषि विभाग के वैज्ञानिकों से समय-समय पर प्रशिक्षण एवं तकनीकी सलाह प्राप्त करें और केवल प्रमाणित बीज एवं उर्वरकों का उपयोग करें।

- * प्रत्येक 2-3 वर्ष में मृदा परीक्षण अवश्य कराएं।
- * मृदा स्वास्थ्य कार्ड की सिफारिशों के अनुसार उर्वरकों का प्रयोग करें।
- * जैविक खाद, हरी खाद एवं फसल अवशेषों का खेत में उपयोग बढ़ाएँ।
- * फसल चक्र एवं दलहनी फसलों को अपनाकर मिट्टी की उर्वरता बनाए रखें।
- * कृषि विज्ञान केन्द्रों से वैज्ञानिक सलाह लेकर आधुनिक मृदा संरक्षण तकनीकों को अपनाएं।

किसानों के लिए वैज्ञानिक सुझाव

1. **नियमित मृदा परीक्षण कराएं:** प्रत्येक 2-3 वर्ष में खेत की मिट्टी का परीक्षण कराएं और मृदा स्वास्थ्य कार्ड की अनुशंसाओं के अनुसार ही उर्वरकों का प्रयोग करें।

2. **संतुलित पोषक तत्व प्रबंधन अपनाएं:** केवल यूरिया पर निर्भर न रहें। नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटाश के साथ-साथ जिंक, सल्फर, बोरॉन जैसे सूक्ष्म पोषक तत्वों का भी आवश्यकता अनुसार उपयोग करें।

3. **जैविक कार्बन बढ़ाएं:** प्रति वर्ष खेत में गोबर की सड़ी खाद, कम्पोस्ट, वर्मी कम्पोस्ट, हरी खाद तथा फसल अवशेष मिलाएं। इससे मिट्टी की संरचना, जल धारण क्षमता एवं सूक्ष्मजीवों की संख्या बढ़ती है।

4. **फसल चक्र अपनाएं:** गेहूँ-धान जैसे एक ही फसल

चक्र के स्थान पर दलहनी एवं तिलहनी फसलों को शामिल करें। इससे मृदा की उर्वरता बनी रहती है और रोग-कीटों का प्रकोप भी कम होता है।

5. **फसल अवशेष न जलाएं:** पराली एवं अन्य फसल अवशेषों को जलाने के बजाय खेत में मिलाकर कम्पोस्ट या मल्टच के रूप में उपयोग करें। इससे कार्बनिक पदार्थ बढ़ते हैं और प्रदूषण भी कम होता है।

6. **जल संरक्षण तकनीक अपनाएं:** ड्रिप, स्प्रिंकलर, वर्षा जल संचयन तथा मल्टिचिंग जैसी तकनीकों से जल की बचत करें और मिट्टी में नमी बनाए रखें।

7. **मृदा अपरदन रोकें:** ढाल वाले क्षेत्रों में मेड़बंदी, समोच्च खेती, घास की पट्टियाँ एवं वृक्षारोपण अपनाकर मिट्टी के कटाव को रोकें।

8. **जैव उर्वरकों का उपयोग करें:** राइजोबियम, एजोटोबैक्टर, पी.एस.बी. (फॉस्फेट घुलनशील बैक्टीरिया) जैसे जैव उर्वरकों का उपयोग कर रासायनिक उर्वरकों पर निर्भरता कम करें।

9. **प्राकृतिक एवं एकीकृत कृषि अपनाएं:** जहाँ संभव हो, प्राकृतिक खेती, एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन (INM) तथा एकीकृत कीट प्रबंधन अपनाएं ताकि मिट्टी का स्वास्थ्य लंबे समय तक सुरक्षित रहे।

10. **कृषि विशेषज्ञों से नियमित सलाह लें:** कृषि विज्ञान केन्द्र (के.वी.के.) कृषि विश्वविद्यालय एवं कृषि विभाग के वैज्ञानिकों से समय-समय पर प्रशिक्षण एवं तकनीकी सलाह प्राप्त करें और केवल प्रमाणित बीज एवं उर्वरकों का उपयोग करें।

- * प्रत्येक 2-3 वर्ष में मृदा परीक्षण अवश्य कराएं।
- * मृदा स्वास्थ्य कार्ड की सिफारिशों के अनुसार उर्वरकों का प्रयोग करें।
- * जैविक खाद, हरी खाद एवं फसल अवशेषों का खेत में उपयोग बढ़ाएँ।
- * फसल चक्र एवं दलहनी फसलों को अपनाकर मिट्टी की उर्वरता बनाए रखें।
- * कृषि विज्ञान केन्द्रों से वैज्ञानिक सलाह लेकर आधुनिक मृदा संरक्षण तकनीकों को अपनाएं।

निष्कर्ष

स्वस्थ भूमि ही समृद्ध कृषि की आधारशिला है। आईसीएआर का भूमि बचाओ अभियान किसानों को मृदा संरक्षण के प्रति जागरूक कर टिकाऊ कृषि, सुरक्षित खाद्य उत्पादन तथा भावी पीढ़ियों के लिए प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। यदि प्रत्येक किसान अपनी भूमि के स्वास्थ्य का ध्यान रखे, तो कृषि उत्पादन के साथ-साथ पर्यावरण संरक्षण का लक्ष्य भी सफलतापूर्वक प्राप्त किया जा सकता है।



डॉ. अजय कुमार (वरिष्ठ वैज्ञानिक)

डॉ. अमित कुमार केशरी विषय वस्तु

विशेषज्ञ कृषि प्रसार, के.वी.के. कौशाम्बी (उ.प्र.)

डायरेक्ट सीडेड राइस (Direct Seeded Rice-DSR) धान उत्पादन की आधुनिक एवं जल-संरक्षण तकनीक

प्रस्तावना: भारत विश्व के प्रमुख धान उत्पादक देशों में से एक है। देश की खाद्य सुरक्षा में धान का महत्वपूर्ण योगदान है। परंपरागत रूप से धान की खेती रोपाई विधि द्वारा की जाती है, जिसमें पहले नर्सरी तैयार की जाती है और बाद में पौधों को मुख्य खेत में रोपा जाता है। यह विधि अधिक श्रम, समय तथा पानी की मांग करती है। वर्तमान समय में जल संकट, मजदूरों की कमी तथा खेती की बढ़ती लागत को देखते हुए धान उत्पादन की नई तकनीकों की आवश्यकता महसूस की जा रही है। ऐसी ही एक उन्नत तकनीक है डायरेक्ट सीडेड राइस (Direct Seeded Rice-DSR)। डायरेक्ट सीडेड राइस वह तकनीक है जिसमें धान के बीजों को सीधे खेत में बोया जाता है और नर्सरी तैयार करने तथा रोपाई करने की आवश्यकता नहीं होती। यह तकनीक पानी, श्रम एवं लागत की बचत करते हुए धान उत्पादन को अधिक लाभकारी बनाती है।

DSR क्या है?

DSR एक ऐसी कृषि तकनीक है जिसमें धान के बीजों को सीधे खेत में ड्रिल मशीन या सीड-कम-फर्टिलाइजर ड्रिल द्वारा बोया जाता है। इस विधि में खेत को लगातार पानी से भरा रखने की आवश्यकता नहीं होती। उचित नमी वाले खेत में बीजों की बुवाई की जाती है और अंकुरण के बाद फसल सामान्य रूप से विकसित होती है। इस तकनीक को मुख्य रूप से दो प्रकारों में विभाजित किया जाता है-

1. सूखी बुवाई (Dry DSR) - इसमें खेत की जुताई करके पाटा लगाने के बाद मशीन द्वारा बुवाई कर देते हैं और जमाव के लिए हल्की सिंचाई करते हैं या वर्षा का इंतजार करते हैं।

2. गीली बुवाई (Wet DSR) - इसमें पहले खेत में एक गहरी सिंचाई करने के बाद जब खेत जुताई करने योग्य हो जाए तो जुताई करके खेत को तैयार करने के बाद मशीन द्वारा बुवाई करते हैं।

दोनों विधियों में से कौन सी विधि अपनानी है यह मौसम एवं संसाधनों की उपलब्धता पर निर्भर करता है। अगर सिंचाई की सुविधा हो तो नम विधि अपनाना अच्छा होता है।

DSR तकनीक का महत्व

वर्तमान कृषि परिदृश्य में DSR तकनीक का महत्व लगातार बढ़ रहा है क्योंकि— * भूजल स्तर में गिरावट हो रही है। * सिंचाई जल की उपलब्धता कम होती जा रही है। * कृषि मजदूरों की कमी बढ़ रही है। * उत्पादन लागत में निरंतर वृद्धि हो रही है। * जलवायु परिवर्तन कृषि को प्रभावित कर रहा है।

ऐसी परिस्थितियों में DSR तकनीक किसानों को कम लागत में बेहतर उत्पादन प्राप्त करने का अवसर प्रदान करती है।

DSR के लिए उपयुक्त परिस्थितियाँ

DSR तकनीक की सफलता के लिए निम्नलिखित परिस्थितियाँ आवश्यक हैं— * समतल खेत (लेजर लैंड लेवलिंग किया हुआ) * अच्छी जल निकासी व्यवस्था * खरपतवार नियंत्रण की सुविधा * समय पर सिंचाई की उपलब्धता * गुणवत्तायुक्त एवं प्रमाणित बीज

खेत की तैयारी

DSR में खेत की तैयारी अत्यंत महत्वपूर्ण होती है क्योंकि असमतल खेतों में अंकुरण तथा पौधों की वृद्धि प्रभावित हो सकती है। खेत की 2-3 बार जुताई करने के बाद पाटा लगाकर मिट्टी को भुरभुरा बनाएं। खेत को लेजर लैंड लेवलिंग के द्वारा पूरी तरह समतल करें जिससे पानी की बचत होती है तथा फसल की वृद्धि समान रूप से होती है। आवश्यकतानुसार गोबर की सड़ी हुई खाद मिलाएं। अंतिम जुताई के समय आधार उर्वरक डालें।



बीज एवं बुवाई

बीज दर-DSR में सामान्यतः 20-25 किलोग्राम बीज प्रति हेक्टेयर पर्याप्त होता है।

बीज उपचार-बीजों को फफूंदनाशक एवं जैव उर्वरकों से उपचारित करना चाहिए ताकि रोगों की संभावना कम हो सके। 2.5 ग्राम प्रति किलो बीज को कार्बेन्डाजिम से शोधित करते हैं।

बुवाई का समय-DSR की बुवाई सामान्यतः मई के अंतिम सप्ताह से जून के तीसरे सप्ताह तक की जाती है।

बुवाई की विधि

* सीड ड्रिल या जीरो टिल ड्रिल का प्रयोग करें।

* कतार से कतार दूरी लगभग 20 सेंटीमीटर रखें।

* बीज की गहराई 2-3 सेंटीमीटर रखें।

पोषक तत्व प्रबंधन-DSR में संतुलित उर्वरक प्रबंधन आवश्यक है। नाइट्रोजन की अनुशंसित मात्रा को 3-4 भागों में विभाजित करके देना चाहिए - आधार मात्रा, सक्रिय वृद्धि अवस्था, कल्ले बनने की अवस्था एवं बालियाँ निकलने की अवस्था। फॉस्फोरस तथा पोटाश की पूरी मात्रा बुवाई के समय देना लाभकारी होता है। जिनकी कमी वाले क्षेत्रों में जिन सलफेट का प्रयोग आवश्यक है। जैव उर्वरक एजोसिलरिलम तथा फॉस्फेट घुलनशील जीवाणुओं का प्रयोग पोषक तत्वों की उपलब्धता को बढ़ाता है।

सिंचाई प्रबंधन- DSR तकनीक की सबसे महत्वपूर्ण विशेषताओं में से एक है। परंपरागत धान की खेती में खेत को लंबे समय तक पानी से भरा रखा जाता है, जबकि DSR में ऐसी आवश्यकता नहीं होती। बुवाई के बाद अंकुरण हेतु पर्याप्त नमी बनाए रखी जाती है तथा आवश्यकता अनुसार सिंचाई की जाती है। मिट्टी में दारों पड़ने से पहले सिंचाई करना उपयुक्त माना जाता है। विभिन्न शोध अध्ययनों से यह सिद्ध हुआ है कि DSR तकनीक द्वारा परंपरागत रोपाई विधि की तुलना में 15 से 30% तक पानी की बचत की जा सकती है। जल संरक्षण की दृष्टि से यह तकनीक भविष्य की कृषि हेतु अत्यंत महत्वपूर्ण मानी जा रही है।

खरपतवार प्रबंधन - इस तकनीक में सबसे महत्वपूर्ण प्रबंधन खरपतवार नियंत्रण का होता है जिसमें बुवाई के पहले सिंचाई करने से खरपतवारों का जमाव आ जाने से जुताई करके इनको नष्ट कर सकते हैं। रासायनिक नियंत्रण के परिपेक्ष्य में बताया कि जमाव पूर्व एवं जमाव के बाद खरपतवार नाशी का प्रयोग प्रभावकारी होता है। जमाव पूर्व खरपतवार नाशी पेंडामेथिलोन 3.3 ली. प्रति हे. का प्रयोग नम विधि में बोई गई खेत में बुवाई के दूसरे दिन प्रयोग करना चाहिए। इसमें उपरोक्त मात्रा को 150 लीटर या 200 लीटर पानी में घोलकर करें। जमाव के बाद खरपतवारनाशी के रूप में विसपाइरी बैक सोडियम 10 एस

एल, 100 मिली एवं पाईराइडा सल्फयूरान 80 ग्राम दवा को बुवाई के 25 से 35 दिन के बाद 120 से 150 लीटर पानी में घोल बनाकर स्प्रे करने से सभी प्रकार के खरपतवार नष्ट हो जाते हैं, जिससे फसल खरपतवार प्रतिस्पर्धा न के बराबर होती है एवं फसल की बढ़वार अच्छी होती है और आवश्यकता पड़ने पर यांत्रिक निराई। अंततः उत्पादन अच्छा प्राप्त होता है।

रोग एवं कीट प्रबंधन- धान की अन्य फसलों की तरह इसमें भी ब्लास्ट, शीथ ब्लाइट तथा जीवाणु झूलसा जैसे रोग देखने को मिल सकते हैं। इसी प्रकार तना छेदक, पत्ती लपेटक और भूरा फुदका जैसे कीट भी नुकसान पहुंचा सकते हैं। इनकी रोकथाम के लिए नियमित निगरानी, संतुलित उर्वरक उपयोग तथा समेकित कीट एवं रोग प्रबंधन (IPM) पद्धति अपनाना आवश्यक है। समय पर नियंत्रण उपाय अपनाकर फसल को सुरक्षित रखा जा सकता है तथा उत्पादन में होने वाली हानि को कम किया जा सकता है।

DSR तकनीक के लाभ

1. **पानी की बचत:** परंपरागत रोपाई विधि की तुलना में 15-30 प्रतिशत तक पानी की बचत होती है।

2. **श्रम लागत में कमी:** रोपाई हेतु मजदूरों की आवश्यकता नहीं होती, जिससे श्रम लागत कम होती है।

3. **समय की बचत:** नर्सरी तैयार करने तथा रोपाई में लगने वाला समय बच जाता है।

4. **उत्पादन लागत में कमी:** कम मजदूरी एवं कम सिंचाई के कारण कुल लागत घटती है।

5. **पर्यावरण संरक्षण:** मिथेन गैस का उत्सर्जन अपेक्षाकृत कम होता है, जिससे पर्यावरणीय प्रभाव घटता है।

6. **समय पर गेहूँ की बुवाई:** धान की जल्दी कटाई होने से अगली फसल गेहूँ की समय पर बुवाई संभव हो जाती है।

DSR तकनीक की सीमाएँ- खेत का समतलीकरण आवश्यक होने के कारण प्रारंभिक निवेश बढ़ सकता है। खरपतवार नियंत्रण पर विशेष ध्यान देना पड़ता है तथा बुवाई के बाद प्रारंभिक अवस्था में नमी का उचित प्रबंधन आवश्यक होता है। यदि किसान को तकनीक की पर्याप्त जानकारी न हो तो अपेक्षित परिणाम प्राप्त नहीं हो पाते। अत्यधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में जलभराव की समस्या भी ग्रस्त की सफलता को प्रभावित कर सकती है। इसलिए किसानों को इस तकनीक को अपनाने से पहले कृषि विशेषज्ञों की सलाह अवश्य लेनी चाहिए। जिसमें लेजर लैंड लेवलिंग अपनाएं, प्रमाणित एवं उच्च अंकुरण क्षमता वाले बीजों का प्रयोग, खरपतवार नियंत्रण पर विशेष ध्यान एवं संतुलित उर्वरक प्रबंधन करने की सलाह दी जाती है। साथ ही साथ समय पर सिंचाई एवं जल निकासी की व्यवस्था रखें।

निष्कर्ष- डायरेक्ट सीडेड राइस (DSR) धान उत्पादन की एक आधुनिक, टिकाऊ, वैज्ञानिक एवं संसाधन-संरक्षण तकनीक है। जल संकट, श्रमिकों की कमी और बढ़ती उत्पादन लागत जैसी समस्याओं के समाधान में यह तकनीक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। उचित खेत प्रबंधन, खरपतवार नियंत्रण एवं वैज्ञानिक अनुशासनों के पालन से DSR के माध्यम से अच्छी उपज प्राप्त की जा सकती है। भविष्य में जलवायु-स्मार्ट कृषि के विकास में DSR तकनीक का महत्व और अधिक बढ़ने की संभावना है। अतः किसानों को इस तकनीक को अपनाकर धान उत्पादन को अधिक लाभकारी एवं टिकाऊ बनाने का प्रयास करना चाहिए। यदि किसान वैज्ञानिक अनुशासनों के अनुसार इस तकनीक को अपनाएँ और उचित प्रबंधन करें, तो वे अधिक उत्पादन, बेहतर लाभ तथा सतत कृषि विकास के लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं।



आशीष रजक सस्य विज्ञान विभाग, कृषि संकाय,
प्रो. राजेंद्र सिंह (रज्जू भैया) विश्वविद्यालय, प्रयागराज

डॉ. आशुतोष सिंह सहायक प्रोफेसर, कृषि संकाय,
श्री विश्वनाथ पीजी कॉलेज कलान, सुल्तानपुर यू.पी.

प्रस्तावना

भारत एक कृषि प्रधान देश है, जहाँ देश की बड़ी आबादी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कृषि पर निर्भर है। बढ़ती जनसंख्या की खाद्य आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पिछले कुछ दशकों में रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों तथा खरपतवारनाशकों का अत्यधिक उपयोग किया गया। इससे कृषि उत्पादन में वृद्धि तो हुई, लेकिन इसके साथ-साथ मृदा की उर्वरता में कमी, जल प्रदूषण, पर्यावरण असंतुलन तथा मानव स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव भी देखने को मिले। इन समस्याओं के समाधान के रूप में जैविक खेती एक महत्वपूर्ण विकल्प बनकर उभरी है। जैविक खेती न केवल पर्यावरण के अनुकूल है, बल्कि यह सतत कृषि विकास की दिशा में भी एक प्रभावी कदम है।

जैविक खेती का अर्थ

जैविक खेती वह कृषि पद्धति है जिसमें फसल उत्पादन के लिए रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों, वृद्धि नियामकों तथा अन्य कृत्रिम पदार्थों का उपयोग नहीं किया जाता। इसके स्थान पर गोबर की खाद, कम्पोस्ट, वर्मी कम्पोस्ट, हरी खाद, जैव उर्वरक तथा जैविक कीट नियंत्रण विधियों का उपयोग किया जाता है। इसका मुख्य उद्देश्य मृदा की उर्वरता बनाए रखना, पर्यावरण की रक्षा करना तथा सुरक्षित एवं पौष्टिक खाद्य पदार्थों का उत्पादन करना है।

जैविक खेती के उद्देश्य

1. मृदा की उर्वरता एवं उत्पादकता को बनाए रखना।
2. पर्यावरण संरक्षण को बढ़ावा देना।
3. रासायनिक प्रदूषण को कम करना।
4. सुरक्षित एवं गुणवत्तायुक्त खाद्य पदार्थों का उत्पादन करना।
5. प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण करना।
6. कृषि को दीर्घकालिक रूप से टिकाऊ बनाना।

जैविक खेती के प्रमुख घटक

1. जैविक खाद (Organic fertilizer)

जैविक खेती में पोषक तत्वों की पूर्ति के लिए विभिन्न प्रकार की जैविक खादों का उपयोग किया जाता है।

* गोबर की खाद (FYM) * कम्पोस्ट खाद * वर्मी कम्पोस्ट * हरी खाद * फसल अवशेष

2. जैव उर्वरक (Organic fertilizer)

जैव उर्वरक सूक्ष्मजीवों पर आधारित होते हैं जो

जैविक खेती : सतत कृषि की ओर एक कदम



पौधों को आवश्यक पोषक तत्व उपलब्ध कराते हैं।

* राइजोबियम * एजोटोबैक्टर * एजोस्फिरिलम *
फॉस्फेट घुलनशील जीवाणु (PSB) * नीलहरित शैवाल

3. जैविक कीट नियंत्रण (Biological Pest Control)

फसलों को कीटों एवं रोगों से बचाने के लिए जैविक उपाय अपनाए जाते हैं।

- I. नीम आधारित उत्पाद
- II. ट्राइकोडर्मा
- III. बैसिलस थुरिन्जिएन्सिस (Bt)
- IV. फेरोमोन ट्रैप
- V. प्रकाश प्रपंच (Light Trap)



4. फसल चक्र (crop rotation)

विभिन्न फसलों को क्रमवार उगाने से मृदा की उर्वरता बनी रहती है तथा रोग एवं कीटों का प्रकोप कम होता है।

जैविक खेती के लाभ

1. मृदा स्वास्थ्य में सुधार
जैविक खादों के प्रयोग से मृदा में कार्बनिक पदार्थों की मात्रा बढ़ती है, जिससे मृदा की संरचना एवं जलधारण क्षमता में सुधार होता है।
2. पर्यावरण संरक्षण
रासायनिक पदार्थों का उपयोग न होने के कारण जल, वायु एवं मृदा प्रदूषण कम होता है।
3. मानव स्वास्थ्य के लिए लाभकारी
जैविक उत्पादों में रासायनिक अवशेष नहीं होते,

जिससे स्वास्थ्य संबंधी जोखिम कम होते हैं।

4. जैव विविधता का संरक्षण

जैविक खेती लाभकारी कीटों, पक्षियों एवं सूक्ष्मजीवों के संरक्षण में सहायता करती है।

5. उत्पादन की गुणवत्ता में सुधार

जैविक उत्पाद अधिक पौष्टिक, स्वादिष्ट एवं सुरक्षित माने जाते हैं।

6. दीर्घकालिक लाभ

यह खेती प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण करती है और कृषि को लंबे समय तक टिकाऊ बनाती है।

जैविक खेती की चुनौतियाँ

1. प्रारंभिक वर्षों में उत्पादन कम हो सकता है।
2. जैविक खादों की पर्याप्त उपलब्धता एक समस्या है।
3. जैविक उत्पादों के विपणन की उचित व्यवस्था का अभाव।
4. किसानों में तकनीकी ज्ञान की कमी।
5. जैविक प्रमाणन (Certification) की प्रक्रिया जटिल एवं खर्चीली हो सकती है।

भारत में जैविक खेती की स्थिति

भारत विश्व के प्रमुख जैविक कृषि उत्पादक देशों में से एक है। देश के कई राज्यों में जैविक खेती को बढ़ावा दिया जा रहा है। विशेष रूप से Sikkim को भारत का पहला पूर्ण जैविक राज्य घोषित किया गया है। इसके अतिरिक्त Madhya Pradesh, Rajasthan, Uttarakhand तथा Uttar Pradesh में भी जैविक खेती का क्षेत्र लगातार बढ़ रहा है।

सतत कृषि में जैविक खेती की भूमिका

सतत कृषि का उद्देश्य वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताओं को पूरा करते हुए भविष्य की पीढ़ियों के लिए प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण करना है। जैविक खेती मृदा, जल, पर्यावरण तथा जैव विविधता के संरक्षण के माध्यम से सतत कृषि के उद्देश्यों को पूरा करती है। यह कृषि उत्पादन को पर्यावरण के साथ संतुलित रखते हुए ग्रामीण विकास एवं किसानों की आय बढ़ाने में भी सहायक है।

निष्कर्ष

जैविक खेती आधुनिक कृषि की चुनौतियों का एक प्रभावी समाधान है। यह न केवल मृदा की उर्वरता एवं पर्यावरण संरक्षण में योगदान देती है, बल्कि सुरक्षित एवं पौष्टिक खाद्य पदार्थों के उत्पादन को भी सुनिश्चित करती है। वर्तमान समय में सतत कृषि विकास के लिए जैविक खेती को अपना अत्यंत आवश्यक है। यदि किसानों को उचित प्रशिक्षण, तकनीकी सहायता तथा बाजार सुविधाएँ उपलब्ध कराई जाएँ, तो जैविक खेती भारत की कृषि व्यवस्था को अधिक टिकाऊ, लाभकारी और पर्यावरण-अनुकूल बना सकती है।



✍ मोहित कुमार खंगार, रिकू यादव, ऋषभ श्रीवास्तव
पीएच.डी शोधार्थी, कृषि प्रसार एवं संचार विभाग, रानी लक्ष्मीबाई केंद्रीय कृषि विश्वविद्यालय, झांसी (उ.प्र.)

✍ आशुतोष शर्मा सहायक प्राध्यापक, कृषि प्रसार एवं संचार विभाग, रानी लक्ष्मीबाई केंद्रीय कृषि विश्वविद्यालय, झांसी

✍ मयंक शर्मा एम.एससी. शोधार्थी, कृषि प्रसार एवं संचार विभाग, रानी लक्ष्मीबाई केंद्रीय कृषि विश्वविद्यालय, झांसी

कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ है और ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले लाखों लोगों की आजीविका का प्रमुख स्रोत बनी हुई है। आज भी भारत की एक बड़ी जनसंख्या प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कृषि और संबद्ध क्षेत्रों पर निर्भर है। यह क्षेत्र राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा, रोजगार सृजन और ग्रामीण विकास में महत्वपूर्ण योगदान देता है। हालांकि, अपने महत्व के बावजूद, भारतीय कृषि को घटती हुई कृषि उत्पादकता, जलवायु परिवर्तनशीलता, कीट एवं रोग प्रकोप, भूमि जोतों के विखंडन और समय पर जानकारी की कमी जैसी कई चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। इन चुनौतियों का एक महत्वपूर्ण समाधान कृषि विस्तार सेवाओं को मजबूत करने में निहित है। कृषि विस्तार वह प्रणाली है जिसके माध्यम से वैज्ञानिक ज्ञान, शोध निष्कर्ष और आधुनिक प्रौद्योगिकियां अनुसंधान संस्थानों और विश्वविद्यालयों से किसानों तक पहुंचाई जाती हैं। प्रभावी विस्तार सेवाएं किसानों को अपनी कृषि पद्धतियों में सुधार करने, नई तकनीकों को अपनाने तथा उत्पादकता एवं आय बढ़ाने में मदद करती हैं।

परंपरागत रूप से, भारत में कृषि विस्तार सेवाएं क्षेत्र भ्रमण, प्रदर्शनों, किसान बैठकों, प्रशिक्षण कार्यक्रमों और कृषि मेलों के माध्यम से प्रदान की जाती रही हैं। सरकारी विभागों और कृषि विश्वविद्यालयों के विस्तार कार्यकर्ता गांवों का दौरा करके किसानों को उन्नत बीजों, उर्वरकों, सिंचाई विधियों और कीट प्रबंधन तकनीकों के बारे में शिक्षित करते हैं। रेडियो और टेलीविजन कार्यक्रमों ने भी कृषि जानकारी के प्रसार में भूमिका निभाई है। यद्यपि इन पारंपरिक विस्तार विधियों ने कृषि विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है, फिर भी इनकी कई सीमाएं हैं। भारत में 14 करोड़ से अधिक किसान हैं, लेकिन विस्तार कार्यकर्ताओं की संख्या सीमित है। परिणामस्वरूप, विस्तार अधिकारियों के लिए प्रत्येक किसान तक नियमित रूप से पहुंचना कठिन हो जाता है। दूरदराज और बिखरे हुए गांवों में रहने वाले किसान अक्सर विस्तार सेवाओं की पहुंच से बाहर रह जाते हैं। इसके अलावा, कृषि जानकारी अक्सर सही समय पर आवश्यक होती है, जैसे कीट आक्रमण या अत्यधिक मौसम की स्थिति के दौरान, और पारंपरिक विस्तार प्रणालियां कभी-कभी तत्काल सहायता प्रदान करने में असफल रहती हैं। हाल के वर्षों में, डिजिटल प्रौद्योगिकियों के तीव्र विकास ने कृषि विस्तार सेवाओं को बदलने के नए अवसर खोले हैं। स्मार्टफोन, इंटरनेट कनेक्टिविटी और डिजिटल प्लेटफॉर्म की बढ़ती उपलब्धता ने कृषि जानकारी को तेजी से और कुशलतापूर्वक पहुंचाना संभव बना दिया है। कृषि विस्तार सेवाओं के डिजिटलीकरण में मोबाइल एप्लिकेशन, वेबसाइट, ऑनलाइन सलाहकार प्रणाली, एमएसएमएस अलर्ट और सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म जैसी सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकियों का उपयोग शामिल है ताकि किसानों को कृषि जानकारी और सलाहकार सेवाएं प्रदान की जा सकें। डिजिटल उपकरणों के माध्यम से, किसान मौसम पूर्वानुमान, फसल प्रबंधन प्रथाओं, कीट एवं रोग नियंत्रण, उर्वरक सिफारिशों और बाजार मूल्यों के बारे में वास्तविक समय की जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। भारत सरकार ने डिजिटल कृषि को बढ़ावा देने और विस्तार सेवाओं को मजबूत करने के लिए कई पहल की हैं। डिजिटल परिवर्तन का समर्थन करने वाला सबसे महत्वपूर्ण राष्ट्रीय कार्यक्रम डिजिटल इंडिया है। इस कार्यक्रम का उद्देश्य डिजिटल बुनियादी ढांचे में सुधार करना, डिजिटल साक्षरता को बढ़ावा देना, और सरकारी सेवाओं को ऑनलाइन प्लेटफॉर्म के माध्यम से सुलभ बनाना है। इस पहल के तहत, कई कृषि सेवाएं डिजिटल माध्यमों से प्रदान की जा रही हैं, जिससे किसानों के लिए

‘डिजिटल खेती, स्मार्ट किसान: कृषि विस्तार सेवाओं में तकनीकी क्रांति’



महत्वपूर्ण जानकारी और सेवाओं तक पहुंचना आसान हो गया है।

एक अन्य महत्वपूर्ण पहल e-NAM है, जो देशभर के कृषि बाजारों को जोड़ने वाला एक ऑनलाइन व्यापार मंच है। इस प्लेटफॉर्म की शुरुआत से पहले, किसानों के पास अपनी उपज बेचने के सीमित विकल्प थे और वे अक्सर स्थानीय व्यापारियों पर निर्भर रहते थे। दूर-दूर के माध्यम से, किसान वास्तविक समय के बाजार मूल्यों की जांच कर सकते हैं और अपनी उपज विभिन्न राज्यों के खरीदारों को बेच सकते हैं, जिससे बेहतर पारदर्शिता और उचित मूल्य सुनिश्चित होते हैं। यह डिजिटल बाजार किसानों को उनकी सौदेबाजी की शक्ति बढ़ाने और बाजार पहुंच का विस्तार करने में मदद करता है। किसान कॉल सेंटर जैसे कार्यक्रमों के माध्यम से डिजिटल सलाहकार सेवाओं को भी मजबूत किया जा रहा है। यह सेवा किसानों को टोल-फ्री नंबर के माध्यम से कृषि विशेषज्ञों से संपर्क करने और फसल खेती, कीट प्रबंधन, मृदा स्वास्थ्य और पशुधन देखभाल पर सलाह प्राप्त करने की सुविधा देती है। किसान अपनी स्थानीय भाषा में सीधे वैज्ञानिकों और विस्तार विशेषज्ञों से बात कर सकते हैं, जिससे यह सेवा अधिक सुलभ और उपयोगी बन जाती है। ऐसे डिजिटल संचार उपकरण किसानों को समस्याओं का शीघ्र समाधान करने और फसल नुकसान को कम करने में मदद करते हैं। मोबाइल प्रौद्योगिकी डिजिटल कृषि विस्तार के सबसे शक्तिशाली उपकरणों में से एक बन गई है। किसानों को कृषि जानकारी प्रदान करने के लिए कई मोबाइल एप्लिकेशन विकसित किए गए हैं। व्यापक रूप से उपयोग किए जाने वाले एप्लिकेशनों में से एक किसान सुविधा है। यह एप्लिकेशन मौसम पूर्वानुमान, बाजार मूल्यों, पौध संरक्षण उपायों, इनपुट डीलरों और कृषि सलाह पर जानकारी प्रदान करता है। किसान अपने स्मार्टफोन पर आसानी से इस जानकारी तक पहुंच सकते हैं, जिससे वे फसल प्रबंधन और विपणन के संबंध में बेहतर निर्णय ले

सकते हैं। डिजिटल कृषि विस्तार में रिमोट सेंसिंग, भौगोलिक सूचना प्रणाली (GIS), कृत्रिम बुद्धिमत्ता और डेटा एनालिटिक्स जैसी उन्नत प्रौद्योगिकियों का उपयोग भी शामिल है। ये प्रौद्योगिकियां फसल की स्थिति की निगरानी करने, कीट प्रकोप की भविष्यवाणी करने और मृदा स्वास्थ्य डेटा का विश्लेषण करने में मदद करती हैं। उदाहरण के लिए, उपग्रह चित्र सूखा प्रभावित क्षेत्रों की पहचान करने या फसल वृद्धि पैटर्न की निगरानी करने में मदद कर सकते हैं। कृत्रिम बुद्धिमत्ता उपकरण बड़े डेटासेट का विश्लेषण कर सकते हैं और किसानों को फसल चयन, उर्वरक उपयोग और सिंचाई प्रबंधन के संबंध में व्यक्तिगत सिफारिशें प्रदान कर सकते हैं। ये नवाचार किसानों को संसाधन उपयोग को अनुकूलित करने और कृषि उत्पादकता में सुधार करने में मदद करते हैं। डिजिटल विस्तार सेवाओं का एक अन्य महत्वपूर्ण लाभ किसानों, शोधकर्ताओं और विस्तार कार्यकर्ताओं के बीच बेहतर संचार है। डिजिटल प्लेटफॉर्म ज्ञान प्रदाताओं और किसानों के बीच एक सेतु का निर्माण करते हैं। किसान रोगग्रस्त पौधों की तस्वीरें अपलोड कर सकते हैं और थोड़े समय में विशेषज्ञ सिफारिशें प्राप्त कर सकते हैं। वे ऑनलाइन चर्चा मंचों में भाग ले सकते हैं, प्रशिक्षण वीडियो देख सकते हैं, और आभासी प्रशिक्षण कार्यक्रमों में शामिल हो सकते हैं। ये प्लेटफॉर्म विस्तार कार्यकर्ताओं को डिजिटल संदेशों और सलाह के माध्यम से एक साथ हजारों किसानों तक पहुंचने में भी सक्षम बनाते हैं। डिजिटल प्लेटफॉर्म कृषि विपणन और मूल्य श्रृंखला विकास में सुधार करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। किसान ऑनलाइन प्लेटफॉर्म के माध्यम से व्यापारियों, इनपुट आपूर्तिकर्ताओं, प्रसंस्करणकर्ताओं और निर्यातकों से जुड़ सकते हैं। वे इनपुट उपलब्धता, ऋण सुविधाओं, फसल बीमा योजनाओं और सरकारी सब्सिडी के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। डिजिटल रिकॉर्ड प्रणालियां फार्म डेटा बनाए रखने, उत्पादन स्तरों को ट्रैक करने और सब्सिडी वितरण में पारदर्शिता सुनिश्चित करने में मदद कर सकती हैं। ऐसी प्रणालियां नीति निर्माताओं को बेहतर कृषि कार्यक्रम डिजाइन करने और सेवा वितरण में सुधार करने में मदद करती हैं।

डिजिटलीकरण जलवायु-स्मार्ट कृषि का भी समर्थन करता है। अप्रत्याशित वर्षा, बढ़ते तापमान और अत्यधिक मौसम की घटनाओं के कारण जलवायु परिवर्तन किसानों के लिए एक बड़ी चुनौती बन गया है। डिजिटल उपकरण मौसम परिवर्तनों के बारे में प्रारंभिक चेतावनी प्रदान कर सकते हैं।

॥ राधे-राधे ॥

Mob.: 9522754421
हरिकृष्णा 6265841386

कामतानाथ खाद एवं बीज भण्डार

हमारे यहाँ सभी प्रकार के खाद, बीज एवं उच्च कोटि के कीटनाशक दवाईयों के थोक व खेरीज विक्रेता

Email: umashankarawat15101995@gmail.com

जवाहरगंज, पशु अस्पताल के पास, भितरवार रोड, डबरा



डॉ. पंकज कुमार मौर्य

एसोसिएट प्रोफेसर (VPY)

डॉ. मोहम्मद इरफान

डॉ. आकर्ष त्यागी, डॉ. आनंद अवस्थी

डॉ. अनंदिता खर्ब

पशु चिकित्सा एवं पशुपालन महाविद्यालय,

आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी

विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या (उ.प्र.)

बकरी प्रबंधन का महत्व एवं सामान्य देखभाल

3 से 12 माह तक बच्चों का आहार

आयु	अनुमानित दाना	हरा चारा
3 माह	150 ग्राम	200 ग्राम
4 माह	200 ग्राम	250 ग्राम
5 माह	225 ग्राम	275 ग्राम
6 माह	250 ग्राम	300 ग्राम
7 माह	275 ग्राम	325 ग्राम
8 माह	300 ग्राम	350 ग्राम
9-12 माह	300 ग्राम	350 ग्राम या अधिक

वयस्क बकरी को प्रतिदिन शरीर के वजन का 3-4% सूखा पदार्थ चाहिए। सामान्यतः 25-30 किग्रा बकरी को 2-3 किग्रा हरा चारा, 0.5-1 किग्रा सूखा चारा और 100-200 ग्राम दाना दिया जा सकता है। दाने में अनाज, चोकर, खली, खनिज मिश्रण और नमक का संतुलित मिश्रण होना चाहिए। कैल्शियम, फॉस्फोरस, कॉपर, जिंक आदि खनिज तथा नमक नियमित देना आवश्यक है। बासी या फफूंदयुक्त चारा न दें और नया आहार 5-7 दिनों में धीरे-धीरे शुरू करें।

प्रजनन, गर्भित बकरी और प्रजनक बकरे का प्रबंधन

- * सफल बकरी पालन के लिए उचित प्रजनन प्रबंधन आवश्यक है। बकरी सामान्यतः 8-12 माह की आयु में प्रजनन योग्य होती है, लेकिन पर्याप्त वजन और अच्छे स्वास्थ्य के बाद ही गर्भिण कराना चाहिए।
- * बकरी में मदकाल 18-21 दिन के अंतराल पर आता है। इसके प्रमुख लक्षण हैं-बेचैनी, बार-बार मिमिया, पूंछ हिलाना, योनि से साफ श्लेष्मा निकलना तथा नर के प्रति आकर्षण। गर्मी आने के 12-18 घंटे बाद बकरा मिलाना सर्वोत्तम माना जाता है।
- * एक स्वस्थ बकरा 25-30 बकरियों के लिए पर्याप्त होता है। प्रजनन से पहले उसे संतुलित आहार, खनिज मिश्रण और स्वच्छ पानी देना चाहिए तथा अधिक मोटा नहीं होने देना चाहिए।

गर्भित बकरी का प्रबंधन

- * बकरी की गर्भावधि 145-150 दिन होती है। अंतिम 45 दिन सबसे महत्वपूर्ण होते हैं। इस अवधि में 250-350 ग्राम अतिरिक्त दाना, अच्छा हरा व सूखा चारा, खनिज मिश्रण और स्वच्छ पानी देना चाहिए।
- * गर्भित बकरी को फिसलन, भीड, तनाव और लंबी चराई से बचाकर अंतिम महीने में अलग, साफ एवं सूखे बाड़े में रखना चाहिए। प्रसव से 10-15 दिन पहले प्रसव स्थान तैयार कर लेना चाहिए।
- * प्रसव के प्रमुख लक्षण हैं-थन फूलना, योनि से श्लेष्मा निकलना, बेचैनी और बार-बार उठना-बैठना। सामान्य प्रसव में हस्तक्षेप न करें, लेकिन कठिन प्रसव, बच्चे की गलत स्थिति या दुर्गन्धयुक्त स्राव होने पर तुरंत पशु चिकित्सक से संपर्क करें।
- * गर्भावस्था में बकरी को न अधिक मोटा और न ही कुपोषित होने दें, क्योंकि दोनों स्थितियाँ प्रसव और दूध उत्पादन को प्रभावित करती हैं। दुग्ध देने वाली बकरियों का प्रबंधन और मौसम के अनुसार देखभाल

मौसमी प्रबंधन-

- * गर्मी: छाया, हवादार शेड, स्वच्छ पानी और सुबह-शाम चराई करें।
- * वर्षा: शेड सूखा रखें, नमी व कीचड़ से बचाएँ, समय पर टीकाकरण एवं कृमिनाशन करें।

सर्दी: सूखी बिछवन, ठंड से सुरक्षा, धूप तथा ऊर्जा युक्त आहार दें। टीकाकरण, रोग रोकथाम और कृमिनाशन
स्वच्छ आवास, संतुलित आहार, साफ पानी, बीमार पशुओं को अलग रखना, नियमित टीकाकरण और कृमिनाशन बकरी पालन में रोगों की रोकथाम के सबसे प्रभावी उपाय हैं।

महत्वपूर्ण टीकाकरण कार्यक्रम

रोग	पहला टीका	दोबारा टीकाकरण
पीपीआर	3-6 माह की आयु में	लगभग 3 वर्ष बाद या स्थानीय सलाह अनुसार
खुरपका-मुंहका	3-4 माह की आयु से	प्रत्येक 6 माह पर
एटेरोटोक्सिमिया	3-6 माह की आयु में	वर्षा ऋतु से पहले, सामान्यतः साल में एक बार
गलथोद	3-6 माह की आयु में	वर्षा ऋतु से पहले सालाना
बकरी चेचक	3-5 माह की आयु में	सालाना या स्थानीय पशु चिकित्सक की सलाह अनुसार
एंथ्रैक्स	रोगग्रस्त क्षेत्र में	सालाना, सरकारी सलाह अनुसार

टीकाकरण केवल स्वस्थ बकरियों को कराना चाहिए। बीमार, बुखार या दस्त से ग्रस्त पशुओं को टीका न लगाएं। टीका शीत श्रृंखला (Cold chain) में सुरक्षित हो तथा प्रशिक्षित व्यक्ति/पशु चिकित्सक द्वारा लगाया जाए। गर्भित बकरियों में टीकाकरण पशु चिकित्सक की सलाह से ही करें।

कृमिनाशन कार्यक्रम- आंतरिक परजीवी बकरियों में वजन कम होना, दस्त, खून की कमी, बाल रूखे होना, दूध कम होना, बच्चों की धीमी वृद्धि और मृत्यु तक का कारण बन सकते हैं। इसलिए नियमित कृमिनाशन बहुत जरूरी है।

अवस्था	कृमिनाशन
बच्चे	1-15 माह की आयु से पशु चिकित्सक की सलाह अनुसार शुरू करें
बढ़ते बच्चे	हर 2-3 माह पर, विशेषकर वर्षा ऋतु में
वयस्क बकरियाँ	साल में 3 बार-वर्षा से पहले, वर्षा के बाद और सर्दी में
गर्भित बकरी	प्रसव से 2-3 सप्ताह पहले सुरक्षित दवा से, पशु चिकित्सक की सलाह से
नया खरीदा पशु	झुंड में मिलाने से पहले कृमिनाशन और अलग निगरानी

कृमिनाशक दवा शरीर के वजन के अनुसार दें। एक ही दवा का बार-बार प्रयोग न करें तथा गर्भिण, कमजोर या दुग्ध देने वाली बकरियों में दवा पशु चिकित्सक की सलाह से दें।

बाह्य परजीवी नियंत्रण: जूँ, किलनी और खुजली से बचाव हेतु शेड की नियमित सफाई तथा उचित कीटनाशक का प्रयोग करें। दवा का उपयोग बच्चों, गर्भिण और दुग्ध देने वाली बकरियों में सावधानी से करें।

दैनिक प्रबंधन कैलेंडर और आवश्यक सावधानियाँ- बकरी पालन में सफलता नियमित दिनचर्या से मिलती है। पशु को प्रतिदिन ध्यान से देखना चाहिए। जो बकरी अलग खड़ी है, चारा नहीं खा रही, सुस्त है, दस्त कर रही है, लंगड़ा रही है, खांस रही है या अधिक मिमिया रही है, उसे तुरंत अलग करके जांच करनी चाहिए।

दैनिक कार्य: प्रतिदिन बकरियों का स्वास्थ्य निरीक्षण करें। शेड की सफाई, स्वच्छ पानी, संतुलित आहार, समय पर दाना, दूध दुहना तथा बीमार पशुओं को अलग रखें।

साप्ताहिक/मासिक प्रबंधन: सप्ताह में एक बार शेड की गहरी सफाई, खुर व शरीर की जांच करें। हर माह शरीर की स्थिति एवं प्रजनन रिकॉर्ड (मदकाल, मिलान, गर्भ, प्रसव) अपडेट करें।

मुख्य सावधानियाँ: बासी चारा, गंदा पानी और अचानक आहार परिवर्तन से बचें। नए पशुओं को क्वारंटीन में रखें, बीमार पशुओं को अलग करें तथा समय पर टीकाकरण और कृमिनाशन कराएँ।

सफल बकरी पालन का सूत्र: स्वच्छ शेड + संतुलित आहार + स्वच्छ पानी + उचित प्रजनन + बच्चों की देखभाल + नियमित टीकाकरण/कृमिनाशन + रिकॉर्ड प्रबंधन = अधिक उत्पादन और लाभ।

बकरी पालन कम लागत में अधिक लाभ देने वाला व्यवसाय है, इसलिए इसे "गरीब की गाय" कहा जाता है। इससे दूध, मांस, खाद और बच्चों की बिक्री से आय प्राप्त होती है। सफल पालन के लिए सही नस्ल का चयन, संतुलित आहार, स्वच्छ आवास, उचित प्रजनन, टीकाकरण, कृमिनाशन और रोग नियंत्रण आवश्यक हैं। खरीदते समय स्वस्थ, सक्रिय, अच्छी शारीरिक बनावट वाली बकरी तथा प्रजनन के लिए मजबूत, नस्लीय गुणों वाला बकरा चुनना चाहिए। शेड सूखा, साफ, हवादार और नमी रहित होना चाहिए। बच्चों, गर्भिण तथा दुग्ध देने वाली बकरियों को अलग रखना बेहतर रहता है। स्वच्छ पानी हमेशा उपलब्ध कराएं तथा नियमित रूप से खुर काटना, सफाई, जूँ-किलनी नियंत्रण और नए पशुओं को 10-14 दिन क्वारंटीन में रखने के बाद ही झुंड में शामिल करें।

नवजात बच्चों का प्रबंधन और दूध पिलाना- बकरी के बच्चों की देखभाल जन्म के तुरंत बाद शुरू हो जाती है। सबसे पहले नाक और मुंह की सफाई कर बच्चे को सामान्य श्वास लेने में सहायता करनी चाहिए। यदि माँ बच्चे को न चाहे, तो उसे साफ सूखे कपड़े से पोछकर सुखाना चाहिए। नाभि को 3-4 सेमी दूरी पर बांधकर काटें और उस पर टिंचर आयोडीन लगाएं, जिससे संक्रमण से बचाव हो सके। जन्म के 30-60 मिनट के भीतर बच्चे को खीस (कोलोस्ट्रम) अवश्य पिलानी चाहिए, क्योंकि यह रोग प्रतिरोधक क्षमता और ऊर्जा का मुख्य स्रोत है। यदि बच्चा स्वयं दूध न पी सके, तो सहायता से या बोतल/निप्पल द्वारा दूध पिलाएं। पहले 3-4 दिनों तक केवल खीस और माँ का दूध दें तथा थोड़ी-थोड़ी मात्रा में बार-बार दूध पिलाएं। यदि माँ का दूध पर्याप्त न हो, तो दूसरी स्वस्थ बकरी या आवश्यकता होने पर हल्का गुनगुना गाय का दूध दिया जा सकता है।

नवजात से 3 माह तक आहार प्रबंधन

आयु	आहार व्यवस्था
जन्म से 7 दिन	केवल खीस और माँ का दूध, शरीर को गर्म और सूखा रखना
8-30 दिन	माँ का दूध 2-3 बार, थोड़ी मात्रा में कोमल हरी पत्तियाँ और साफ पानी की आदत
1-2 माह	दूध के साथ 50-100 ग्राम क्रॉप फीड, कोमल चारा और साफ पानी
2-3 माह	दूध धीरे-धीरे कम करें, क्रॉप फीड 100-200 ग्राम, हरा चारा बढ़ाएं
3 माह	धीरे-धीरे दूध छुड़ाना, बच्चों को अलग आहार पर लाना

15 दिन की आयु से बच्चों को क्रॉप फीड (अनाज, चोकर, खली, खनिज मिश्रण एवं नमक) तथा साफ पानी देना शुरू करना चाहिए। इससे उनकी वृद्धि तेज होती है। आहार हमेशा ताजा और फफूंद रहित होना चाहिए।

बच्चों को ठंड, नमी और तेज हवा से बचाकर सूखी एवं गर्म बिछवन में रखना चाहिए। यदि बच्चा दूध न पीए, सुस्त हो, दस्त, पेट फूलना या शरीर ठंडा होने जैसे लक्षण दिखें, तो तुरंत पशु चिकित्सक से संपर्क करना चाहिए।

बढ़ते बच्चों और वयस्क बकरियों का आहार प्रबंधन

- * बकरी एक ब्राउजर पशु है, जो घास के साथ झाड़ियों, पत्तियों और कोमल टहनियों को भी खाती है। अच्छे स्वास्थ्य एवं उत्पादन के लिए हरा चारा, सूखा चारा, दाना, खनिज मिश्रण, नमक और स्वच्छ पानी का संतुलित आहार आवश्यक है।
- * 3 माह की आयु के बाद बच्चों को दूध छुड़कर प्रोटीन एवं ऊर्जा युक्त बड़वार वाला आहार देना चाहिए, जिससे उनकी वृद्धि, समय पर प्रजनन और उत्पादन क्षमता अच्छी बनी रहे।



अभिषेक सिंह, शिवम कुमार पाठक
सस्य विज्ञान विभाग, कृषि संकाय, प्रो. राजेंद्र सिंह
(रज्जू भैया) विश्वविद्यालय, प्रयागराज (उ.प्र.)

डॉ. ललित कुमार सनोदिया

डॉ. अखिलेश कुमार सिंह सहायक प्रोफेसर,
कृषि संकाय, प्रो. राजेंद्र सिंह (रज्जू भैया)
विश्वविद्यालय, प्रयागराज (उ.प्र.)

प्रस्तावना

भारत विश्व के उन देशों में शामिल है जहाँ कृषि अर्थव्यवस्था की रीढ़ मानी जाती है। देश की लगभग आधी से अधिक आबादी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कृषि पर निर्भर है। कृषि उत्पादन का प्रमुख आधार जल है, क्योंकि बिना पर्याप्त जल के फसलों का उत्पादन संभव नहीं है। लेकिन वर्तमान समय में भारत गंभीर जल संकट का सामना कर रहा है। बढ़ती जनसंख्या, शहरीकरण, औद्योगिकीकरण, भूजल का अत्यधिक दोहन, जलवायु परिवर्तन तथा जल संसाधनों के असंतुलित उपयोग ने इस संकट को और अधिक गहरा बना दिया है। जल संकट केवल पानी की उपलब्धता तक सीमित नहीं है, बल्कि यह कृषि उत्पादन, खाद्य सुरक्षा, किसानों की आय, ग्रामीण विकास और देश की आर्थिक प्रगति को भी प्रभावित कर रहा है।

भारत में जल संसाधनों की स्थिति

भारत विश्व की लगभग 18 प्रतिशत जनसंख्या का घर है, जबकि उसके पास विश्व के लगभग 4 प्रतिशत मीठे जल संसाधन ही उपलब्ध हैं। यही कारण है कि देश में जल संसाधनों पर लगातार दबाव बढ़ रहा है। भारत में वर्षा का मुख्य स्रोत दक्षिण-पश्चिम मानसून है, जिससे वर्षा भर होने वाली कुल वर्षा का लगभग 75-80 प्रतिशत भाग प्राप्त होता है। लेकिन वर्षा का वितरण पूरे देश में समान नहीं है। कुछ क्षेत्रों में अत्यधिक वर्षा होती है, जबकि कई क्षेत्रों में वर्षा सामान्य से बहुत कम होती है।

कृषि क्षेत्र में जल संकट की वर्तमान स्थिति

भारत की लगभग आधी कृषि भूमि आज भी वर्षा आधारित है। ऐसे क्षेत्रों में मानसून की अनिश्चितता सीधे कृषि उत्पादन को प्रभावित करती है। यदि वर्षा समय पर नहीं होती या सामान्य से कम होती है, तो किसानों की फसलें प्रभावित होती हैं और उत्पादन घट जाता है। कई स्थानों पर भूजल का स्तर इतना नीचे पहुँच चुका है कि किसानों को अधिक गहराई तक बोरिंग करनी पड़ती है, जिससे सिंचाई की लागत बढ़ जाती है। छोटे और सीमांत किसानों के लिए यह आर्थिक रूप से बड़ी चुनौती बन जाती है।

जल संकट के प्रमुख कारण

1. भूजल का अत्यधिक दोहन

भारत में सिंचाई के लिए सबसे अधिक उपयोग भूजल का होता है। आधुनिक बोरवेल और ट्यूबवेल के माध्यम से लगातार जल निकाला जा रहा है, जबकि भूजल पुनर्भरण की गति बहुत धीमी है। इससे अनेक क्षेत्रों में जल स्तर लगातार गिर रहा है।

2. अनियमित मानसून

भारत में जल संकट की वर्तमान स्थिति

जलवायु परिवर्तन के कारण मानसून का स्वरूप बदल रहा है। कहीं अत्यधिक वर्षा होती है तो कहीं लंबे समय तक सूखा पड़ता है। इससे कृषि उत्पादन में अनिश्चितता बढ़ती जा रही है।

3. जलवायु परिवर्तन

बढ़ते तापमान, हीटवेव, सूखा और बाढ़ जैसी घटनाओं की आवृत्ति बढ़ने से जल संसाधनों पर अतिरिक्त दबाव पड़ रहा है। इससे सिंचाई की आवश्यकता बढ़ती है जबकि जल की उपलब्धता घटती जाती है।

4. पारंपरिक सिंचाई पद्धतियाँ

देश के अनेक क्षेत्रों में अभी भी बाढ़ सिंचाई (Flood Irrigation) का उपयोग किया जाता है, जिसमें पानी की बड़ी मात्रा व्यर्थ चली जाती है। जल उपयोग की दक्षता कम होने के कारण जल संकट और बढ़ जाता है।

5. अधिक पानी वाली फसलों की खेती

धान, गन्ना और कुछ अन्य फसलें अधिक पानी की मांग करती हैं। इन फसलों की खेती ऐसे क्षेत्रों में भी की जाती है जहाँ जल संसाधन सीमित हैं। इससे भूजल पर अतिरिक्त दबाव पड़ता है।

6. वर्षा जल संचयन की कमी

भारत में वर्षा का अधिकांश जल बिना संग्रहण के बह जाता है। यदि इस जल का संरक्षण किया जाए तो सिंचाई और पेयजल दोनों की उपलब्धता बढ़ाई जा सकती है।

जा सकती है।

7. बढ़ती जनसंख्या और शहरीकरण

जनसंख्या वृद्धि के कारण घरेलू, औद्योगिक और कृषि क्षेत्रों में जल की मांग लगातार बढ़ रही है। इससे उपलब्ध जल संसाधनों पर दबाव बढ़ता जा रहा है।

कृषि पर जल संकट का प्रभाव

* जल संकट का सबसे अधिक प्रभाव कृषि क्षेत्र पर पड़ता है।

- * फसल उत्पादन में कमी आती है।
- * किसानों की आय घट जाती है।
- * सिंचाई की लागत बढ़ जाती है।
- * खेती का जोखिम बढ़ जाता है।
- * ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी और पलायन बढ़ सकता है।
- * पशुपालन भी प्रभावित होता है क्योंकि पशुओं के लिए पानी और चारे की कमी हो जाती है।

प्रभावित क्षेत्र

देश के कई राज्यों में जल संकट गंभीर रूप ले चुका है।

- * पंजाब और हरियाणा - भूजल का अत्यधिक दोहन।
- * राजस्थान - कम वर्षा और मरुस्थलीय क्षेत्र।
- * महाराष्ट्र - बार-बार सूखे की स्थिति।
- * कर्नाटक और तमिलनाडु - वर्षा की अनिश्चितता और भूजल संकट।
- * बुंदेलखंड (उत्तर प्रदेश-मध्य प्रदेश) - लगातार सूखा और सीमित जल संसाधन।
- * गुजरात के कुछ भाग - भूजल स्तर में लगातार गिरावट।

भविष्य की चुनौतियाँ

यदि वर्तमान स्थिति में सुधार नहीं हुआ तो भविष्य में कृषि के लिए पर्याप्त जल उपलब्ध कराना कठिन हो सकता है। बढ़ती जनसंख्या के कारण खाद्यान्न की मांग बढ़ेगी, लेकिन जल की कमी उत्पादन क्षमता को प्रभावित कर सकती है। इससे खाद्य सुरक्षा, किसानों की आय और ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर गंभीर प्रभाव पड़ सकता है।

निष्कर्ष

भारत में जल संकट की वर्तमान स्थिति अत्यंत गंभीर है और इसका सबसे अधिक प्रभाव कृषि क्षेत्र पर दिखाई देता है। भूजल का लगातार घटता स्तर, अनियमित मानसून, जलवायु परिवर्तन, पारंपरिक सिंचाई पद्धतियाँ तथा जल संरक्षण की कमी इस समस्या के प्रमुख कारण हैं। इस चुनौती का समाधान केवल नए जल स्रोत खोजने में नहीं, बल्कि उपलब्ध जल का वैज्ञानिक, संतुलित और कुशल उपयोग करने में है।

जैन बीज भण्डार एवं पशु आहार

मैन बाजार, चीनोर रोड,
छीमक जिला-ग्वालियर (म.प्र.)

प्रो. मुकेश जैन, मोबाइल: 9977638510



नितू चौधरी विद्यावाचस्पति, कीट विज्ञान विभाग, कृषि महाविद्यालय, स्वामी केशवानन्द राजस्थान, कृषि महाविद्यालय, बीकानेर (राजस्थान)

शिमला मिर्च में एकीकृत कीट एवं रोग प्रबंधन

फल छेदक

लक्षण: फल छेदक कीट रात के समय बहुत सक्रिय होते हैं। वयस्क कीट बड़ी संख्या में फलों, फूलों और पत्तियों पर अंडे देते हैं और अंडों से निकलने वाले शिशु फलों और पत्तियों को खाते हैं, जिससे फसलों को भारी नुकसान होता है और उपज की गुणवत्ता पर बुरा असर पड़ता है। जब भी रात का तापमान कम होता है, ठंड और उच्च आर्द्रता के साथ संक्रमण बढ़ जाता है। चूंकि अंडे समूह में दिए जाते हैं, इसलिए लार्वा भी एक स्थान पर पत्तियों पर झुंड बनाकर भोजन करता है, जिसे आसानी से पहचाना और नष्ट किया जा सकता है।

प्रबंध: नवजात और वयस्क कीटों को उठाकर नष्ट कर दें। आम तौर पर, अंडे समूहों में रखे जाते हैं और उनमें से बच्चे निकलते हैं, जिन्हें दूर से पहचानना आसान होता है। इसलिए, उन्हें तुरंत पहचान कर नष्ट कर देना चाहिए। थायोडिकार्ब (1 मिली/ली) या कार्बारिल (3 ग्राम/ली) या इंडोक्सकार्ब (1 मिली/ली) या राइनेक्सीपायर (0.5 मिली/ली) या क्लोरोफेनफर (1.5 मिली/ली) या फिप्रोनिनिल (1 मिली/ली) का छिड़काव करें। छिड़काव के अलावा, वयस्क वयस्कों को मेशोमाइल बैटिंग के अधीन किया जाना चाहिए, जो एक सुरक्षित, स्वस्थ और प्रभावी अभ्यास है।

मेशोमाइल बैटिंग प्रक्रिया: 10 किलो धान की भूसी और 1 किलो गुड़ का घोल तैयार करें और 6-8 घंटे के लिए स्टोर करें। मिश्रण में 2 किलो मेशोमिल मिलाएं। मिश्रण की छोटी-छोटी गोलियां बनाई जाती हैं जिन्हें पौधों की जड़ के पास और पॉली हाउस/नेट हाउस के आसपास फैलाया जाता है ताकि फल छेदक के संक्रमण से बचा जा सके। इसे रात के समय लगाया जाना चाहिए और घरेलू या पालतू जानवरों को रात भर नेट/पॉलीहाउस के अंदर और आसपास घूमने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए।

1. नेमाटोड

लक्षण: सोलेनेसियस फसलों में निमेटोड आमतौर पर तब देखे जाते हैं जब उन्हें एक ही खेत में लगातार 3-4 बार उगाया जाता है। शुरुआत में पत्तियों का पीलापन देखा जा सकता है, उसके बाद पत्तियों के आकार, संख्या में कमी और फलों के आकार में 15 प्रतिशत की भारी कमी देखी जा सकती है। जब संक्रमित पौधों को उखाड़कर देखा जाता है, तो संक्रमण के स्तर के आधार पर जड़ों पर बड़ी संख्या में निमेटोड नोड्यूल से भरी छोटी और बड़ी गांठें देखी जा सकती हैं।

प्रबंध: नेमाटोड से बचने के लिए गेंदा, स्वीट कॉर्न और गोभी जैसी गैर-सोलेनेसियस फसलों के साथ फसल चक्र अपनाएं। जैव-कीटनाशकों से समृद्ध नीम केक (जैसा कि पहले बताया गया है) को क्यारियों में रोपाई से 4-5 दिन पहले 800 किलोग्राम/एकड़ की दर से डालना चाहिए। रोपण के समय कार्बोप्थुरान (फ्यूराडान) कणिकाओं को 20 किलोग्राम/एकड़ की दर से डालें। पौधों पर नेमाटोड संक्रमण पर कड़ी नजर रखें, खासकर दूसरी और तीसरी फसल में। छिड़काव करते समय कीटनाशकों को हमेशा स्प्रेडर या स्ट्रिकर के साथ मिलाया चाहिए। बेहतर परिणाम के लिए पौधों को ऊपर से नीचे तक स्प्रे के संपर्क में आना चाहिए और छिड़काव करते समय पूरे शरीर को पूरे कपड़े, मास्क, दस्ताने और एग्न से ढकने का ध्यान रखना चाहिए।

रोग और प्रबंधन

डिप्पिंग ऑफ

लक्षण: संक्रमण युवा पौधों के आधार पर जमीन की सतह से ठीक ऊपर होता है, जिससे पौधे मुड़ा जाते हैं और बाद में उनकी मृत्यु हो जाती है। रोपाई के दौरान पौधों को होने वाले किसी भी नुकसान से मुख्य खेत में नए संक्रमण या नर्सरी से आने वाले संक्रमण के अलावा डिप्पिंग

ऑफ या पौधे मुरझाने की समस्या भी हो सकती है।

प्रबंध: कार्बेन्डाजिम (1 ग्राम/ली) या मेटालैक्सिल एमजेड (2 ग्राम/ली) या कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (3 ग्राम/ली) या कैप्टान (3 ग्राम/ली) को लगभग 25-50 मिली/पौधा की दर से पौधे के आधार तक डालें।

पाउडरी फफूंद

लक्षण: यह रोग शुरू में पत्ती की सतह पर छोटे पीले धब्बों और निचली सतह पर पाउडर जैसी सामग्री के रूप में दिखाई देता है, जिससे पत्ती की पूरी निचली सतह पर पाउडर जैसी वृद्धि हो जाती है, जिससे बाद में पत्तियां सूख जाती हैं और गिर जाती हैं। यह रोग पत्तियों और फलों की वृद्धि को कम कर देता है, जिससे उपज की गुणवत्ता और मात्रा कम हो जाती है।

प्रबंध: पोंगामिया/नीम तेल (7 मि.ली./ली.) + सल्फर डब्ल्यूडीजी-80 (2 ग्राम/ली.) या वेटेबल सल्फर (2 ग्राम/ली.) या हेक्साकोनाजोल (0.5 मि.ली./ली.) या माइक्लोबुटानिल (1 ग्राम/ली.) या डाइनेकेप (1 मि.ली./ली.) या एजोक्सीस्टोबिन (0.5 मि.ली./ली.) या पेनकोनाजोल (0.5 मि.ली./ली.) या फ्लूसिलाजोल (0.5 मि.ली./ली.) का छिड़काव करें।

सर्कोस्पोरा लीफ स्पॉट

लक्षण: सर्कोस्पोरा प्रारम्भ में पत्ती की सतह पर छोटे पीले धब्बे के रूप में दिखाई देता है, जो बाद में गहरे भूरे रंग के धब्बों में बदल जाता है, जो पूरे पत्ते पर फैल जाता है, जिसके परिणामस्वरूप पत्ती गिर जाती है।

प्रबंध: क्लोरोथेलेनिल (2.5 ग्राम/ली) या मेन्कोजेब (2.5 ग्राम/ली) या कार्बेन्डाजिम (1 ग्राम/ली) का छिड़काव करें।

फाइटोथेरा

लक्षण: यह रोग फलने और फूलने की अवस्था के दौरान दिखाई देता है, जिसके परिणामस्वरूप पत्ती की सतह पर छोटे तेल जैसे धब्बे बन जाते हैं, जिससे पौधे सड़ जाते हैं और काले पड़ जाते हैं। बाद में पौधे कमजोर हो जाते हैं और 2-3 दिनों में मर जाते हैं। भारी और लगातार बारिश के साथ उच्च आर्द्रता 18 रोग की उपस्थिति और इसके तेजी से फैलने में सहायक होती है। फाइटोथेरा रोग नेट हाउस में अपेक्षाकृत अधिक गंभीर होता है, जिससे 40-80 प्रतिशत फसल को नुकसान हो सकता है।

प्रबंध: कॉपर हाइड्रॉक्सी क्लोराइड (3 ग्राम/लीटर) या बोर्डो मिश्रण (1%) या मेटालैक्सिल एमजेड (2 ग्राम/लीटर) या डाइमैथोमॉर्फ + मैन्कोजेब (1 ग्राम + 2.5 ग्राम/लीटर) या फोसेटाइल एल्युमीनियम (2 ग्राम/लीटर) या एजोक्सीस्टोबिन (0.5 मिली/लीटर) का छिड़काव करें। गंभीर रूप से संक्रमित पौधों के हिस्सों को नष्ट कर देना चाहिए। गंभीर रूप से प्रभावित नेट-हाउस में शिमला मिर्च की खेती से बचना बेहतर है।

वायरल रोग

लक्षण: विषाणु जनित रोग एफ़ीडस और थ्रिप्स के माध्यम से फैलते हैं, जिससे पत्तियों के बीच में पीले धब्बे के साथ-साथ ऊपर और नीचे की ओर मुड़ने लगते हैं और कभी-कभी फलों पर भी। भारी संक्रमण के कारण पत्तियां गिर जाती हैं, पौधे की वृद्धि रुक जाती है और फलों की गुणवत्ता और मात्रा कम हो जाती है। विषाणु से प्रभावित फल बिक्री योग्य नहीं होते।

प्रबंध: नाथलॉन कवर (50 जाल) के नीचे नर्सरी बेड उगाएं, एफ़ीडस, माइट्स और थ्रिप्स का उचित प्रबंधन करें जो रोग संचारित करने वाले वेक्टर के रूप में कार्य करते हैं और रोगग्रस्त/संक्रमित पौधों का निपटारा, वायरल रोगों के संक्रमण को नियंत्रित करें।

श्रिप्स

लक्षण: श्रिप्स पत्तियों को ऊपर की ओर मोड़ते हैं, रस चूसते हैं और पत्तियों की वृद्धि, पौधों की वृद्धि, उपज और उपज के बाजार मूल्य को कम करते हैं। यह पत्तियों के क्षेत्र को भी कम करता है और पौधों द्वारा पोषक तत्वों और पानी के अवशोषण में बाधा डालता है। अधिक संक्रमण के कारण पत्तियां काली पड़ जाती हैं और सूख जाती हैं और फल अनियमित हो जाते हैं।

प्रबंध: पत्तियों, फूलों और फलों सहित प्रभावित पौधों के हिस्सों को हटा दें। गिरे हुए सभी पौधों के हिस्सों को हटाकर भूखंड को साफ रखें। पोंगामिया तेल (5-8 मिली/ली) या नीम के बीज की गिरी का अर्क (NSKE 4%) या IIHR द्वारा विकसित पोंगामिया/नीम साबुन (7 ग्राम/ली) या फिप्रोनिनिल (1 मिली/ली) या क्लोरोपायरीफॉस (2 मिली/ली) या एसीफेट (1.5 ग्राम/ली) या इमिडाक्लोप्रिड (0.5 मिली/ली) का छिड़काव करें। क्लोरोपायरीफॉस (4 मिली/ली) या इमिडाक्लोप्रिड (0.5 मिली/ली) का उपयोग करके मिट्टी को गीला करें।

माइट्स

लक्षण: युवा लार्वा और वयस्क पत्तियों, कलियों और फलों को खाते हैं, पौधे के हिस्सों से रस चूसते हैं जिससे पत्तियां नीचे की ओर मुड़ जाती हैं। पत्ती, फल और पौधों का आकार छोटा हो जाता है, फल और फूल झड़ जाते हैं जिससे उपज का बाजार मूल्य प्रभावित होता है। उच्च आर्द्रता के साथ बढ़ते तापमान के साथ इस कीट का संक्रमण बढ़ता है।

प्रबंध: पत्तियों, फूलों और फलों सहित कीटों से क्षतिग्रस्त पौधों के हिस्सों को हटा दें और पोंगामिया तेल (5-8 मिली/ली) या पोंगामिया/नीम साबुन (8-10 ग्राम/ली) या डाइकोफोल (2 मिली/ली) या वेटेबल सल्फर (2 मिली/ली) या एबामेक्टिन (0.5 मिली/ली) या इकोमाइट या प्रोपागाइट या क्लोरोफेनापायर (1 मिली/ली) या फेनाजाक्रिन (1 मिली/ली) का छिड़काव करें।

एफ़ीडस

लक्षण: निम्फ और वयस्क एफ़ीडस पत्ती की शिराओं और नई पत्तियों से रस चूसते हैं, जिसके परिणामस्वरूप पौधे की वृद्धि कम हो जाती है और उपज में कमी आती है। इसके संक्रमण से न केवल पत्तियां मुड़ जाती हैं, बल्कि वायरल रोग भी फैलते हैं।

प्रबंध: एफ़ीडस के संक्रमण के लिए नियमित अंतराल पर पौधों पर कड़ी नजर रखें। पोंगामिया / नीम साबुन (8-10 ग्राम/ली) या इमिडाक्लोप्रिड (0.5 मिली/ली) या थियोमैथोक्सास (0.5 ग्राम/ली) या डाइमैथोएट (2 मिली/ली) का छिड़काव करें।



श्री खेता राम सहायक आचार्य (वृक्षायुर्वेद)

प्रो. सुमित नथानी विभागाध्यक्ष, वृक्षायुर्वेद
विभाग, राष्ट्रीय आयुर्वेद संस्थान, जयपुर (मानद वि.वि.)

"यदि खेत हरा-भरा है, जल स्वच्छ है और प्रकृति संतुलित है, तभी किसान समृद्ध है।"

भारत की कृषि परंपरा केवल अन्न उत्पादन तक सीमित नहीं रही, बल्कि प्रकृति के साथ संतुलित जीवन जीने की कला भी सिखाती है। हजारों वर्ष पूर्व रचित वृक्षायुर्वेद में ऐसे अनेक सिद्धांत मिलते हैं जो आज के प्राकृतिक खेती, जल संरक्षण और सतत कृषि (Sustainable Agriculture) के लिए अत्यंत उपयोगी हैं। उपवन निर्माण, जलाशयों की स्थापना तथा प्राकृतिक जल शोधन का वर्णन इसका उत्कृष्ट उदाहरण है।

उपवन: केवल बगीचा नहीं, प्रकृति का जीवंत विद्यालय-वृक्षायुर्वेद में उपवन को ऐसा स्थान माना गया है जहाँ वृक्ष, लताएँ, पुष्प, पक्षी, जल और मनुष्य एक-दूसरे के पूरक बनकर रहते हैं। यह केवल सौंदर्य का प्रतीक नहीं, बल्कि पर्यावरण संरक्षण, जैव विविधता और मानसिक स्वास्थ्य का भी आधार है।

लतागृह: प्राकृतिक शीतलता का अद्भुत उदाहरण-लताओं से निर्मित लतागृह (Pergola) गर्मी के मौसम में प्राकृतिक ठंडक प्रदान करता है। चमेली जैसी सुगंधित लताएँ वातावरण को सुगंधित बनाती हैं, मधुमक्खियों एवं परागण करने वाले कीटों को आकर्षित करती हैं और जैव विविधता को बढ़ावा देती हैं।

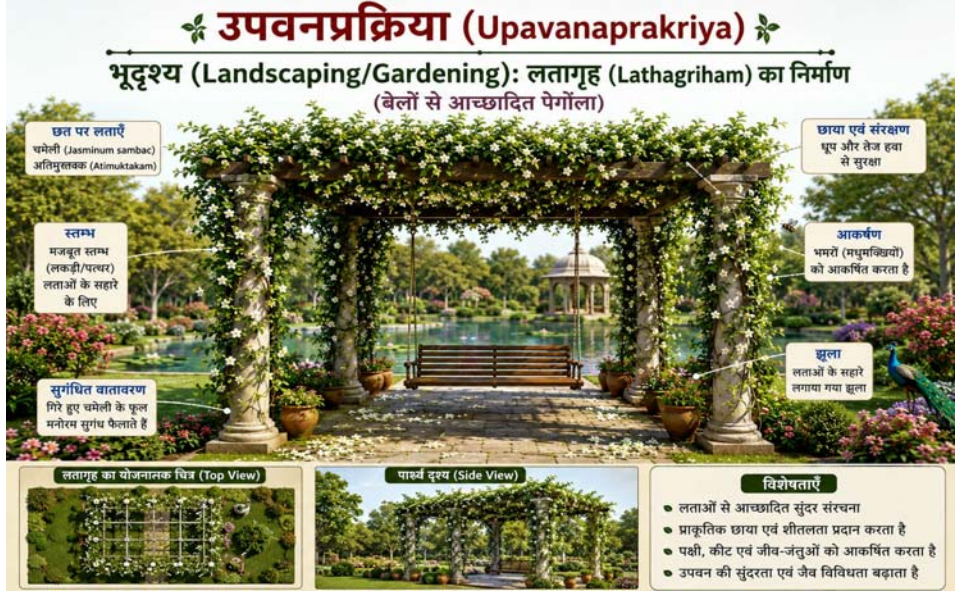
क्रीड़ापर्वत: प्रकृति और मनोरंजन का संगम-वृक्षायुर्वेद में कृत्रिम चट्टानों, गुफाओं, हरित कुटियों और लताओं से युक्त क्रीड़ापर्वत का वर्णन मिलता है। यहाँ मोरों की उपस्थिति को विशेष महत्व दिया गया है, क्योंकि वे प्राकृतिक रूप से साँपों की संख्या को नियंत्रित करने में सहायक माने जाते हैं।

जलाशय: जल संरक्षण का प्राचीन मॉडल-पुष्करिणी, सरोवर और तड़ाग केवल जल संग्रहण के साधन नहीं थे, बल्कि भूजल संरक्षण, सूक्ष्म जलवायु निर्माण और जैव विविधता के केंद्र भी थे। इनके किनारों पर वृक्षारोपण तथा कमल, कुमुद और नीलोत्पल जैसे जलीय पौधों का रोपण जल की गुणवत्ता और सौंदर्य दोनों को बढ़ाता था।

प्राकृतिक जल शोधन की वैज्ञानिक विधि - वृक्षायुर्वेद में मुस्ता, उशीर, नागकेसर, आमलकी और कटक फल जैसी औषधीय वनस्पतियों से जल शोधन का उल्लेख मिलता है। आधुनिक वैज्ञानिक अध्ययनों में भी इनमें से कई पौधों के जल शुद्धिकरण एवं रोगाणुरोधी गुणों की पुष्टि हुई है। यह दर्शाता है कि हमारे ऋषियों को जल की गुणवत्ता के महत्व का गहरा ज्ञान था।

आज के किसान क्या सीख सकते हैं? - यदि किसान अपने खेतों में छोटे तालाब, मेड़बंदी, छायादार वृक्ष, औषधीय पौधे और जैव विविधता को बढ़ावा दें, तो इससे- * वर्षा जल का संरक्षण होगा। * भूजल स्तर में सुधार होगा। * परागण करने वाले कीटों की संख्या बढ़ेगी। * पक्षियों एवं लाभकारी जीवों का संरक्षण होगा। * खेत का तापमान नियंत्रित रहेगा। * उत्पादन की स्थिरता एवं गुणवत्ता में सुधार होगा।

वृक्षायुर्वेद शृंखला-उपवनक्रिया: वृक्षायुर्वेद में उपवन निर्माण एवं प्राकृतिक जल संरक्षण:- प्राचीन ज्ञान से आधुनिक कृषि की ओर



समय की आवश्यकता

जलवायु परिवर्तन और घटते जल संसाधनों के इस दौर में वृक्षायुर्वेद का ज्ञान केवल ऐतिहासिक धरोहर नहीं, बल्कि भविष्य की टिकाऊ कृषि का मार्गदर्शक है। आधुनिक विज्ञान और प्राचीन भारतीय ज्ञान का समन्वय ही किसानों की समृद्धि तथा पर्यावरण संरक्षण का सशक्त आधार बन सकता है।

निष्कर्ष

प्रकृति के साथ सामंजस्य स्थापित करना ही

वृक्षायुर्वेद का मूल संदेश है। यदि प्रत्येक किसान अपने खेत को केवल उत्पादन का साधन नहीं, बल्कि एक "जीवंत उपवन" के रूप में विकसित करे, तो कृषि अधिक लाभकारी, पर्यावरण-अनुकूल और आने वाली पीढ़ियों के लिए सुरक्षित बन सकती है।

"वृक्ष बचेंगे, जल बचेगा; जल बचेगा, तो भविष्य सुरक्षित रहेगा।"

उपवनक्रिया :- केवल बगीचा नहीं, प्रकृति का जीवंत विद्यालय

जय माता दी

जीतू प्रो. लाखन कुशवाह

8770232968 9754564727 7987081441

मै. जय माँ खाद एवं बीज भण्डार

हमारे यहाँ सभी प्रकार के सब्जी बीज एवं कीटनाशक दवाईयाँ उचित रेट पर मिलती है।

मेन रोड, बस स्टेण्ड के पास, छीमक जिला-ग्वालियर



✍ जितेंद्र कुमार शर्मा
✍ हर्ष वर्धन सिंह शेखावत
✍ विजय कमल मीना, लेखा
✍ नीशु जोशी एवं सौरभ जोशी कृषि
विश्वविद्यालय, जोधपुर (राजस्थान)

भूमिका

मिर्च (*Capsicum annuum* L) भारत की एक महत्वपूर्ण मसाला एवं सब्जी फसल है। इसका उपयोग हरी एवं सूखी दोनों अवस्थाओं में किया जाता है। भारत विश्व के प्रमुख मिर्च उत्पादक देशों में शामिल है तथा राजस्थान, आंध्र प्रदेश, तेलंगाना, कर्नाटक, मध्य प्रदेश एवं महाराष्ट्र इसके प्रमुख उत्पादक राज्य हैं। मिर्च की अच्छी गुणवत्ता एवं अधिक उत्पादन प्राप्त करने में विभिन्न रोग सबसे बड़ी बाधा हैं। यदि इन रोगों की समय पर पहचान एवं समेकित प्रबंधन नहीं किया जाए तो 30-80 प्रतिशत तक उपज की हानि हो सकती है। अतः किसानों के लिए आवश्यक है कि वे रोगों की पहचान कर समय पर उचित प्रबंधन अपनाएं।

1. आर्द्र गलन 'Damping off'-यह रोग मुख्यतः पौधशाला में दिखाई देता है तथा *Pythium*, *Rhizoctonia* एवं *Fusarium* जैसे कवकों द्वारा होता है।

प्रमुख लक्षण

- * बीज अंकुरित होने से पहले ही सड़ जाते हैं।
- * नवजात पौधे भूमि सतह से गलकर गिर जाते हैं।
- * पौधशाला में स्थान-स्थान पर पौधों के खाली धब्बे दिखाई देते हैं।

प्रबंधन

- * रोगमुक्त एवं प्रमाणित बीज का प्रयोग करें।
- * बीजोपचार कार्बेन्डाजिम 2 ग्राम अथवा थायरम कार्बेन्डाजिम 3 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज से करें।
- * ट्राइकोडर्मा विरिडे 10 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज का उपचार लाभकारी है।
- * पौधशाला में जल निकास की उचित व्यवस्था रखें।
- * रोग दिखाई देने पर मेटालेक्सिल मैकोजेब का घोल बनाकर ड्रिपिंग करें।

2. मुरझान 'Fusarium Wilt'

यह रोग *Fusarium oxysporum* f.sp. *capsici* नामक कवक द्वारा होता है।

प्रमुख लक्षण * पौधों की निचली पत्तियाँ पीली पड़ जाती हैं। * धीरे-धीरे पूरा पौधा मुरझा जाता है।

* तने को काटने पर संवहनी ऊतक भूरे दिखाई देते हैं।

प्रबंधन * फसल चक्र अपनाएं। * रोगग्रस्त पौधों को निकालकर नष्ट करें। * ट्राइकोडर्मा युक्त जैव एजेंट का प्रयोग करें। * खेत में जलभराव न होने दें। * आवश्यकतानुसार कार्बेन्डाजिम का प्रयोग करें।

3. एन्थ्रेक्नोज एवं फल सड़न यह रोग

Colletotrichum spp. द्वारा होता है तथा पकने वाले फलों में अधिक दिखाई देता है।

प्रमुख लक्षण * फलों पर गोल धँसे हुए काले धब्बे

मिर्च में लगने वाले प्रमुख रोग एवं उनका समेकित प्रबंधन



बनते हैं। * धब्बों के मध्य गुलाबी अथवा नारंगी रंग के बीजाणु दिखाई देते हैं। * फल सड़कर बाजार मूल्य खो देते हैं।

प्रबंधन

- * रोगग्रस्त फल तोड़कर नष्ट करें।
- * खेत में स्वच्छता रखें।
- * संतुलित उर्वरक दें।
- * एजोक्सीस्ट्रोबिन, टेबुकोनाजोल अथवा डाइफेनोकानाजोल का अनुशंसित मात्रा में छिड़काव करें।

4. पाउडरी मिल्ड्यू

यह रोग *Leveillula taurica* द्वारा होता है।

प्रमुख लक्षण

- * पत्तियों की निचली सतह पर सफेद चूर्ण जैसा आवरण बनता है।

- * पत्तियाँ पीली होकर समय से पहले झड़ जाती हैं।

- * फलन एवं उत्पादन में कमी आती है।

प्रबंधन

- * उचित दूरी पर पौध लगाएं।
- * अधिक नाइट्रोजन उर्वरक न दें।
- * गंधक 80 WP अथवा हेक्साकोनाजोल या टेबुकोनाजोल का छिड़काव करें।
- * आवश्यकता अनुसार 10-15 दिन के अंतराल पर पुनः छिड़काव करें।

5. पत्ती धब्बा रोग

प्रमुख लक्षण

- * पत्तियों पर छोटे भूरे गोल धब्बे बनते हैं।
- * धब्बों के चारों ओर पीला घेरा दिखाई देता है।
- * अधिक संक्रमण होने पर पत्तियाँ झड़ जाती हैं।

प्रबंधन * रोगग्रस्त पत्तियाँ नष्ट करें।

- * फसल अवशेषों को खेत में न छोड़ें।

- * मैकोजेब अथवा क्लोरोथैलोनिल का छिड़काव करें।

6. जीवाणुजनित पत्ती धब्बा

यह रोग *Xanthomonas* spp. द्वारा होता है।

प्रमुख लक्षण * पत्तियों पर पानी से भीगे हुए छोटे धब्बे बनते हैं। * बाद में धब्बे भूरे होकर सूख जाते हैं। * फल पर भी छोटे उभरे हुए धब्बे बनते हैं।

प्रबंधन * रोगमुक्त बीज का प्रयोग करें। * बीजोपचार

करें। * संक्रमित पौधों को हटाएं। * कॉपर ऑक्सीक्लोराइड के साथ स्ट्रेप्टोसाइक्लिन का अनुशंसित मात्रा में छिड़काव करें।

7. लीफ कर्ल रोग

यह रोग वायरस द्वारा होता है तथा सफेद मक्खी इसके प्रसार का प्रमुख माध्यम है।

प्रमुख लक्षण

- * पत्तियाँ ऊपर की ओर मुड़ जाती हैं। * पौधे बौने रह जाते हैं। * फूल एवं फल कम बनते हैं।

प्रबंधन * रोगग्रस्त पौधों को तुरंत निकालें। * सफेद मक्खी का नियंत्रण करें। * पीले चिपचिपे ट्रैप लगाएं। * खेत के चारों ओर अवरोधक फसल लगाएं। * अनुशंसित कीटनाशियों का समय पर प्रयोग करें।

8. मोजेक रोग

प्रमुख लक्षण * पत्तियों पर गहरे एवं हल्के हरे रंग का मोजेक दिखाई देता है। * पत्तियाँ सिकुड़ जाती हैं। * पौधे की वृद्धि रुक जाती है।

प्रबंधन

- * रोगमुक्त बीज का प्रयोग करें। * एफिड एवं अन्य रस चूसने वाले कीटों का नियंत्रण करें।
- * संक्रमित पौधों को निकालकर नष्ट करें।
- * खेत में खरपतवार नियंत्रण रखें।

समेकित रोग प्रबंधन

- * प्रमाणित एवं रोगमुक्त बीज का उपयोग करें।
- * बीजोपचार अवश्य करें।
- * ट्राइकोडर्मा जैसे जैव एजेंट का प्रयोग करें।
- * संतुलित उर्वरक एवं उचित सिंचाई अपनाएं।
- * खेत में जलभराव न होने दें।
- * संक्रमित पौधों एवं फलों को नष्ट करें।
- * खरपतवार नियंत्रण करें।
- * नियमित निरीक्षण कर रोग की प्रारम्भिक अवस्था में नियंत्रण करें।

- * केवल अनुशंसित मात्रा में ही फफूंदनाशी एवं जीवाणुनाशी दवाओं का प्रयोग करें।

- * एक ही रसायन का बार-बार उपयोग न करें तथा विभिन्न समूहों के रसायनों का क्रमिक प्रयोग करें।

निष्कर्ष-मिर्च की सफल खेती के लिए रोगों की समय पर पहचान एवं समेकित रोग प्रबंधन अत्यंत आवश्यक है। रोगमुक्त बीज, बीजोपचार, संतुलित पोषण, खेत की स्वच्छता, जैविक उपायों तथा आवश्यकता अनुसार अनुशंसित रसायनों के समन्वित उपयोग से रोगों की तीव्रता कम की जा सकती है। यदि किसान प्रारम्भिक अवस्था में ही रोगों की पहचान कर उचित प्रबंधन अपनाते हैं तो उत्पादन एवं गुणवत्ता दोनों में उल्लेखनीय वृद्धि संभव है। समेकित रोग प्रबंधन न केवल उत्पादन बढ़ाता है बल्कि पर्यावरण संरक्षण एवं सुरक्षित कृषि की दिशा में भी महत्वपूर्ण योगदान देता है।



पुष्पेन्द्र यादव, रोहन सेरावत, शुभांशु सिंह
कृषि विस्तार प्रभाग, भाकृअनुप, कृषि अनुसंधान
भवन-1, पूसा नई दिल्ली- 110012

कृषि विज्ञान केंद्र (केवीके): किसानों की आय वृद्धि में भूमिका, उपलब्धियां एवं भविष्य की संभावनाएं

भूमिका- भारत कृषि प्रधान देश है और बड़ी आबादी कृषि एवं संबद्ध गतिविधियों पर निर्भर है। बढ़ती लागत, छोटे जोत, जलवायु परिवर्तन, बाजार अस्थिरता, फसलोत्तर हानि और तकनीकी प्रसार की सीमाएँ किसानों की आय को प्रभावित करती हैं। इसलिए आय वृद्धि के लिए उत्पादन के साथ लागत में कमी, संसाधन दक्षता, विविधीकरण, मूल्य संवर्धन, उद्यमिता और बेहतर बाजार संपर्क आवश्यक हैं। इस दिशा में ICAR के कृषि विज्ञान केंद्र (KVKs) अनुसंधान एवं किसानों के बीच सेतु बनकर वैज्ञानिक तकनीकों के खेत स्तर पर प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं।

कृषि विज्ञान केंद्र क्या है?—कृषि विज्ञान केंद्र एक जिला स्तरीय कृषि प्रौद्योगिकी प्रसार संस्थान है, जिसकी स्थापना भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (ICAR) द्वारा किसानों, ग्रामीण युवाओं, महिला कृषकों तथा कृषि विस्तार अधिकारियों को वैज्ञानिक प्रशिक्षण, तकनीकी परामर्श और नवीन कृषि तकनीकों का प्रदर्शन उपलब्ध कराने के उद्देश्य से की गई है। KVK की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यहाँ केवल सैद्धांतिक जानकारी नहीं दी जाती, बल्कि "सीखो और करके देखो" (Learning by Doing) की अवधारणा पर कार्य किया जाता है। किसी भी तकनीक को बड़े स्तर पर प्रसारित करने से पहले उसे स्थानीय परिस्थितियों में किसानों के खेतों पर परीक्षण (On Farm Testing) तथा प्रदर्शन (Frontline Demonstration) के माध्यम से सत्यापित किया जाता है।

कृषि विज्ञान केंद्रों के प्रमुख उद्देश्य

कृषि विज्ञान केंद्रों के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं— * अनुसंधान संस्थानों द्वारा विकसित तकनीकों को किसानों तक पहुँचाना। * स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार तकनीकों का परीक्षण एवं परिष्करण। * किसानों, महिलाओं एवं ग्रामीण युवाओं का कौशल विकास। * कृषि आधारित उद्यमिता को बढ़ावा देना। * प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण करते हुए टिकाऊ कृषि को प्रोत्साहित करना। * किसानों को वैज्ञानिक निर्णय लेने हेतु समयबद्ध सलाह उपलब्ध कराना।

किसानों की आय बढ़ाने में कृषि विज्ञान केंद्रों की भूमिका

1. ऑन-फार्म परीक्षण (On Farm Testing - OFT)- देश के विभिन्न भागों में मिट्टी, जलवायु, वर्षा तथा कृषि प्रणालियों में काफी भिन्नता होती है। इसलिए किसी भी नई तकनीक को सीधे लागू करने के बजाय KVK पहले किसानों के खेतों पर उसका परीक्षण करता है। इन परीक्षणों से यह पता चलता है कि कौन-सी तकनीक स्थानीय परिस्थितियों में सबसे अधिक लाभकारी है।

2. फ्रंट लाइन प्रदर्शन (Front Line Demonstrations - FLDs)- फ्रंट लाइन प्रदर्शन KVK की सबसे प्रभावी गतिविधियों में से एक है। इसमें उन्नत किस्मों एवं वैज्ञानिक कृषि तकनीकों का प्रदर्शन किसानों के खेतों पर किया जाता है।

FLD के माध्यम से किसान स्वयं देखते हैं कि नई तकनीक अपनाने पर— * उत्पादन बढ़ता है। * उर्वरकों एवं कीटनाशकों का संतुलित उपयोग होता है। * सिंचाई जल की बचत होती है। * लागत घटती है। * शुद्ध लाभ में वृद्धि होती है। इसी कारण FLD को वैज्ञानिक तकनीकों के प्रसार का सबसे सफल माध्यम माना जाता है।

3. किसानों का कौशल विकास—कृषि विज्ञान केंद्र पूरे वर्ष किसानों, महिला कृषकों, ग्रामीण युवाओं तथा किसान उत्पादक संगठनों (FPOs) के लिए उन्नत फसल उत्पादन, बागवानी, पशुपालन, मत्स्य पालन, मधुमक्खी पालन, मशरूम उत्पादन, जैविक एवं प्राकृतिक खेती, खाद्य प्रसंस्करण,



डिजिटल कृषि, ड्रोन तकनीक तथा संरक्षित खेती (Protected Cultivation) जैसे विभिन्न विषयों पर प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करते हैं।

4. कृषि विविधीकरण (Crop Diversification)- एक ही फसल पर निर्भर रहना आज के समय में जोखिमपूर्ण हो गया है। जलवायु परिवर्तन तथा बाजार मूल्य में उतार-चढ़ाव के कारण किसानों को भारी नुकसान उठाना पड़ सकता है। KVK किसानों को दलहन, तिलहन, बागवानी, औषधीय पौधे, मोटे अनाज (श्री अन्न), सब्जियाँ, फूलों की खेती तथा बहुफसली प्रणाली अपनाने के लिए प्रेरित करते हैं। कृषि विविधीकरण से— * जोखिम कम होता है। * वर्षभर आय प्राप्त होती है। * पोषण सुरक्षा बढ़ती है। * बाजार के अधिक अवसर मिलते हैं।

5. एकीकृत कृषि प्रणाली (Integrated Farming System - IFS)- आज केवल फसल उत्पादन से किसानों की आय बढ़ाना पर्याप्त नहीं है। KVK फसल के साथ डेयरी, बकरी पालन, मुर्गी पालन, मत्स्य पालन, मशरूम, वर्मी कम्पोस्ट एवं कृषि वानिकी को जोड़कर एकीकृत कृषि प्रणाली (IFS) को बढ़ावा देते हैं। इसमें एक उद्यम के अवशेष का उपयोग दूसरे में संसाधन के रूप में होता है, जिससे लागत घटती है, संसाधनों का पुनर्वर्तन होता है और वर्षभर आय के अवसर बढ़ते हैं।

6. उच्च मूल्य वाली कृषि (High Value Agriculture)-KVK किसानों को पारंपरिक खेती के साथ-साथ पॉलीहाउस एवं नेट हाउस में खेती, विदेशी सब्जियों, फूलों की खेती, बीज उत्पादन, औषधीय एवं सुगंधित पौधों तथा जैविक उत्पादों जैसी उच्च मूल्य वाली कृषि गतिविधियों को अपनाने के लिए प्रेरित करते हैं।

7. मृदा स्वास्थ्य एवं समन्वित पोषक तत्व प्रबंधन (INM)-मिट्टी की उर्वरता कृषि उत्पादन की आधारशिला है। KVK मृदा परीक्षण के आधार पर उर्वरकों के संतुलित उपयोग की सलाह देते हैं तथा जैव उर्वरक, हरी खाद, वर्मी कम्पोस्ट, नैनो उर्वरक और फसल अवशेष प्रबंधन जैसी तकनीकों को बढ़ावा देते हैं। इन उपायों को अपनाने से उत्पादन लागत में कमी आती है, पोषक तत्वों के उपयोग की दक्षता बढ़ती है तथा दीर्घकाल में मिट्टी की गुणवत्ता और उत्पादकता में सुधार होता है।

8. समेकित कीट एवं रोग प्रबंधन (Integrated Pest Management - IPM)-KVK किसानों को समेकित कीट प्रबंधन (IPM) अपनाने के लिए प्रेरित करते हैं, जिसमें जैविक, यांत्रिक, सांस्कृतिक एवं आवश्यकता-आधारित रासायनिक उपायों का संतुलित उपयोग किया जाता है। फेरोमोन ट्रैप, येलो स्टिकी ट्रैप, जैव-कीटनाशक एवं प्रतिरोधी किस्मों के प्रयोग से कीटनाशक लागत एवं फसल हानि कम होती है तथा पर्यावरण संरक्षण के साथ किसानों की आय बढ़ने में सहायता मिलती है।

9. जलवायु स्मार्ट कृषि (Climate Smart Agriculture)- जलवायु परिवर्तन, अनियमित वर्षा, तापमान वृद्धि, सूखा, बाढ़ एवं नए कीट-रोग कृषि के लिए प्रमुख चुनौतियाँ हैं। KVK जलवायु-अनुकूल किस्मों, संरक्षण कृषि, फसल विविधीकरण, मौसम आधारित सलाह, वर्षा जल संचयन तथा सूक्ष्म सिंचाई को बढ़ावा देते हैं। डिजिटल माध्यमों से

समय पर मौसम एवं कृषि सलाह उपलब्ध कराकर किसानों के जोखिम को कम करने और आय में स्थिरता लाने में सहायता की जाती है।

10. जल संरक्षण एवं सूक्ष्म सिंचाई तकनीक—जल कृषि उत्पादन का सबसे महत्वपूर्ण संसाधन है और देश के अनेक क्षेत्रों में भूजल स्तर तेजी से गिर रहा है। ऐसे में "प्रति बूंद अधिक फसल" की अवधारणा को अपनाना समय की आवश्यकता है। कृषि विज्ञान केंद्र किसानों को ड्रिप एवं स्प्रिंकलर सिंचाई, वर्षा जल संचयन, मल्टिचंग, लेजर लैंड लेवलिंग, फसल जल बजट तथा मृदा नमी संरक्षण जैसी जल प्रबंधन तकनीकों का प्रदर्शन एवं प्रशिक्षण प्रदान करते हैं।

11. कृषि यंत्रीकरण एवं डिजिटल कृषि—आज KVK किसानों को ड्रोन, AI, IoT, स्मार्ट सेंसर, GPS, सटीक कृषि एवं मोबाइल आधारित सलाह जैसी आधुनिक तकनीकों से जोड़ रहे हैं। इनके उपयोग से समय, श्रम एवं उत्पादन लागत में कमी, संसाधन उपयोग दक्षता में वृद्धि तथा उर्वरक एवं कीटनाशकों के संतुलित प्रयोग से फसल उत्पादकता और किसानों की लाभप्रदता बढ़ती है।

12. मूल्य संवर्धन एवं कृषि प्रसंस्करण—कृषि उत्पादों के प्रसंस्करण एवं मूल्य संवर्धन से किसानों को बेहतर बाजार मूल्य और अतिरिक्त आय मिलती है। KVK किसानों, महिला समूहों एवं ग्रामीण युवाओं को जैम, सॉस, अचार, मिलेट उत्पाद तथा मसालों की ग्रेडिंग, पैकेजिंग एवं प्रसंस्करण का प्रशिक्षण देकर उत्पाद की शेल्फ लाइफ, बाजार मूल्य और आय बढ़ाने में सहयोग करते हैं।

13. कृषि उद्यमिता एवं ग्रामीण रोजगार—आज का किसान केवल उत्पादक ही नहीं, बल्कि सफल उद्यमी भी बन सकता है। KVK किसानों एवं ग्रामीण युवाओं को मशरूम, मधुमक्खी पालन, डेयरी, बकरी पालन, पौधशाला, बीज उत्पादन, खाद्य प्रसंस्करण एवं कस्टम हायरिंग जैसे कृषि एवं संबद्ध उद्यमों के लिए प्रशिक्षण और तकनीकी मार्गदर्शन प्रदान करते हैं। इससे स्वरोजगार एवं अतिरिक्त आय के अवसर बढ़ते हैं और कृषि को लाभकारी एवं टिकाऊ व्यवसाय के रूप में विकसित करने में सहायता मिलती है।

14. किसान उत्पादक संगठन (FPO) की सुदृढ़ता—छोटे एवं सीमांत किसानों के लिए अकेले बाजार में प्रतिस्पर्धा करना कठिन होता है। इस समस्या के समाधान में किसान उत्पादक संगठन (FPO) महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। कृषि विज्ञान केंद्र FPOs को गुणवत्तापूर्ण उत्पादन, व्यवसाय योजना तैयार करने, बीज एवं उर्वरकों की सामूहिक खरीद, मूल्य श्रृंखला विकास, प्रसंस्करण एवं ब्रांडिंग तथा सामूहिक विपणन जैसे क्षेत्रों में तकनीकी सहयोग प्रदान करते हैं। FPO के माध्यम से किसान सामूहिक रूप से इनपुट की खरीद और कृषि उत्पादों की बिक्री कर बेहतर मोलभाव कर सकते हैं, जिससे उत्पादन लागत में कमी, बाजार तक बेहतर पहुँच, बेहतर मूल्य प्राप्ति तथा बिचौलियों पर निर्भरता में कमी आती है।

15. महिला एवं युवा सशक्तिकरण—ग्रामीण विकास में महिलाओं और युवाओं की भागीदारी अत्यंत महत्वपूर्ण है। कृषि विज्ञान केंद्र महिलाओं के लिए पोषण वाटिका (NARI-Nutri-sensitive Agricultural Resources and Innovation), मशरूम उत्पादन, मधुमक्खी पालन, खाद्य प्रसंस्करण, सिलाई एवं कृषि आधारित लघु उद्योगों का प्रशिक्षण आयोजित करते हैं। इसी प्रकार ग्रामीण युवाओं को आधुनिक कृषि, ड्रोन संचालन, डिजिटल कृषि, कृषि स्टार्टअप तथा एग्री-बिजनेस से जोड़कर स्वरोजगार के अवसर उपलब्ध कराए जा रहे हैं।



डॉ. मो. इरफान अहमद अंसारी सह-प्राध्यापक सह वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं प्रधान अन्वेषक, अखिल भारतीय समन्वित अनुसंधान परियोजना (फसलोपरांत अभियंत्रण एवं प्रौद्योगिकी) कृषि अभियंत्रण विभाग, बिरसा कृषि विश्वविद्यालय, राँची-834006, (झारखण्ड)

श्रुति पाण्डेय, बबली कुमारी

सूरज प्रसाद कुशवाहा बी.टेक. (कृषि

अभियांत्रिकी), अष्टम सेमेस्टर, कृषि अभियांत्रिकी महाविद्यालय बिरसा कृषि विश्वविद्यालय, राँची-834006, (झारखण्ड)

प्रस्तावना- भारत विश्व के प्रमुख तिलहन उत्पादक देशों में से एक है। देश के विभिन्न राज्यों में सरसों की व्यापक खेती की जाती है। ये फसलें न केवल खाद्य तेलों की उपलब्धता सुनिश्चित करती हैं, बल्कि किसानों की आय, खाद्य एवं पोषण सुरक्षा तथा कृषि-आधारित उद्योगों के विकास में भी महत्वपूर्ण योगदान देती हैं। खाद्य तेल मानव स्वास्थ्य के लिए अत्यंत आवश्यक है, क्योंकि इनमें आवश्यक वसीय अम्ल, वसा में घुलनशील विटामिन तथा प्राकृतिक जैव सक्रिय यौगिक पाए जाते हैं, जो शरीर की वृद्धि, विकास, ऊर्जा आपूर्ति तथा रोग प्रतिरोधक क्षमता बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यद्यपि भारत में तिलहनों का उत्पादन निरंतर बढ़ रहा है, फिर भी खाद्य तेलों की बढ़ती मांग के कारण देश आज भी अपनी आवश्यकता का एक बड़ा भाग आयात करता है। ऐसी स्थिति में स्थानीय स्तर पर तिलहनों के वैज्ञानिक प्रसंस्करण एवं मूल्य संवर्धन को बढ़ावा देना आवश्यक है। झारखंड में प्रतिवर्ष पर्याप्त मात्रा में तिलहनों का उत्पादन होने के बावजूद अधिकांश किसान अपनी उपज को कच्चे बीज के रूप में ही बेच देते हैं। स्थानीय स्तर पर वैज्ञानिक तेल निष्कर्षण एवं प्रसंस्करण सुविधाओं के अभाव में उन्हें मूल्य संवर्धन का लाभ नहीं मिल पाता है। यदि उत्पादन क्षेत्रों के निकट ही मिनी ऑयल एक्सपेलर आधारित प्रसंस्करण इकाइयाँ स्थापित की जाएँ, तो किसान स्थानीय स्तर पर तिलहनों का प्रसंस्करण कर शुद्ध खाद्य तेल तैयार कर अधिक लाभ अर्जित कर सकते हैं। तिलहनों से तेल निकालने की प्रमुख यांत्रिक विधियाँ हॉट प्रेसिंग तथा कोल्ड-प्रेसिंग हैं। हॉट प्रेसिंग में उच्च तापमान के कारण तेल की प्राप्ति अधिक होती है, किन्तु इससे तेल के प्राकृतिक स्वाद, सुगंध, विटामिन एवं कुछ जैव सक्रिय यौगिक प्रभावित हो सकते हैं। इसके विपरीत, कोल्ड-प्रेसिंग तकनीक में बिना अधिक ताप एवं रासायनिक विलायकों के उपयोग के तेल निकाला जाता है, जिससे आवश्यक वसीय अम्ल, प्राकृतिक एंटीऑक्सीडेंट, विटामिन तथा अन्य पोषक तत्व सुरक्षित रहते हैं। साथ ही, प्राप्त तेल खली भी रसायन-मुक्त एवं उच्च गुणवत्ता वाली होती है, जिसका उपयोग पशु आहार, जैविक उर्वरक तथा वर्मी कम्पोस्ट निर्माण में किया जा सकता है। यद्यपि इस विधि में तेल की प्राप्ति अपेक्षाकृत कुछ कम होती है, फिर भी उच्च गुणवत्ता, स्वास्थ्यवर्धक गुणों तथा प्राकृतिक एवं रसायन-मुक्त तेलों की बढ़ती उपभोक्ता मांग के कारण इसका महत्व निरंतर बढ़ रहा है। मिनी ऑयल एक्सपेलर ऐसी ही एक सरल, किफायती एवं प्रभावी यंत्र है, जिसके माध्यम से किसान, किसान उत्पादक संगठन, स्वयं सहायता समूह, महिला उद्यमी, कृषि स्रोतक, स्टार्टअप तथा ग्रामीण युवा स्थानीय स्तर पर तेल निष्कर्षण कर मूल्य संवर्धन का लाभ प्राप्त कर सकते हैं। इस यंत्र द्वारा तेल के साथ-साथ प्राप्त तेल खली भी एक मूल्यवान उप-उत्पाद है, जिसका उपयोग उच्च प्रोटीनयुक्त पशु आहार, जैविक उर्वरक तथा वर्मी कम्पोस्ट निर्माण में किया जाता है। इस प्रकार एक ही कच्चे माल से अनेक मूल्यवर्धित उत्पाद प्राप्त होते हैं, जिससे किसानों की आय में वृद्धि होती है।

मिनी ऑयल एक्सपेलर- मिनी ऑयल एक्सपेलर एक यांत्रिक तेल निष्कर्षण मशीन है, जिसका उपयोग सरसों के बीजों से तेल निकालने के लिए किया जाता है। वैज्ञानिक तेल निष्कर्षण प्रक्रिया में बीजों की सफाई, ग्रेडिंग, शुष्कीकरण जैसे पूर्व-प्रसंस्करण चरण शामिल होते हैं, जिससे तेल निष्कर्षण दक्षता एवं उत्पाद की गुणवत्ता में सुधार होता है। स्वच्छ एवं सूखे बीजों को फीड हॉपर के माध्यम से स्क्रू एक्सपेलर में डाला जाता है, जहाँ स्क्रू शाफ्ट एवं बैरल द्वारा उत्पन्न उच्च दाब के कारण बीजों से तेल

मिनी ऑयल एक्सपेलर: सरसों के बीजों का प्रसंस्करण, मूल्य संवर्धन एवं ग्रामीण उद्यमिता का प्रभावी यंत्र



निकलकर तेल निकासी चैनल से संग्रह टैंक में एकत्र हो जाता है, जबकि शेष ठोस पदार्थ तेल खली के रूप में बाहर निकलता है। यंत्र से प्राप्त तेल को फिल्टर प्रेस द्वारा छानकर अधिक स्वच्छ एवं आकर्षक बनाया जा सकता है। मिनी ऑयल एक्सपेलर में सामान्यतः फीड हॉपर, स्क्रू एक्सपेलर, बैरल, तेल निकासी चैनल, खली निकास व्यवस्था, विद्युत मोटर एवं बेल्ट-पुली आधारित पावर ट्रांसमिशन प्रणाली प्रमुख भाग होते हैं। इस यंत्र को लगभग 7 हॉर्सपावर की विद्युत मोटर एवं बेल्ट-पुली आधारित शक्ति संचरण प्रणाली द्वारा संचालित किया जाता है। इसकी क्षमता लगभग 30-40 किलोग्राम बीज प्रति घंटा है, जो सरसों सहित विभिन्न तिलहनी बीजों के प्रसंस्करण के लिए उपयुक्त है। इनकी मजबूत संरचना, कम रखरखाव आवश्यकता तथा ग्रामीण परिस्थितियों के अनुकूल डिजाइन इसे लघु स्तर के प्रसंस्करण उद्यमों के लिए उपयुक्त बनाते हैं। मिनी ऑयल एक्सपेलर द्वारा सरसों के बीजों से निकाले गए तेल का चित्र नीचे दर्शाया गया है।

पैकेजिंग, लेबलिंग, ब्रांडिंग, विपणन तथा आवश्यक पंजीकरण: मिनी ऑयल एक्सपेलर आधारित तेल प्रसंस्करण उद्यम की सफलता केवल गुणवत्तापूर्ण तेल उत्पादन पर ही निर्भर नहीं करती, बल्कि वैज्ञानिक पैकेजिंग, लेबलिंग, प्रभावी ब्रांडिंग, सुदृढ़ विपणन तथा आवश्यक वैधानिक पंजीकरण भी समान रूप से महत्वपूर्ण हैं। उपयुक्त पैकेजिंग खाद्य तेल को प्रकाश, ऑक्सीजन, नमी एवं बाहरी संदूषण से सुरक्षित रखकर ऑक्सीकरण की प्रक्रिया को धीमा करती है तथा उसकी गुणवत्ता, ताजगी एवं शेल्फ लाइफ बनाए रखती है। खाद्य तेलों की पैकेजिंग के लिए सामान्यतः पॉलीएथिलीन टेरेफ्थैलेट बोतलें, उच्च घनत्व पॉलीएथिलीन बोतलें एवं कैन, बहुपरत लैमिनेटेड पाउच, टिन कंटेनर तथा काँच की बोतलों का उपयोग किया जाता है, जबकि बड़े पैमाने पर भंडारण एवं परिवहन के लिए स्टेनलेस स्टील टैंक उपयुक्त माने जाते हैं। पैकेजिंग सामग्री खाद्य-ग्रेड, मजबूत, रिसाव-रोधी तथा FSSAI एवं BIS मानकों के अनुरूप होनी चाहिए। प्रत्येक पैकेज पर उत्पाद का नाम, शुद्ध मात्रा, पोषण संबंधी जानकारी, निर्माण तिथि, उपयोग अवधि, बैच संख्या, अधिकतम खुदरा मूल्य, निर्माता का विवरण तथा FSSAI लाइसेंस संख्या सहित आवश्यक लेबलिंग स्पष्ट रूप से होना चाहिए। इससे उत्पाद की विश्वसनीयता बढ़ती है तथा उपभोक्ताओं का विश्वास सुदृढ़ होता है। स्थानीय पहचान पर आधारित ब्रांड विकसित कर किसान उत्पादक संगठन, स्वयं सहायता समूह, महिला उद्यमी एवं ग्रामीण युवा अपने कोल्ड-प्रेस खाद्य तेलों का बेहतर मूल्य प्राप्त कर सकते हैं। वर्तमान में शुद्ध, रसायन-मुक्त एवं प्राकृतिक खाद्य तेलों की बढ़ती मांग के कारण स्थानीय ब्रांडों के लिए व्यापक बाजार उपलब्ध है। किसान बाजार, सहकारी संस्थाएँ, किराना एवं खुदरा दुकानें, सुपरमार्केट, ई-कॉमर्स प्लेटफॉर्म तथा सोशल मीडिया आधारित डिजिटल विपणन स्थानीय, क्षेत्रीय एवं राष्ट्रीय बाजारों तक पहुँच बनाने के प्रभावी माध्यम हैं। उद्यम के सुचारु संचालन हेतु उद्यम (MSME) पंजीकरण, FSSAI लाइसेंस, आवश्यकतानुसार GST पंजीकरण, स्थानीय व्यापार लाइसेंस तथा ब्रांड नाम से उत्पाद के विपणन के लिए ट्रेडमार्क पंजीकरण कराना लाभदायक होता है।

सफल संचालन हेतु आवश्यक सावधानियाँ- मिनी ऑयल एक्सपेलर आधारित तेल प्रसंस्करण इकाई के सफल एवं लाभदायक संचालन के लिए सरसों के बीजों की गुणवत्ता, मशीन का उचित रखरखाव, गुणवत्ता नियंत्रण तथा प्रभावी विपणन पर विशेष ध्यान देना आवश्यक है। वर्षभर पर्याप्त मात्रा में उच्च गुणवत्ता वाले तिलहनी बीजों की उपलब्धता सुनिश्चित की जानी चाहिए तथा तेल निष्कर्षण से पूर्व बीजों की वैज्ञानिक सफाई, ग्रेडिंग, उपयुक्त नमी नियंत्रण करना चाहिए, जिससे तेल

की गुणवत्ता एवं निष्कर्षण दक्षता में वृद्धि होती है। मशीन के कुशल संचालन के लिए प्रशिक्षित ऑपरेटर, नियमित एवं निर्बाध विद्युत आपूर्ति तथा स्क्रू, बैरल, बेयरिंग, बेल्ट एवं अन्य चलित भागों का समय-समय पर निरीक्षण, स्नेहन एवं रखरखाव आवश्यक है, जिससे मशीन की कार्यक्षमता बनी रहती है और अनावश्यक खराबी एवं उत्पादन हानि से बचा जा सकता है। इन सभी सावधानियों का पालन कर मिनी ऑयल एक्सपेलर आधारित तेल प्रसंस्करण इकाई को एक लाभकारी, टिकाऊ एवं सफल ग्रामीण कृषि-आधारित उद्यम के रूप में विकसित किया जा सकता है।

मिनी ऑयल एक्सपेलर से ग्रामीण उद्यमिता विकास: मिनी ऑयल एक्सपेलर केवल सरसों के बीजों से तेल निकालने का एक यंत्र नहीं है, बल्कि यह मूल्य संवर्धन, ग्रामीण उद्यमिता, रोजगार सृजन तथा किसानों की आय वृद्धि का एक प्रभावी माध्यम है। कम पूंजी निवेश, सरल संचालन, कम रखरखाव तथा स्थानीय स्तर पर सरसों के बीजों की उपलब्धता के कारण यह कृषि-आधारित सूक्ष्म एवं लघु उद्योग के रूप में अत्यंत व्यवहारिक एवं लाभदायक तकनीक है। यदि किसान सरसों को कच्चे बीज के रूप में बेचने के बजाय उनका स्थानीय स्तर पर प्रसंस्करण कर शुद्ध खाद्य तेल एवं तेल खली के रूप में विपणन करें, तो उन्हें अधिक मूल्य प्राप्त होने के साथ-साथ मूल्य संवर्धन का प्रत्यक्ष लाभ भी मिलता है। स्थानीय स्तर पर उत्पादित कोल्ड-प्रेस तेलों की बढ़ती मांग को देखते हुए उद्यमी आकर्षक पैकेजिंग, ब्रांडिंग एवं प्रत्यक्ष विपणन के माध्यम से प्रीमियम मूल्य प्राप्त कर सकते हैं। मिनी ऑयल एक्सपेलर आधारित इकाइयाँ किसान उत्पादक संगठनों, स्वयं सहायता समूहों (SHG), महिला उद्यमियों, कृषि स्रोतकों, स्टार्टअप तथा ग्रामीण युवाओं के लिए स्वरोजगार एवं सफल कृषि-आधारित उद्यम स्थापित करने का उत्कृष्ट अवसर प्रदान करती हैं। विशेष रूप से झारखंड जैसे राज्यों में ऐसी इकाइयाँ किसानों एवं आदिवासी समुदायों हेतु आय के नए स्रोत विकसित कर सकती हैं। यदि इन उद्यमों को तकनीकी प्रशिक्षण, वित्तीय सहायता, गुणवत्तापूर्ण पैकेजिंग, ब्रांडिंग तथा प्रभावी बाजार संपर्क से जोड़ा जाए, तो स्थानीय ब्रांडों का विकास होगा, महिलाओं की आर्थिक भागीदारी बढ़ेगी, ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के नए अवसर सृजित होंगे तथा कृषि-आधारित उद्योगों को प्रोत्साहन मिलेगा। इस प्रकार, कम निवेश, स्थानीय स्तर पर मूल्य संवर्धन, बेहतर उत्पाद गुणवत्ता, बढ़ती उपभोक्ता मांग तथा व्यापक उद्यमिता की संभावनाओं के कारण मिनी ऑयल एक्सपेलर आधारित तेल प्रसंस्करण तकनीक किसानों एवं ग्रामीण उद्यमियों के लिए एक टिकाऊ, लाभकारी एवं भविष्य उन्मुख कृषि-आधारित व्यवसाय मॉडल के रूप में उभर सकती है।

निष्कर्ष: मिनी ऑयल एक्सपेलर सरसों के बीजों के वैज्ञानिक प्रसंस्करण, मूल्य संवर्धन एवं गुणवत्तापूर्ण खाद्य तेल उत्पादन के लिए एक सरल, कम लागत वाली एवं प्रभावी यंत्र है। इसके माध्यम से के बीजों का स्थानीय स्तर पर प्रसंस्करण कर शुद्ध एवं कोल्ड-प्रेस तेल के साथ-साथ मूल्यवान तेल खली का उत्पादन किया जा सकता है, जिससे किसानों एवं ग्रामीण उद्यमियों की आय में वृद्धि हो सकती है। किसान उत्पादक संगठन, स्वयं सहायता समूह, महिला उद्यमियों, कृषि स्रोतकों एवं ग्रामीण युवाओं हेतु यह तकनीक कम निवेश में स्वरोजगार एवं कृषि-आधारित उद्यम स्थापित करने का उत्कृष्ट अवसर प्रदान कर सकती है। झारखंड जैसे राज्यों में मिनी ऑयल एक्सपेलर आधारित इकाइयाँ किसानों की आय वृद्धि, महिला सशक्तिकरण, ग्रामीण रोजगार सृजन तथा आत्मनिर्भर ग्रामीण अर्थव्यवस्था के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं।



डॉ. कृशानु वरिष्ठ शोध अध्यापक, आईसीएआर-केंद्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान केंद्र, करनाल (132001), हरियाणा

श्वेता यादव शोध छात्रा, आईसीएआर-आईसीएआर-राष्ट्रीय डेयरी अनुसंधान संस्थान, करनाल (132001), हरियाणा

डॉ. शैलेन्द्र प्रताप सिंह सहायक प्राध्यापक
IFTM यूनिवर्सिटी मुरादाबाद, उत्तर प्रदेश

डॉ. स्वर्णिमा तिवारी विभाग वनस्पति विज्ञान,
स्वामी विवेकानन्द सुभारती विश्वविद्यालय मेरठ

डॉ. शची तिवारी विभाग वनस्पति विज्ञान, स्वामी
विवेकानन्द सुभारती विश्वविद्यालय मेरठ 250005

पराली जलाने के नुकसान

पराली जलाने से पर्यावरण एवं मृदा स्वास्थ्य के साथ-साथ हमारे स्वास्थ्य पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है। इससे उत्पन्न वायु प्रदूषण से आंखों में जलन से लेकर श्वसन एवं हृदय संबंधी रोगों के प्रभाव में बढ़ोतरी देखी गई है। दिल्ली में उत्पन्न धुंध की समस्या से वहां के लोगों की औसत आयु में 6 वर्ष की कमी दर्ज की गई है। इससे उत्पन्न वायु प्रदूषण का प्रभाव हमारे अर्थव्यवस्था पर भी पड़ता है। वायु प्रदूषण के कारण दिल्ली में पर्यटकों से आमद में 25-30% की कमी आई है।

1 टन फसल अवशेष जलाने से उत्सर्जित होता है-

Particulate matter	3 kg
कार्बन डाइऑक्साइड	1460 kg
कार्बन मोनोऑक्साइड	60 kg
सल्फर डाइऑक्साइड	2 kg
नाइट्रस ऑक्साइड	3.8 kg
मीथेन	2.7 kg
राख	199 kg

1. फसल अवशेष जलाने से हानिकारक गैसों का उत्सर्जन होता है। जो हमारे पर्यावरण एवं स्वास्थ्य के लिए नुसानदायक होता है। दिल्ली एनसीआर में oct-nov माह में धुंध की समस्या पराली जलाने से संबंधित है।
2. फसल अवशेष जलाने से एरोसॉल के कण निकलते हैं, जो हवा को प्रदूषित करता है।
3. मिट्टी के कार्बनिक पदार्थों को नुकसान पहुंचाता है। मृदा की उर्वरता समाप्त हो जाती है।
4. फसल अवशेषों को जलाने से उनके जड़, तना पत्तियों में संचित लाभदायक पोषक तत्व नष्ट हो जाते हैं।
5. लाभदायक मित्र कीट जल कर मर जाते हैं जिसके कारण वातावरण में विपरीत प्रभाव पड़ता है।
6. पशुओं के चारे की व्यवस्था पर विपरीत प्रभाव पड़ता है
7. फसल अवशेषों को जलाने से मृदा ताप में बढ़ोतरी होती है, जिसके कारण वातावरण पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। इससे मृदा के तापमान में 42° तक बढ़ोतरी होती है, जो मृदा में उपस्थित सूक्ष्म जीवों को 2.5 सेंटीमीटर की गहराई तक विस्थापित कर देता है या मार देता है।
8. फसल अवशेष जलाने पर अगल बगल के खेतों में आग लगने की संभावना एवं खड़ी फसल अथवा आबादी में अग्नि कांड होने की संभावना बनी रहती है।

फसल अवशेष प्रबंधन: पर्यावरण संरक्षण, उपयोग एवं सतत कृषि की दिशा में एक प्रभावी पहल



फसल अवशेषों के उपयोग

फसल अवशेष को जलाने के बजाय किसान नई विकल्प अपना सकते हैं। इसके अनेक उपयोग हैं, फसल अवशेष किसानों के लिए कई प्रकार से लाभकारी हैं-

1 टन फसल अवशेष खेत में मिलाने से प्राप्त पोषक तत्व

नाइट्रोजन	10-15 kg
पोटाश	30-40 kg
सल्फर	5-7 kg
ऑर्गेनिक कार्बन	600-800 kg

1. चॉपर द्वारा फसल अवशेष को छोटे-छोटे टुकड़ों में काटने के बाद बायो वेस्ट डी कंपोजर का छिड़काव करके तथा डिस्क प्लाऊ से गहरी जुताई करके बेहतरीन खाद में बदल सकते हैं।
2. मिट्टी में मिलाने से मिट्टी की उर्वरता बढ़ जाती है। पराली में पाए जाने वाले नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटेशियम, सल्फर मिट्टी में कार्बनिक पदार्थों की मात्रा बढ़ाते हैं जिससे जिससे खेत में उर्वरकों की आवश्यकता कम पड़ती है। अतः उत्पादन लागत में कमी आती है।
3. फसल अवशेष को खेत में ही छोड़ देने से मिट्टी में नमी बनी रहती है, जिससे भूमिगत जल स्तर में सुधार होता है।
4. इसका उपयोग पशुओं के चारे के रूप में, बिछौने के रूप में एवं छप्पर बनाने में किया जाता है।
5. इसका उपयोग कंपोस्ट खाद बनाने में किया जाता है।
6. पुआल का उपयोग सजावटी सामान बनाने में किया जाता है, जो एक अतिरिक्त आय के स्रोत के रूप में सहायक होता है।
7. इससे तैयार भूसे का उपयोग मशरूम उत्पादन में किया जाता है।
8. पदार्थों की पैकेजिंग में फसल अवशेष का उपयोग किया जाता है। इसका उपयोग कागज उद्योग, बायोमास आधारित पावर प्लांट जैव एथेनॉल उत्पादन इत्यादि में किया जाता है।

पराली प्रबंधन का रोहतास मॉडल

बिहार कृषि विश्वविद्यालय पराली प्रबंधन का यह मॉडल बिहार के रोहतास जिले में अपनाई जा रही है। इसके तहत बेलर मशीन का प्रयोग करके पराली का प्रबंधन किया जा रहा है।

* बेलर खेतों में पड़े धान के बचे अवशेष यानी पराली का गड्ढा तैयार करती है। इसका वजन 25 किलो से लेकर 40 किलो तक होता है। एक बीघा धान के खेत से लगभग 10

से 12 क्विंटल पराली निकलती है।

- * 1 एकड़ क्षेत्र में लगभग 1800 रुपए राउंड बेलर मशीन चलाने का खर्च आता है एवं 13 से 16 क्विंटल पुआल इकट्ठा होता है, इसे रु. 2 प्रति किलो की दर से बेचने पर रु. 2600 से रु. 3200 तक लाभ कमाया जा सकता है।
- * इकट्ठा किए गए पराली के बंडलों को पशु चारे के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। बरसात के महीने तक अगर इसे सुरक्षित रखा जाए तो 5000 से 6000 रु. प्रति क्विंटल पशु चारा बेचा जा सकता है। इसे किसानों की आमदनी भी बढ़ेगी और पराली जलाए जाने वाले प्रदूषण से भी निजात मिलेगी।

आधुनिक मशीनों से फसल अवशेष प्रबंधन

आधुनिक मशीनें फसल की कटाई एवं अवशेषों को इकट्ठा करने का काम आसान कर देती हैं।

- * **हैप्पी सीडर मशीन**-खेत में फसलों के अवशेष होने के बावजूद इससे फसलों की बुवाई सीधी लाइन में की जा सकती है।
- * **सुपर एक्स्ट्रा मैनेजमेंट सिस्टम कंबाइन हार्वेस्टर** के साथ जोड़कर पराली को बारीक काटकर मिट्टी पर फैलाया जाता है।
- * **बेलर**- यह फसल अवशेषों का गड्ढा बनाने का कार्य करती है।
- * **चॉपर, मल्टचर**-फसल अवशेषों को छोटे-छोटे टुकड़ों में काटने का काम करती है।

भारत सरकार की विभिन्न योजनाओं के तहत किसानों को फसल अवशेष प्रबंधन की मशीनें किफायती दाम पर उपलब्ध करवा रही है।

विभिन्न योजनाओं के तहत सरकार इन मशीनों पर 50-80% तक अनुदान दे रही है। किसान इन मशीनों से संबंधित जानकारी हेतु टोल फ्री नंबर 1800 180 2117 अथवा जिला कृषि उप सहायक या कृषि अभियंता से संपर्क कर सकते हैं।

पूसा डी कंपोजर

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान (IARI) द्वारा एक ऐसा समाधान खोजा गया है, जिससे बिना खर्च के पराली को खाद के रूप में परिवर्तित किया जा सकता है। पूसा डी कंपोजर एक बायो एंजाइम है, जिसका छिड़काव करने पर फसल अवशेष 20 से 25 दिनों में खाद में बदल जाते हैं, जिससे मिट्टी की गुणवत्ता में सुधार होता है।

पराली जलाए जाने पर जुमाने का प्रावधान

यदि कोई किसान अपने खेत में पराली जलाता है, तो राष्ट्रीय हरित प्राधिकरण (NGT) के अनुसार उसे 6 साल की सजा या रु. 15000 तक का जुर्माना देना पड़ सकता है।

- * 2 एकड़ में फसल अवशेष जलाने पर -2500 रु. जुर्माना
- * 2-5 एकड़ में फसल अवशेष जलाने पर -5000 रु. जुर्माना
- * 5 एकड़ से अधिक में फसल अवशेष जलाने पर -15000 रु. जुर्माना



✍ **दिनेश, शिखा यशवीर** आणविक जीव विज्ञान और जैव प्रौद्योगिकी विभाग, बायोटेक्नोलॉजी कॉलेज, चौधरी चरण सिंह हरियाणा एग्रीकल्चरल यूनिवर्सिटी, हिसार-हरियाणा

✍ **राकेश कुमार** पादप रोग विज्ञान विभाग, एग्रीकल्चर कॉलेज, चौधरी चरण सिंह हरियाणा एग्रीकल्चरल यूनिवर्सिटी, हिसार-125004, हरियाणा

✍ **मनोहर लाल** वनस्पति विज्ञान और पादप कार्यिकी विभाग, बेसिक साइंसेज और ब्यूमैनिटीज कॉलेज, चौधरी चरण सिंह हरियाणा एग्रीकल्चरल यूनिवर्सिटी, हिसार-125004, हरियाणा

✍ **कृष्ण पाल सिंह** जीवभौतिकी विभाग, महात्मा ज्योतिबा फुले रोहिलखंड यूनिवर्सिटी, बरेली-243006, उत्तर प्रदेश

पादप रोगजनक: वह जीव जो किसी पौधे पर रोग उत्पन्न कर सकता है, पादप रोगजनक कहलाता है। पौधों में रोगजनकों के कारण होने वाले रोगों के अध्ययन को पादप रोगविज्ञान कहा जाता है। खाद्य और कृषि संगठन (एफएओ) का अनुमान है कि रोग, कीड़े और खरपतवार 925 फसल की विफलता का कारण बनते हैं। उदाहरण के लिए, इटली में हर साल राइस ब्लास्ट रोग से चावल नष्ट हो जाता है। उदाहरण के लिए, फाइटोफ्थेरा इन्फेस्टेन्स, जो आलू में लेट ब्लाइट का कारण बनता है, आयरलैंड में प्रसिद्ध अकाल का कारण बना। इसकी शुरुआत 1845 के दौरान यूरोप में अलग-अलग स्थानों पर हुई, जिसका मुख्य केंद्र बेल्जियम था। दुनिया भर में कम कृषि उत्पादकता का कारण पौधों के रोगजनक हैं, जिनमें मुख्य कारण पुराने, नए और विकसित हो रहे पौधों के संक्रामक रोग हैं।

पौधों के रोगजनकों के हमले का पूर्वानुमान लगाना पौधों के स्वास्थ्य की निगरानी करने का एक महत्वपूर्ण तरीका है। इसके माध्यम से ग्रीनहाउस और क्षेत्र की स्थितियों में रोग संक्रमण का प्रबंधन किया जा सकता है और बीमारी फैलने का खतरा कम हो जाता है और नए पौधों के रोगजनकों, विशेष रूप से अंतरराष्ट्रीय सीमाओं पर संगरोध रोगजनकों के विकास को रोका जा सकता है। कई क्षेत्रों में रोगजनकों की पहचान महत्वपूर्ण है। दवा की खोज, खाद्य सुरक्षा, पौधों की ताकत, जैविक लड़ाई और नैदानिक अनुसंधान, यह अनुमान लगाया गया कि रोग संक्रमण के कारण लगभग 20-30% खेत की फसलें वार्षिक रूप से क्षतिग्रस्त हो जाती हैं। किसानों को यह बताया गया है कि सोयाबीन रस्ट, जो एक फंगल जनित रोग है, के संक्रमण से 20% तक छुटकारा दिलाकर कुछ मिलियन डॉलर का मुनाफा कमाते हैं। आजकल, पौधों के रोगजनकों, विशेष रूप से फंगल रोगजनकों की उपस्थिति का पता लगाने के लिए दृश्य मूल्यांकन सबसे व्यापक रूप से उपयोग की जाने वाली विधि है। रोग का पता लगाने के पारंपरिक तरीकों में कई नुकसान हैं, जिसके कारण वैकल्पिक तरीकों की खोज करनी पड़ती है। पादप रोग की समस्याओं के निदान के लिए कई रणनीतियों का व्यापक रूप से उपयोग किया गया है, जिनमें डीएनए-आधारित पद्धतियाँ और इम्यूनोपरख, संक्रमित पादप सामग्री से निकाले गए रोगजनक प्रोटीन और न्यूक्लिक एसिड का पता लगाने के लिए, प्रत्यक्ष प्रयोगशाला आधारित तकनीकों के अलावा पौधों के लक्षणों का दृश्य निरीक्षण भी शामिल है। पारंपरिक तरीकों में से एक कल्चरिंग और प्लेटिंग तकनीक है जिसका

सरसों में स्केलेरोटिनिया स्टेम रॉट का आणविक विधियों द्वारा शीघ्र निदान एवं प्रभावी रोकथाम

उपयोग जीवाणु संक्रमण का पता लगाने के लिए किया जाता है। दूसरी ओर, श्रमसाध्य प्रक्रिया के कारण अतिरिक्त विधियाँ आवश्यक हैं। कुछ परिस्थितियों में, कैम्प्लोबैक्टर बैक्टीरिया का पता लगाने के दौरान, नकारात्मक परिणाम प्राप्त करने के लिए 4-9 दिनों की आवश्यकता होती है और सकारात्मक परिणाम प्राप्त करने के लिए 14-16 दिन लगते हैं। प्रक्रिया को पूरा करने के लिए संवर्धन विधियों को हफ्तों या महीनों का समय मिलता है और जब तत्काल परिणाम की आवश्यकता होती है तो यह लागू नहीं होता है। यह चयनात्मक मीडिया पर निर्भर करता है जिसमें कुछ अवरोधक या विशिष्ट पदार्थ होते हैं जो विकासशील कालोनियों को खराब करते हैं और विशिष्ट रंग देते हैं (साल्मोनेला निदान से द्रुमचूष एंजाइम लिंकड इम्यूनोसॉरबेंट परख, कई प्रतिरक्षाविज्ञानी प्रतिक्रियाओं में संक्रामक रोगों से एंटीबॉडी सांद्रता का पता लगाने के लिए स्वर्ण मानक है। इन विधियों में एंजाइमों के साथ लेबल किए गए एंटीबॉडी शामिल होते हैं, जैसे हॉर्सेरैडिश पेरोक्सीडेज (एचआरपी) और क्षारीय फॉस्फेट (एपी)। पारंपरिक एलिसा कंयूटरीकरण और एक साथ कई परखों की कार्यप्रणाली को बढ़ाकर उन्नत हो गई है, कई बाधाएँ अब भी हैं जैसे कि विश्लेषण के लिए प्रसार समय बढ़ाने के लिए लंबी कुल परख अवधि की आवश्यकता, अधिक मात्रा में नमूने और अभिकर्मकों की मात्रा की आवश्यकता और ये लगभग प्रयोगशाला पर आधारित हैं।

फ्लो साइटोमेट्री द्वारा पौधों के अर्क की सीधी जांच से कल्चर प्लेटों पर कॉलोनी के विकास की प्रतीक्षा किए बिना नकारात्मक लॉट को जल्दी जारी करने की अनुमति मिल जाएगी। मृत और जीवित कोशिकाओं को अलग-अलग रंगों में रंगकर कोशिकाओं की व्यवहार्यता का आकलन करने के लिए डब्ल्यू अखंडता के आधार पर फ्लोरोसेंट मार्करों का चयन किया जा सकता है। थर्मल इमेजिंग पौधों के तनाव को दर्शाने, पता लगाने और मापने का एक मजबूत तरीका है जो अजैविक और जैविक कारकों द्वारा पानी की स्थिति और उसके पेट के व्यवहार को संशोधित करता है। समय के तुलनात्मक रूप से छोटे अंतराल में किसी भी पदार्थ के तापमान को सत्यापित करने के लिए, यह बहुत फायदेमंद है क्योंकि यह गैर-स्थायी, गैर-संपर्क और गैर-विनाशकारी संसेर है। थर्मोग्राफिक कैमरे 9-14µm की श्रृंखला में अवरक्त किरणों का निदान करते हैं और नकली रंगीन आंकड़ों में तापमान के तथ्य दिखाते हैं। इस तकनीक का उपयोग करते हुए, 470 एनएम पर गेहूँ की पत्तियों में पत्ती के जंग और पाउडर फफूंदी संक्रमण का सटीक पता लगाने के लिए क्लोरोफिल प्रतिदीप्ति के अस्थायी और स्थानिक विविधताओं का विश्लेषण किया गया। रोगजनक संक्रमण और पोषक तत्वों की कमी का शीघ्र पता लगाने के लिए क्लोरोफिल प्रतिदीप्ति इमेजिंग तकनीक थर्मल इमेजिंग की तुलना में अधिक संवेदनशील प्रतीत होती है। फंगल रोगजनकों से संक्रमित होने पर, पौधों में विशिष्ट पदार्थ जमा हो सकते हैं, जैसे कि सैलिसिलिक एसिड और फेनिलप्रोपेनॉइड यौगिक (जैसे सिनामिक एसिड, स्टिलबेन, क्यूमरिन और फ्लेवोनेड) जो पौधों की रोग प्रतिरोधक क्षमता में सबसे महत्वपूर्ण पदार्थ हैं। तदनुसार, नीले-हरे वर्णक्रमीय रेंज में प्रतिदीप्ति आशाजनक परिणाम दे सकती है, क्योंकि यह द्वितीयक मेटाबोलइट्स के संचय को प्रतिबिंबित करने वाली एकल तनाव घटनाओं के प्रति बहुत संवेदनशील साबित हुई है।

पोलीमरेज श्रृंखला अभिक्रिया (PCR)-संवर्धन और चढ़ना विधियों की तुलना में पीसीआर गैर-श्रमसाध्य है। विशेष पीसीआर भिन्नता के उपयोग के आधार पर, यह 5 से 24 घंटों के बीच और पहले के संवर्धन चरणों का

उपयोग किए बिना निदान परिणाम देता है। विभिन्न पीसीआर वेरिएंट के बीच, मल्टीप्लेक्स पीसीआर सबसे महत्वपूर्ण है क्योंकि यह प्रत्येक लक्षित जीवाणु तनाव के विशेष जीन के लिए विभिन्न प्राइमर्स की मदद से डीएनए के कोडिंग क्षेत्रों के प्रवर्धन द्वारा विभिन्न जीवों के समवर्ती निदान की अनुमति देता है।

कीटों का पता लगाने के लिए एआई-सक्षम प्रणाली- गहन शिक्षण पर आधारित छवि पहचान तकनीक का उपयोग करके, अब हम पौधों की बीमारियों और कीटों का स्वचालित पता लगा सकते हैं। यह मॉडल बनाने के लिए छवि वर्गीकरण, पहचान और छवि विभाजन विधियों का उपयोग करके काम करता है जो पौधों के स्वास्थ्य पर नजर रख सकते हैं। एआई सिस्टम उपग्रह छवियों का उपयोग करते हैं और एआई एल्योरिडम का उपयोग करके ऐतिहासिक डेटा के साथ उनकी तुलना करते हैं और पता लगाते हैं कि क्या कोई कीट उतरा है और किस प्रकार का कीट उतरा है जैसे टिट्टु, टिट्टु, आदि और किसानों को अलर्ट भेजते हैं। अपने स्मार्टफोन पर ताकि किसान आवश्यक सावधानी बरत सकें और आवश्यक कीट नियंत्रण का उपयोग कर सकें, इस प्रकार एआई किसानों को कीटों से लड़ने में मदद करता है।

आप सरसों के स्केलेरोटिनिया स्टेम रॉट को कैसे नियंत्रित करते हैं? प्रयोगशाला और पिंजरे की स्थितियों में बहु-स्थानीय क्षेत्र अध्ययनों से पता चला है कि सरसों के स्केलेरोटिनिया रॉट को बीज उपचार (@ 10 ग्राम/किग्रा) और पत्तियों पर स्प्रे (@ 0.2%) 50 DAS पर टैल्क आधारित मिश्रित फॉर्म्यूलेशन (2x108 cfu/g) ट्राइकोडर्मा हैमेटम (HP-20)+T के साथ प्रबंधित किया जा सकता है।

फफूंदनाशक का उपयोग फफूंद रोग को नियंत्रित करने के लिए किया जाता है, जो रोग पैदा करने वाले फफूंद या फफूंद बीजाणुओं को नष्ट करके उन्हें रोकता है। इन फफूंदनाशकों के नियमित उपयोग से पर्यावरण को भी खतरा हो सकता है क्योंकि इसके अवशेष मिट्टी में रह जाते हैं जो मिट्टी के जीवों पर नकारात्मक प्रभाव डालते हैं। पिछले कुछ वर्षों से फफूंदनाशक के अत्यधिक उपयोग के कारण सूक्ष्मजीव, मिट्टी, मानव और पशु स्वास्थ्य संबंधी मुद्दों पर अधिक प्रतिकूल परिणाम सामने आए हैं। नैनो प्रौद्योगिकी फंगल प्लांट रोगजनकों सहित कृषि कीटों को नियंत्रित करने और प्रबंधित करने के लिए पर्यावरण के अनुकूल और हरी पर्यावरण विकल्पों की सुविधा प्रदान कर सकती है। नैनो आकार की सीमा विभिन्न कीटनाशक अणुओं की जैव सक्रियता को बढ़ाने में मदद करती है। नैनो कीटनाशकों के कई लाभ हैं जिनमें कम मात्रा में सक्रिय यौगिक का उपयोग, उच्च प्रभावकारिता, लंबे समय तक स्थिरता के साथ पौधे के ऊतकों में आसानी से परागण, नियंत्रित रिलीज और लक्षित कीटों के लिए विशिष्ट, और कम मात्रा में रसायनों में लागू होते हैं जो पर्यावरण प्रदूषण को कम करते हैं। उपर्युक्त रोग के नियंत्रण के लिए कार्बेन्डाजिम नैनोफॉर्म्यूलेशन की लक्षित डिलीवरी का पता लगाया जा सकता है। कार्बेन्डाजिम के नैनो-फॉर्म्यूलेशन का लाभ यह है कि इसमें कवकनाशी की कम मात्रा की आवश्यकता होती है और इसलिए यह पौधों में रोगजनक कवकों के नियंत्रण के लिए अधिक पर्यावरण-अनुकूल विधि है।

प्रबंध: * फसल चक्र अपनाएँ; अत्यधिक संवेदनशील फसलें चार साल में एक बार से ज्यादा न लगाएँ, जिसमें सूखी खाने योग्य फलियाँ, सूरजमुखी, सरसों और कैनोला शामिल हैं। * पिछले चार या पाँच सालों में गंभीर स्केलेरोटिनिया वाले खेत के बगल में पौधे लगाने से बचें। चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों को नियंत्रित करें। * अच्छी तरह से साफ किए हुए बीज बोएँ। कैनोला के घने स्टैंड से बचें।

Registered with the Registrar of Newspaper for India

R.N.I. Regd. No.: MPHIN/2006/16946

94251-01132



ISSN-2582-5976

Supported by:

Kisaan
Helpline
+91-7415538151

मध्य भारत

READ FOR ONLINE EDITION

Website: www.krishakbharti.in

E-mail: bhartikrishak75@gmail.com

कृषक भारती

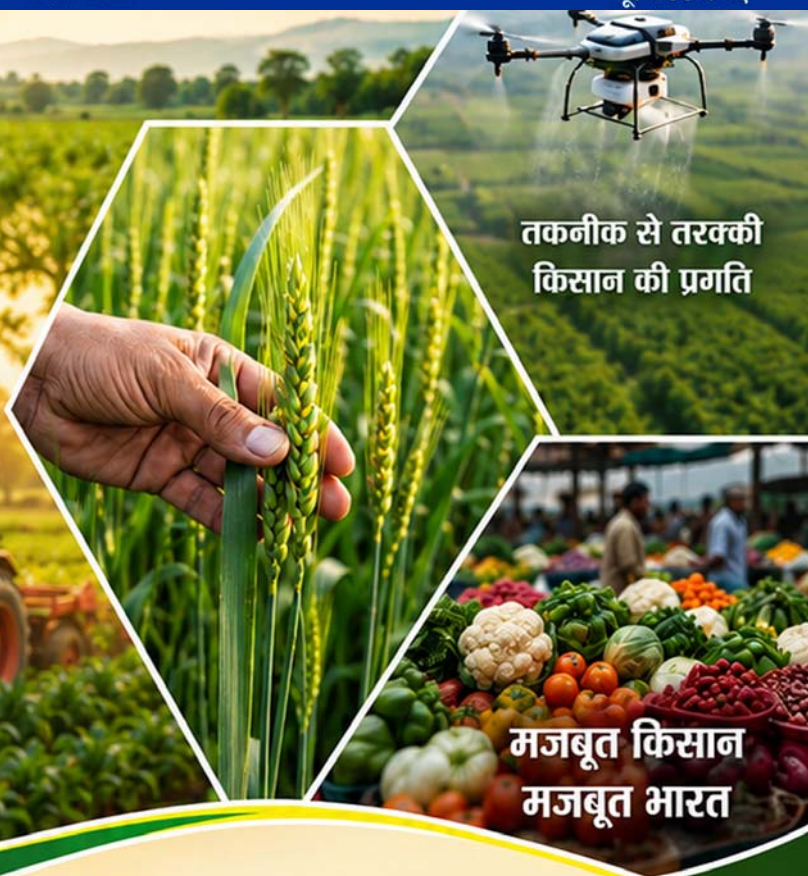
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली मासिक पत्रिका

वर्ष-21 अंक-5

ग्वालियर, अगस्त 2026

मूल्य 30 रुपए

कृषक समृद्धि का संकल्प, आत्मनिर्भर भारत का विकल्प



तकनीक से तरक्की
किसान की प्रगति

मजबूत किसान
मजबूत भारत



उब्जत खेती
अधिक उपज



जल संरक्षण
भविष्य सुरक्षित



आधुनिक तकनीक
किसान के साथ



बेहतर बाजार
उचित मूल्य

मिट्टी की खुशहाली किसान की समृद्धि



जल है तो कल है
हर बूंद की रक्षा,
हर खेत की सुरक्षा



महिला शक्ति
कृषि की नई पहचान,
सशक्त किसान, सशक्त देश



पशुपालन से समृद्धि
स्वस्थ पशु, बेहतर उत्पादन,
आत्मनिर्भर किसान



एकता, किरण सिंह एवं संतोष कुमारी

संसाधन प्रबंधन एवं उपभोक्ता विज्ञान विभाग

चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

व्यावसायिक स्वास्थ्य एवं व्यावसायिक जोखिम (Occupational Health and Hazards)

भूमिका: किसी भी देश के आर्थिक एवं सामाजिक विकास में श्रमिकों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। उद्योग, कृषि, निर्माण, स्वास्थ्य सेवाएँ, शिक्षा तथा अन्य सभी क्षेत्रों में कार्यरत व्यक्ति राष्ट्र की प्रगति में योगदान देते हैं। यदि कार्यस्थल सुरक्षित एवं स्वास्थ्यवर्धक न हो, तो श्रमिकों के शारीरिक, मानसिक एवं सामाजिक स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इसलिए व्यावसायिक स्वास्थ्य (Occupational Health) एवं व्यावसायिक जोखिम (Occupational Hazards) का अध्ययन अत्यंत आवश्यक है। विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) तथा अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन (ILO) के अनुसार प्रत्येक श्रमिक को सुरक्षित, स्वस्थ एवं सम्मानजनक कार्यस्थल उपलब्ध कराना प्रत्येक नियोक्ता का दायित्व है। कार्यस्थल पर होने वाली दुर्घटनाओं, बीमारियों तथा स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं की रोकथाम के लिए प्रभावी सुरक्षा उपाय अपनाना आवश्यक है।

व्यावसायिक स्वास्थ्य (Occupational Health) का अर्थ- व्यावसायिक स्वास्थ्य का तात्पर्य कार्यस्थल पर कार्य करने वाले व्यक्तियों के शारीरिक, मानसिक एवं सामाजिक स्वास्थ्य की सुरक्षा तथा उसे बनाए रखने से है। इसका उद्देश्य केवल बीमारियों का उपचार करना नहीं, बल्कि उन्हें होने से पहले रोकना भी है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार व्यावसायिक स्वास्थ्य का उद्देश्य सभी व्यवसायों में कार्यरत व्यक्तियों के स्वास्थ्य को उच्चतम स्तर पर बनाए रखना तथा कार्य के कारण होने वाली बीमारियों और दुर्घटनाओं की रोकथाम करना है।

व्यावसायिक स्वास्थ्य के उद्देश्य

* श्रमिकों के स्वास्थ्य की सुरक्षा करना। * कार्यस्थल पर दुर्घटनाओं की रोकथाम करना। * व्यावसायिक रोगों को कम करना। * सुरक्षित एवं स्वच्छ कार्य वातावरण उपलब्ध कराना। * कर्मचारियों की कार्यक्षमता एवं उत्पादकता बढ़ाना। * मानसिक तनाव एवं थकान को कम करना। * स्वास्थ्य शिक्षा एवं सुरक्षा प्रशिक्षण प्रदान करना। * कार्यस्थल पर आपातकालीन चिकित्सा सुविधाएँ उपलब्ध कराना।

व्यावसायिक जोखिम (Occupational Hazards) का अर्थ- कार्यस्थल पर उपस्थित ऐसे सभी कारक जो श्रमिक के स्वास्थ्य, सुरक्षा अथवा जीवन के लिए हानिकारक हों, उन्हें व्यावसायिक जोखिम कहा जाता है। ये जोखिम दुर्घटनाओं, चोटों, संक्रमणों तथा दीर्घकालिक रोगों का कारण बन सकते हैं।

व्यावसायिक जोखिमों के प्रकार

1. **भौतिक जोखिम (Physical Hazards)** ये कार्यस्थल के भौतिक वातावरण से उत्पन्न होते हैं।

उदाहरण: * अत्यधिक शोर * अत्यधिक गर्मी या ठंड * कंपन (Vibration) * विकिरण (Radiation) * खराब प्रकाश व्यवस्था * विद्युत दुर्घटनाएँ

स्वास्थ्य पर प्रभाव * सुनने की क्षमता में कमी * आँखों की समस्या * जलन एवं त्वचा रोग * दुर्घटनाएँ * थकान

2. रासायनिक जोखिम (Chemical Hazards)

रासायनों के संपर्क में आने से उत्पन्न जोखिम।

उदाहरण * अम्ल एवं क्षार * कीटनाशक * धूल * धुआँ * गैसें * सॉल्वेंट

स्वास्थ्य पर प्रभाव * श्वसन रोग * त्वचा रोग * कैंसर * एलर्जी * विषाक्तता

3. जैविक जोखिम (Biological Hazards)- जीवाणु, विषाणु,

फफूंद एवं परजीवियों से होने वाले जोखिम।

उदाहरण * अस्पताल * प्रयोगशालाएँ * पशुपालन * अपशिष्ट प्रबंधन

रोग * तपेदिक (TB) * हेपेटाइटिस * COVID-19 * डेंगू * मलेरिया

4. एर्गोनॉमिक जोखिम (Ergonomic Hazards)

गलत कार्य मुद्रा एवं कार्यस्थल की अनुचित डिजाइन के कारण उत्पन्न जोखिम।

उदाहरण * लंबे समय तक कंप्यूटर पर कार्य करना * भारी भार उठाना * लगातार खड़े रहना * गलत मुद्रा में बैठना

स्वास्थ्य प्रभाव

* कमर दर्द * गर्दन दर्द * जोड़ों में दर्द * मांसपेशियों की समस्या

5. मनोसामाजिक जोखिम (Psychosocial Hazards)

कार्य के मानसिक एवं सामाजिक दबाव से उत्पन्न जोखिम।

उदाहरण * अत्यधिक कार्यभार * नौकरी की असुरक्षा * तनाव * उत्पीड़न * कार्यस्थल पर भेदभाव

स्वास्थ्य प्रभाव * अवसाद * चिंता * अनिद्रा * मानसिक थकान

6. यांत्रिक जोखिम (Mechanical Hazards)

मशीनों एवं उपकरणों से होने वाले जोखिम।

उदाहरण * मशीन में हाथ फँसना * कटना * गिरना * विस्फोट प्रभाव * चोट * विकलांगता * मृत्यु

व्यावसायिक रोग (Occupational Diseases)

कुछ रोग विशेष व्यवसायों से जुड़े होते हैं।

व्यवसाय प्रमुख रोग

खदान श्रमिक	सिलिकोसिस
कपड़ा उद्योग	बाइसिनोसिस
एस्बेस्टस उद्योग	एस्बेस्टोसिस
स्वास्थ्य कर्मचारी	हेपेटाइटिस, TB
कृषि श्रमिक	कीटनाशक विषाक्तता
कंप्यूटर कर्मचारी	कार्पल टनल सिंड्रोम

व्यावसायिक स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले कारक

* कार्यस्थल की स्वच्छता * वायु गुणवत्ता * प्रकाश व्यवस्था * तापमान * कार्य अवधि * कार्य का प्रकार * सुरक्षा उपकरणों की उपलब्धता * कर्मचारी का स्वास्थ्य * प्रशिक्षण

व्यावसायिक जोखिमों की रोकथाम

1. **व्यक्तिगत सुरक्षा उपकरण** * हेलमेट * दस्ताने * मास्क * सुरक्षा जूते * गॉगल्स * फेस शील्ड

2. **इंजीनियरिंग नियंत्रण** * उचित वेंटिलेशन * मशीन गार्ड * धूल नियंत्रण * शोर नियंत्रण * स्वचालित मशीनें

3. **प्रशासनिक नियंत्रण** * कार्य समय का उचित निर्धारण * नियमित प्रशिक्षण * सुरक्षा नियमों का पालन * चेतावनी संकेत * जोखिम मूल्यांकन

4. **चिकित्सा उपाय** * नियमित स्वास्थ्य परीक्षण * टीकाकरण * प्राथमिक उपचार * आपातकालीन चिकित्सा सुविधा * स्वास्थ्य परामर्श

कार्यस्थल पर सुरक्षा के सामान्य नियम

* सुरक्षा निर्देशों का पालन करें। * मशीनों का उपयोग प्रशिक्षण के बाद करें। * सुरक्षा उपकरण हमेशा पहनें। * कार्यस्थल को स्वच्छ रखें।

* ज्वलनशील पदार्थों का सुरक्षित भंडारण करें। * विद्युत उपकरणों की नियमित जाँच करें। * दुर्घटना होने पर तुरंत सूचना दें।

भारत में व्यावसायिक स्वास्थ्य से संबंधित प्रमुख कानून

* कर्मचारी क्षतिपूर्ति अधिनियम (Employees' Compensation Act, 1923)

* कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम (Employees' State Insurance Act, 1948)

* कारखाना अधिनियम, 1948 (Factories Act, 1948)- ऐतिहासिक रूप से औद्योगिक सुरक्षा एवं स्वास्थ्य के लिए महत्वपूर्ण कानून। * व्यावसायिक सुरक्षा, स्वास्थ्य एवं कार्य दशाएँ संहिता, 2020 (Occupational Safety, Health and Working Conditions Code, 2020)

व्यावसायिक स्वास्थ्य सेवाएँ * स्वास्थ्य परीक्षण * रोगों की रोकथाम * दुर्घटना नियंत्रण * स्वास्थ्य शिक्षा * पोषण संबंधी सलाह * मानसिक स्वास्थ्य सहायता * आपातकालीन सेवाएँ * पुनर्वास सेवाएँ

व्यावसायिक स्वास्थ्य में नियोक्ता की भूमिका * सुरक्षित कार्यस्थल उपलब्ध कराना। * सुरक्षा उपकरण प्रदान करना। * कर्मचारियों को प्रशिक्षण देना। * नियमित स्वास्थ्य परीक्षण करवाना। * दुर्घटनाओं की रिपोर्टिंग एवं रोकथाम करना। * कानूनों का पालन सुनिश्चित करना।

कर्मचारी की जिम्मेदारियाँ * सुरक्षा नियमों का पालन करना। * PPE का सही उपयोग करना। * दुर्घटना की सूचना देना। * कार्यस्थल को स्वच्छ रखना। * प्रशिक्षण कार्यक्रमों में भाग लेना।

व्यावसायिक स्वास्थ्य का महत्व

* श्रमिकों का स्वास्थ्य सुरक्षित रहता है। * दुर्घटनाओं में कमी आती है। * उत्पादन एवं उत्पादकता बढ़ती है। * चिकित्सा व्यय कम होता है। * कार्य संतुष्टि बढ़ती है। * अनुपस्थिति कम होती है। * उद्योग का विकास होता है। * राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था मजबूत होती है।

वर्तमान चुनौतियाँ * असंगठित क्षेत्र में सुरक्षा की कमी। * जागरूकता का अभाव। * PPE का सीमित उपयोग। * रासायनिक जोखिमों में वृद्धि। * मानसिक तनाव एवं बर्नआउट। * स्वचालन एवं नई तकनीकों से उत्पन्न नए जोखिम।

सुझाव * प्रत्येक संस्थान में सुरक्षा नीति लागू की जाए। * नियमित सुरक्षा प्रशिक्षण आयोजित किए जाएँ। * स्वास्थ्य परीक्षण अनिवार्य किए जाएँ। * कार्यस्थल पर स्वच्छता एवं वेंटिलेशन में सुधार किया जाए। * मानसिक स्वास्थ्य सहायता उपलब्ध कराई जाए। * सुरक्षा कानूनों का प्रभावी क्रियान्वयन सुनिश्चित किया जाए। * जोखिम मूल्यांकन समय-समय पर किया जाए।

निष्कर्ष- व्यावसायिक स्वास्थ्य एवं व्यावसायिक जोखिम किसी भी संगठन की सफलता और श्रमिकों के कल्याण के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। सुरक्षित कार्यस्थल न केवल कर्मचारियों के स्वास्थ्य की रक्षा करता है, बल्कि उनकी कार्यक्षमता, उत्पादकता तथा जीवन की गुणवत्ता में भी सुधार करता है। आधुनिक औद्योगिक विकास के साथ नए प्रकार के जोखिम सामने आ रहे हैं, इसलिए नियोक्ता, कर्मचारी तथा सरकार सभी की संयुक्त जिम्मेदारी है कि कार्यस्थलों को सुरक्षित, स्वस्थ एवं जोखिम-मुक्त बनाया जाए। जागरूकता, प्रशिक्षण, आधुनिक सुरक्षा उपायों तथा प्रभावी कानूनों के माध्यम से व्यावसायिक दुर्घटनाओं एवं रोगों में उल्लेखनीय कमी लाई जा सकती है।



डॉ. सुनील कुमार मंडल सहायक प्राध्यापक,
क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, झंझारपुर- 847403
डॉ. राजेन्द्र प्रसाद केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय, पूसा,
समस्तीपुर, (बिहार)

बिहार में **मखाना की खेती**: तालाब प्रणाली एवं खेत प्रणाली का तुलनात्मक अध्ययन

तालाब और खेत प्रणालियों का तुलनात्मक विवरण

मानक (पैरामीटर)	पारम्परिक तालाब प्रणाली	आधुनिक खेत प्रणाली
स्थान	तालाब, झील, गड्ढे	कृषि क्षेत्र
पानी की आवश्यकता	लगभग 4 से 6 फीट	लगभग 1.0 से 1.5 फीट
पानी की स्रोत	बारहमासी जल निकायों के रूप में प्राकृतिक पानी	सिंचाई का पानी या कोई पानी के अन्य बारहमासी स्रोत - 25
बीज की आवश्यकता	नई तालाब: 80-90 किग्रा/हे, पुरानी तालाब: 30-40 किग्रा/हे	20 किलोग्राम/हेक्टेयर
कृषि प्रणाली	प्राकृतिककृत (बुआई/प्रतिरोपण)	नियंत्रित (प्रतिरोपण)
पौध घनत्व	कम (असमान पौधों की संख्या)	अधिक (समान पौधों की संख्या)
खाद एवं उर्वरक	स्थिर पानी में अधिक गहराई के कारण बहुत कठिन है।	पौधारोपण के पहले और बाद में बहुत आसानी से प्रयोग किया जाता है।
खरपतवार प्रबंधन	बहुत कठिन एवं थकाऊ प्रक्रिया है।	बहुत आसान प्रक्रिया है।
फसल सुरक्षा प्रबंधन	बहुत कठिन	बहुत आसान
फसल कटाई की व्यवहार्यता	अत्यंत थकाऊ एवं गहरा पानी के कारण यह केवल कुशल व प्रशिक्षित श्रमिकों के द्वारा ही किया जाता है।	अत्यंत सरल एवं उथली पानी के कारण यह अकुशल व्यक्तियों के द्वारा भी किया जा सकता है।
फसल वृद्धि की गति	धीमी गति से होती है।	तेज गति से होती है।
फसल अवधि	लम्बी अवधि (8 से 10 महीने)	कम अवधि (5-6 महीने)
फसल सभ्यता	सामान्यतः एकल फसल (100 प्रतिशत)	प्रायः दोहरी व तिसरी फसल संभव (200-300 प्रतिशत)
फसल प्रणाली की गहनता	मखाना के साथ जलीय अखरोट, मखाना के साथ मछली पालन	मखाना-सिंचाई, मखाना-बरसीम, मखाना-धान, मखाना-गेहूँ
एक वर्ष में अधिकतम फसलों की संख्या	दो	तीन
अनाज एवं चारे उत्पादन की संभावना	संभव नहीं है।	जलीय अखरोट, धान, गेहूँ, बरसीम और अन्य फसलों को नियमित आर्बन में उगाया जा सकता है।
बीज उत्पादन कम	(18 से 22 टन/हे)	30 से 40 प्रतिशत अधिक (26 से 30 टन/हेक्टेयर)
पूँजी	अधिक से बहुत अधिक (परिस्थितिनुसार)	मध्यम से निम्न
शुद्ध आय	निम्न से मध्यम	उच्च से बहुत उच्च
पर्यावरणीय परिस्थिति की	पारम्परिक, अधिक मानव श्रम और प्राकृतिक तालाब परिस्थिति की।	आधुनिक, कम मानव श्रम, कुशल और क्षेत्रीय परिस्थिति की।
भूमि उपयोग की संवेदनशीलता	अक्सर इस प्रणाली में एक वर्ष लग जाता है तथा एक फसल के लिए ही सीमित होता है।	आर्थिक टिकाऊ, पर्यावरण के अनुकूल। फसल-चक्र का कार्यान्वयन और गैर मौसम में दूसरी फसल उगा सकते हैं जैसे-मक्का, सिंचाई, बरसीम।



बिहार में मखाना का उत्पादन आधुनिक खेती प्रणाली और पारम्परिक तालाब प्रणाली से की जाती है। इन दोनों प्रणालियों के बीच मुख्य अंतर प्रबंधन और उत्पादकता का है। खेत प्रणाली में नियंत्रित पानी (1.0-1.5 फीट) और संतुलित उर्वरकों के साथ कृषि योग्य भूमि पर खेती की जाती है, जिससे उत्पादकता अधिक और प्रबंधन आसान होता है, परन्तु इस के विपरीत, पारम्परिक तालाब प्रणाली में गहरे पानी (4-6 फीट) का उपयोग किया जाता है, जिसमें मखाना फसल की कटाई के लिए गहरे पानी में जाना पड़ता है और यह पुरी तरह से पानी के स्तर पर निर्भर करता है।

इस प्रकार आधुनिक खेत प्रणाली, पारम्परिक तालाब प्रणाली की तुलना में अधिक लाभदायक, आधुनिक एवं कम मेहनत वाली तकनीक है, जिसे बिहार के किसान कई जिलों में काफी तेजी से अपना रहे हैं। खेत प्रणाली में मखाना की अच्छी गुणवत्ता के साथ उत्पादन से अन्तराष्ट्रीय बाजार में तेजी से मांग बढ़ रही है।

आधुनिक खेत प्रणाली मखाना उत्पादन को 'कृषि'

के रूप में बदल देता है, जिस से यह प्रणाली किसानों के लिए प्रति हेक्टेयर अधिक लाभदायक होगया है, जब कि पारम्परिक तालाब प्रणाली में मेहनत अधिक और आधुनिक प्रबंधन का अभाव रहता है।

आधुनिक खेती प्रणाली में उच्च गुणवत्ता के साथ उत्पादन करने पर मखाना निर्यात को बढ़ावा मिल रही है जो एक सशक्त कृषि प्रदान करता है। इस प्रकार किसानों की आय दिन प्रतिदिन बढ़ रही है।

नन्दिनी इन्टरप्राइजेज खाद बीज एवं कीटनाशक



प्रो. रामदीन कुशवाह
84610-11860

हमारे यहां सभी प्रकार के खाद बीज एवं कीटनाशक दवाईयां उचित रेट पर मिलती हैं



पता : चीनोर रोड, छीमक, जिला-ग्वालियर (म.प्र.)

नीलम उपाध्याय पीएच.डी. शोधार्थी, उद्यानिकी विभाग, हेमवती नंदन बहुगुणा गढ़वाल विश्वविद्यालय (केन्द्रीय विश्वविद्यालय), उत्तराखण्ड

परिचय

जलवायु परिवर्तन आज वैश्विक स्तर पर सबसे गंभीर चुनौतियों में से एक बन गया है। बढ़ता तापमान, अनियमित वर्षा, सूखा, बाढ़ तथा कीट-रोगों की बढ़ती घटनाएँ न केवल कृषि बल्कि उद्यानिकी क्षेत्र के लिए भी बड़ी चिंता का विषय हैं। फल, सब्जी और फूल फसलों की उत्पादकता, गुणवत्ता और उपलब्धता इन परिवर्तनों से गहराई से प्रभावित होती है। ऐसे परिदृश्य में "जलवायु-स्मार्ट उद्यानिकी (Climate Smart Horticulture)" एक अभिनव दृष्टिकोण के रूप में उभरकर सामने आया है, जो उत्पादन, पर्यावरण और किसान की आय – तीनों के बीच संतुलन स्थापित करता है।

जलवायु परिवर्तन और उद्यानिकी पर प्रभाव

भारत जैसे कृषि-प्रधान देश में उद्यानिकी का योगदान कुल कृषि-उत्पादन का लगभग एक-तिहाई है। परंतु जलवायु परिवर्तन से इस क्षेत्र पर कई नकारात्मक प्रभाव पड़े हैं —

- * असमय वर्षा और तापमान में असंतुलन से परागण और फल विकास प्रभावित होते हैं।
- * जल की कमी से फसलों की वृद्धि रुक जाती है, विशेषकर टमाटर, खीरा और स्ट्रॉबेरी जैसी फसलों में।
- * कीटों एवं रोगों का प्रकोप नए रूप में सामने आता है।
- * गुणवत्ता में गिरावट और भंडारण अवधि घटने से किसानों को आर्थिक हानि होती है।

जलवायु-स्मार्ट उद्यानिकी की अवधारणा

संयुक्त राष्ट्र की खाद्य एवं कृषि संगठन के अनुसार, "जलवायु-स्मार्ट कृषि" का उद्देश्य तीन प्रमुख लक्ष्यों को साधना है — * उत्पादकता में वृद्धि (Productivity) * लचीलापन या अनुकूलन क्षमता बढ़ाना (Resilience/Adaptation) * ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन में कमी (Mitigation) उद्यानिकी में यह दृष्टिकोण उन तकनीकों और प्रथाओं का समावेश करता है जो जलवायु-जोखिमों को कम करते हुए उत्पादन को स्थिर रखती हैं।

मुख्य तकनीकें और उपाय

संरक्षित खेती (Protected Cultivation)
पॉलीहाउस, शेडनेट और लो-टनल खेती से पौधों को तापमान व आर्द्रता के उतार-चढ़ाव से सुरक्षा मिलती है। इससे टमाटर, शिमला मिर्च, खीरा, स्ट्रॉबेरी जैसी फसलों की पैदावार व गुणवत्ता दोनों बेहतर होती हैं।

सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली (Micro-Irrigation)

ड्रिप व स्प्रींकलर से जल की 50% तक बचत संभव है। 'फर्टीगेशन' तकनीक से पौधों को पोषक तत्व सटीक मात्रा में मिलते हैं।

जलवायु-अनुकूल किस्में (Climate-Resilient Varieties)

उच्च तापमान, सूखा या रोग-प्रतिरोधी किस्में जैसे आम की 'आम्रपाली' या टमाटर की 'अर्का रक्षक' जैसी वैराइटीज किसानों को स्थिर उत्पादन देती हैं।

जैविक मल्लिग और मृदा प्रबंधन-मल्लिग से मिट्टी की नमी संरक्षित रहती है, खरपतवार कम होते हैं और मिट्टी का तापमान स्थिर रहता है।

सौर ऊर्जा आधारित नवाचार (Solar-Based Innovations)

सौर पंप, सोलर-ड्रायर और कोल्ड-स्टोरेज प्रणालियाँ न केवल ऊर्जा-कुशल हैं, बल्कि प्रदूषण भी कम करती हैं।

परागण प्रबंधन और जैव-विविधता संरक्षण-मधुमक्खी पालन जैसी गतिविधियाँ परागण को बढ़ाकर फलों की गुणवत्ता और उत्पादन में वृद्धि करती हैं।

जलवायु-स्मार्ट उद्यानिकी : बदलते मौसम में स्थायी उत्पादन की दिशा



सटीक कृषि (Precision Horticulture)-ड्रोन, सेंसर और GIS-आधारित तकनीकों से फसलों की स्वास्थ्य निगरानी, उर्वरक प्रबंधन और रोग पहचान संभव है।

इन कार्यक्रमों के माध्यम से जलवायु-सहिष्णु तकनीकों, प्रशिक्षण और वित्तीय सहायता किसानों तक पहुँचाई जा रही है।

निष्कर्ष

जलवायु परिवर्तन की चुनौतियों से निपटने के लिए जलवायु-स्मार्ट उद्यानिकी अब एक विकल्प नहीं, बल्कि आवश्यकता बन चुकी है। यह तकनीक-आधारित, पर्यावरण-अनुकूल और आर्थिक रूप से लाभकारी प्रणाली है जो भविष्य की कृषि को सुरक्षित बना सकती है। किसानों, वैज्ञानिकों और नीति-निर्माताओं के समन्वय से ही इस दिशा में ठोस परिणाम प्राप्त किए जा सकते हैं।

सरकारी पहल और नीतियाँ

भारत सरकार जलवायु-स्मार्ट कृषि को बढ़ावा देने हेतु अनेक योजनाएँ चला रही है — * राष्ट्रीय बागवानी मिशन (NHM) * प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना (PMKSY) * राष्ट्रीय कृषि विकास योजना (RKVY) * ICAR-NICRA परियोजना (National Innovations on Climate Resilient Agriculture)



शक्ति बीज भण्डार

सभी प्रकार के कीटनाशक • खरपतवार दवाईयाँ • रासायनिक खाद एवं उच्च क्वालिटी के बीज व स्प्रे पम्प मिलने का एक मात्र स्थान।

ए.बी. रोड, न्यू सब्जी मण्डी, लश्कर-ग्वालियर (म.प्र.) फोन : 0751-2448911

नोट : सभी प्रकार के स्प्रे पम्प (बैट्री/पेट्रोल/नेप्सिक) रिपेयर भी किये जाते हैं।



अंकिता (पीएच.डी.)

डॉ. संतोष कुमारी (वरिष्ठ वैज्ञानिक)

अंजलि कुमारी (पीएच. डी.)

शिवाली धीमान (पीएच.डी.), वाई एस परमार बागवानी एवं वानिकी विश्वविद्यालय, नौणी, सोलन (हिमाचल प्रदेश) 173230

परिचय: मोरिंगा को एक जलवायु-सहिष्णु एवं बहुउद्देशीय फसल के रूप में बढ़ती हुई मान्यता प्राप्त हो रही है, जिसका सतत कृषि में महत्वपूर्ण योगदान है। इसकी तीव्र वृद्धि, अधिक जैव-द्रव्य उत्पादन तथा सीमांत मिट्टियों के प्रति अनुकूलन क्षमता इसे कम लागत एवं वर्षा आधारित कृषि प्रणालियों के लिए उपयुक्त बनाती है। यह पौधा कृषि वानिकी, जैविक खेती तथा मृदा संरक्षण में व्यापक रूप से उपयोग किया जाता है, जिससे मृदा स्वास्थ्य और पर्यावरणीय स्थिरता में सुधार होता है। मोरिंगा के बीज तेल निष्कर्षण और प्राकृतिक जल शुद्धिकरण में उपयोगी हैं, जबकि इसकी पत्ती के अर्क फसल उत्पादन में प्रभावी जैव-उत्तेजक के रूप में कार्य करते हैं। यह फसल मूल्य संवर्धन और लघु-स्तरीय उद्यमों के माध्यम से ग्रामीण आजीविका को भी सुदृढ़ बनाती है। इसके अतिरिक्त, मोरिंगा की पत्तियाँ प्रोटीन, आवश्यक अमीनो अम्लों, विटामिनों तथा खनिजों से भरपूर होती हैं, जो कुपोषण और पोषण असुरक्षा को कम करने में सहायक हैं।

मोरिंगा एक अत्यधिक व्यापक रूप से उगाया जाने वाला बहुउद्देशीय वृक्ष है। इसके अपरिपक्व फल, कोमल पत्तियाँ तथा फूल सामान्यतः भोजन पकाने में उपयोग किए जाते हैं। भारत में यह वृक्ष इमरुटिक, सहजन अथवा सोहंजना के नाम से जाना जाता है तथा विभिन्न क्षेत्रों में इसके स्थानीय नाम प्रचलित हैं। पौधे का प्रत्येक भाग अपने विविध कार्यात्मक, औषधीय एवं न्यूट्रिएंटिकल लाभों के लिए जाना जाता है। कोमल फलियों का मुख्य रूप से सब्जी के रूप में उपभोग किया जाता है, जबकि विभिन्न क्षेत्रों में इस वृक्ष का महत्वपूर्ण औषधीय उपयोग भी किया जाता है। यह एक पर्णपाती वृक्ष है जिसकी छाल सिल्वर-ग्रे रंग की होती है तथा यह 10-12 मीटर तक ऊँचा होता है। इसके उत्कृष्ट पोषणीय, औषधीय एवं औद्योगिक उपयोगों के कारण इसे "चमत्कारी वृक्ष", "अद्वितीय वृक्ष" अथवा "बहुउद्देशीय वृक्ष" कहा जाता है। गर्म एवं शुष्क जलवायु के प्रति इसकी उत्कृष्ट अनुकूलन क्षमता, विशेषकर उत्तर-पश्चिमी मैदानी क्षेत्रों, मध्य भारत तथा प्रायद्वीपीय भारत के शुष्क क्षेत्रों में, इसके महत्व को और अधिक बढ़ाती है। मोरिंगा को विश्वभर में एक पोषक तत्वों से भरपूर "सुपरफूड" के रूप में मान्यता प्राप्त है।

मोरिंगा के पोषणीय गुण-मोरिंगा वृक्ष का प्रत्येक भाग कैल्शियम, फास्फोरस, मैगनीज एवं जिंक जैसे आवश्यक खनिजों का मूल्यवान स्रोत है, जबकि इसकी पत्तियाँ एवं फूल मानव एवं पशुधन दोनों के लिए आयरन की दृष्टि से अत्यंत उपयोगी माने जाते हैं। इसकी पत्तियाँ, तना, फल, फूल तथा फलियाँ अत्यधिक पौष्टिक सब्जियों के रूप में व्यापक रूप से उपयोग की जाती हैं।

* मोरिंगा की पत्तियों में मटर की तुलना में अधिक प्रोटीन तथा पालक की तुलना में अधिक आयरन पाया जाता है। इसके बीजों से प्राप्त तेल में ओलिक, पामिटिक, लिनोलिक, पामिटोलेइक एवं स्टीरिक फैटी एसिड प्रचुर मात्रा में होते हैं। पत्तियाँ कैल्शियम एवं पोटेशियम से भरपूर होती हैं, जबकि बीज एवं दाने तौंबे का अच्छा स्रोत हैं।

* पत्तियाँ एवं बीज दोनों ही विटामिन थ एवं C के उत्कृष्ट स्रोत हैं। फूलों में उच्च मात्रा में फिनोलिक यौगिक एवं फ्लेवोनॉइड्स पाए जाते हैं, जिसके कारण इन्हें शक्तिशाली एंटीऑक्सीडेंट पूरक के रूप में

मोरिंगा: पोषक तत्वों से भरपूर एवं स्वास्थ्यवर्धक सब्जी

अनुशंसित किया जाता है, जिनकी मात्रा पत्तियों से भी अधिक पाई जाती है, जो पौधे का सबसे अधिक व्यावसायिक भाग है।

* पोषक तत्वों की तुलना से यह स्पष्ट होता है कि पत्तियों में फलियों की तुलना में दो गुना से अधिक प्रोटीन तथा काफी अधिक कैल्शियम एवं आयरन पाया जाता है। पोटेशियम पत्तियों एवं फलियों दोनों में प्रचुर मात्रा में होता है, जबकि फलियों में पत्तियों की तुलना में चार गुना से अधिक फास्फोरस पाया जाता है।

* मोरिंगा की पोषणीय कमी को दूर करने की क्षमता इसमें पाए जाने वाले विटामिन, खनिज एवं प्रोटीन के कारण है, जिनमें बीटा-कैरोटीन, आयरन, जिंक, विटामिन C तथा सभी आवश्यक अमीनो अम्ल शामिल हैं।

* यह पौधा मैक्रो एवं माइक्रो पोषक तत्वों तथा जैव-सक्रिय यौगिकों से भरपूर है, जो शरीर की सामान्य शारीरिक क्रियाओं को बनाए रखने, प्रतिरक्षा प्रणाली को सुदृढ़ करने तथा कुछ रोगों की रोकथाम में सहायक होते हैं।

* मोरिंगा को फाइटोकेमिकल्स का एक समृद्ध स्रोत भी माना जाता है, जिसके कारण यह कार्यात्मक एवं औषधीय खाद्य उत्पादों के लिए उपयुक्त है। इसमें विटामिन A, विटामिन C तथा दूध के समान प्रोटीन मात्रा पाई जाती है।

* इस पौधे में एल्कलॉइड्स, प्रोटीन, क्रिनिन, सैपेनिन्स, फ्लेवोनॉइड्स, टैनिन्स, स्टैरॉयड्स, ग्लाइकोसाइड्स, स्थिर तेल एवं वसा जैसे विविध सक्रिय फाइटोकेमिकल्स भी पाए जाते हैं।

मानव उपभोग में मोरिंगा

* मोरिंगा की कोमल युवा पत्तियाँ खाद्य होती हैं तथा इन्हें पालक की तरह पकाया जाता है या सूप एवं सलाद में मिलाया जाता है। ये प्रो-विटामिन A, विटामिन B एवं C, आवश्यक खनिजों तथा मेथियोनीन एवं सिस्टीन जैसे सल्फर युक्त अमीनो अम्लों का उत्कृष्ट स्रोत हैं।

* अपरिपक्व हरी फलियाँ स्वादिष्ट होती हैं तथा इन्हें उबालकर हरी सेम की तरह खाया जाता है। इन्हें तब तोड़ना सर्वोत्तम होता है जब ये आसानी से टूट जाएँ और रेशदार न हों।

* बीजों का सेवन पीले होने से पहले हरे अवस्था में करने की सिफारिश की जाती है। इसके अतिरिक्त, जड़ों को सिरके में पकाकर तीखी चटनी के रूप में भी उपयोग किया जाता है।

* शुष्क मौसम के अंत में, जब अन्य पत्तेदार सब्जियाँ उपलब्ध नहीं होतीं, तब कोमल अंकुर एवं युवा पत्तियों का उपयोग सब्जी, मसाले या सलाद के रूप में किया जाता है, ठीक धनिया पत्तियों की तरह।

* पत्तियों को अक्सर सुखाकर पाउडर बना लिया जाता है और ऑफ-सीजन में उपयोग हेतु संग्रहित किया जाता है। मोरिंगा पत्ती पाउडर एक प्राकृतिक आहार पूरक के रूप में उपयोग किया जाता है।

* छिले हुए बीज (कनेल) से लगभग 40% तेल प्राप्त होता है जिसे बेन ऑयल कहा जाता है। यह अत्यंत पौष्टिक होता है तथा इसकी फैटी एसिड संरचना जैतून के तेल के समान होती है।

मोरिंगा के औषधीय उपयोग

बीज: मोरिंगा बीजों के अर्क लिपिड पेरॉक्साइड को कम करके यकृत की रक्षा करने में सहायक होते हैं। फलियों के एंथोनॉलिक अर्क से थायोकाबामेट एवं आइसोथायोसायनेट ग्लाइकोसाइड्स जैसे उच्च रक्तचाप रोधी यौगिक प्राप्त



मोरिंगा की पत्तियाँ

हुए हैं। बीजों में लगभग 35-40% तेल पाया जाता है, जो अपने चिकित्सीय गुणों के लिए जाना जाता है। फलियों का उपयोग दस्त, यकृत एवं प्लीहा विकारों तथा जोड़ों के दर्द के उपचार में भी किया जाता है।

पत्तियाँ: ताज़ी पत्ती का रस एवं जलीय बीज अर्क ने प्सोडोमोनास एरुजिनोसा एवं स्टैफिलोकोकस ऑरियस के विरुद्ध अवरोधक प्रभाव दर्शाया है। पत्तियों का उपयोग घावों पर लेप के रूप में, सिरदर्द में कनपटियों पर मलने तथा बवासीर, ज्वर, गले में दर्द, ब्रोंकाइटिस, आँख एवं कान के संक्रमण तथा स्क्वी

के उपचार में किया जाता है। पत्ती रस को रक्त शर्करा को नियंत्रित करने एवं ग्रंथियों की सृजन को कम करने में सहायक माना जाता है। अर्क ने मवादयुक्त त्वचा संक्रमणों के विरुद्ध भी प्रबल जीवाणुरोधी क्रिया प्रदर्शित की है।

जड़ें: मोरिंगा की जड़ों में टेरिगोस्पर्मिन नामक सक्रिय एंटीबायोटिक पाया जाता है, जो जीवाणुरोधी एवं कवकरोधी गुण रखता है। परंपरागत रूप से इनका उपयोग हृदय उत्तेजक, अल्सररोधी एवं सृजनरोधी औषधि के रूप में किया जाता है।

फूल: फूल औषधीय रूप से उत्तेजक एवं कामोत्तेजक माने जाते हैं। इनका उपयोग सृजन, मांसपेशीय विकारों, हिस्टीरिया, ट्यूमर एवं प्लीहा वृद्धि के उपचार में किया जाता है। ये सीरम कोलेस्ट्रॉल, फॉस्फोलिपिड एवं ट्राइग्लिसराइड्स को कम करने तथा यकृत एवं हृदय की लिपिड प्रोफाइल में सुधार करने में सहायक होते हैं।

तना छाल: छाल से बनी औषधियाँ नेत्र रोगों में राइ एवं फफोले उत्पन्न करने वाले एजेंट के रूप में तथा उम्माद के उपचार में प्रयुक्त होती हैं। इसका उपयोग प्लीहा वृद्धि को रोकने, गर्दन में तपेदिक ग्रंथियों को कम करने, ट्यूमर नष्ट करने एवं अल्सर को भरने में किया जाता है। जड़ छाल का रस कान दर्द में कान में डाला जाता है तथा दाँत के दर्द में दंते गुहाओं में लगाया जाता है, जिसमें क्षयरोगरोधी गतिविधि भी पाई गई है। तने के अर्क ऑक्सीडेटिव तनाव से उत्पन्न मोतिबाबिंद के विरुद्ध भी सुरक्षा प्रदान करते हैं, क्योंकि ये लेंस की प्राकृतिक एंटीऑक्सीडेंट प्रणाली को सुदृढ़ करते हैं।

सारांश: मोरिंगा को इसके असाधारण पोषणीय, औषधीय एवं कार्यात्मक गुणों के कारण एक अत्यंत मूल्यवान पौधा माना जा सकता है। पौधे के लगभग सभी भाग पत्तियाँ, फलियाँ, फूल, बीज एवं छाल प्रोटीन, विटामिन, खनिज, अमीनो अम्ल तथा जैव-सक्रिय यौगिकों के समृद्ध स्रोत हैं। एंटीऑक्सीडेंट, फिनोलिक एवं सृजनरोधी घटकों की उपस्थिति इसे विभिन्न स्वास्थ्य विकारों के प्रबंधन में उपयोगी बनाती है। इसका न्यूट्रिएंटिकल महत्व विशेष रूप से विकासशील देशों में कुपोषण एवं सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी को दूर करने में सहायक है। स्वास्थ्य लाभों के अतिरिक्त, मोरिंगा में जीवाणुरोधी, मधुमेहरोधी, हृदय-संरक्षक एवं यकृत-संरक्षक गुण भी पाए जाते हैं। यह पौधा पारंपरिक औषधीय प्रणालियों तथा आधुनिक औषधि विज्ञान में भी महत्वपूर्ण स्थान रखता है। प्रतिकूल जलवायु परिस्थितियों एवं सीमांत भूमि में उगने की इसकी क्षमता इसके कृषि महत्व को और बढ़ाती है। इसके अतिरिक्त, सब्जी, औषधीय संसाधन एवं औद्योगिक कच्चे माल के रूप में इसके बहुउद्देशीय उपयोग इसे खाद्य सुरक्षा में भी योगदानकर्ता बनाते हैं। यह पर्यावरण-अनुकूल फसल सतत कृषि प्रणालियों को समर्थन प्रदान करती है। समग्र रूप से, मोरिंगा एक "चमत्कारी वृक्ष" के रूप में पोषण सुधार, स्वास्थ्य संवर्धन एवं सतत विकास की अपार संभावनाएँ रखता है।



सृष्टि पीएच.डी. शोधार्थी, सब्जी विज्ञान विभाग, बागवानी महाविद्यालय, डॉ. यशवंत सिंह परमार बागवानी एवं वानिकी विश्वविद्यालय, सोलन, (हिमाचल प्रदेश)

सारांश-सटीक कृषि के तीव्र विकास ने आधुनिक कृषि पद्धतियों को बदल दिया है, और ड्रोन तकनीक सबसे आशाजनक नवाचारों में से एक बनकर उभरी है। सब्जी उत्पादन में, ड्रोन किसानों को फसल की निगरानी, रोग का पता लगाने, पोषक तत्व प्रबंधन, सिंचाई मूल्यांकन और सटीक कीटनाशक प्रयोग के लिए कुशल उपकरण प्रदान करते हैं। उच्च-रिजॉल्यूशन वाली हवाई छवियों और वास्तविक समय के क्षेत्र डेटा को कैप्चर करके, ड्रोन सूचित निर्णय लेने में सक्षम बनाते हैं, इनपुट लागत को कम करते हैं, पर्यावरणीय प्रभाव को कम करते हैं और फसल उत्पादकता को बढ़ाते हैं। चूंकि सब्जी की खेती में गहन प्रबंधन और समय पर हस्तक्षेप की आवश्यकता होती है, इसलिए ड्रोन तकनीक को एकीकृत करने से टिकाऊ कृषि पद्धतियों को बढ़ावा देते हुए उत्पादन क्षमता में उल्लेखनीय सुधार हो सकता है। यह लेख सब्जी उत्पादन में ड्रोन तकनीक के अनुप्रयोगों, लाभों, चुनौतियों और भविष्य की संभावनाओं का पता लगाता है।

परिचय-सब्जी की खेती पोषण सुरक्षा सुनिश्चित करने, खेती से आय बढ़ाने और कृषि अर्थव्यवस्था को सहारा देने में अहम भूमिका निभाती है। हालाँकि, सब्जी की फसलें मौसम में बदलाव, कीटों के हमले, बीमारियों और पोषक तत्वों की कमी के प्रति बहुत संवेदनशील होती हैं। फसल की निगरानी और प्रबंधन के पारंपरिक तरीकों में अक्सर काफी मेहनत, समय और पैसे की जरूरत होती है, जिससे खेत की समस्याओं पर तुरंत प्रतिक्रिया देना मुश्किल हो जाता है।

प्रिसिजन एग्रीकल्चर (सटीक खेती) के आने से ऐसी नई तकनीकें आई हैं जिनसे खेत-खास (साइट-स्पेसिफिक) फसल प्रबंधन संभव हो गया है। इन तकनीकों में, अनमैन्ड एरियल व्हीकल्स (UAVs), जिन्हें आमतौर पर ड्रोन कहा जाता है, ने खेत की जानकारी तेजी से इकट्ठा करने और बहुत सटीकता के साथ कृषि कार्य करने की अपनी क्षमता के कारण काफी ध्यान आकर्षित किया है। एडवांस्ड कैमरे, मल्टीस्पेक्ट्रल सेंसर, थर्मल इमेजिंग सिस्टम और तबू तकनीक से लैस ड्रोन सटीक, समय पर और डेटा-आधारित समाधान प्रदान करके सब्जी की खेती में क्रांति ला रहे हैं।

सब्जी उत्पादन में ड्रोन का इस्तेमाल

1. फसल की निगरानी- ड्रोन किसानों को सब्जी के खेतों का ऊपर से पूरा नजारा दिखाते हैं, जिससे फसल के बढ़ने और विकास पर लगातार नज़र रखी जा सकती है। हाई-रिजॉल्यूशन वाली तस्वीरें फसल के असमान विकास, खराब अंकुरण, पोषक तत्वों की कमी, पानी की कमी और विकास में गड़बड़ी जैसी समस्याओं को गंभीर होने से पहले ही पहचानने में मदद करती हैं।

2. कीटों और बीमारियों का जल्दी पता लगाना- सब्जी की फसलें कीटों और बीमारियों के प्रति बहुत संवेदनशील होती हैं, जो तेजी से फैल सकती हैं। ड्रोन पर लगे मल्टीस्पेक्ट्रल और थर्मल सेंसर पौधों में दिखाई देने वाले

सब्जी उत्पादन के लिए ड्रोन तकनीक



लक्षणों से पहले ही उनमें होने वाले सूक्ष्म शारीरिक बदलावों का पता लगा सकते हैं। जल्दी पता चलने से किसान समय पर रोकथाम के उपाय कर सकते हैं, जिससे पैदावार का नुकसान कम होता है और कीटनाशकों का इस्तेमाल भी कम होता है।

3. पोषक तत्वों का सटीक प्रबंधन-खेतों में पोषक तत्वों की कमी अक्सर असमान रूप से होती है। ड्रोन से तैयार किए गए वेजिटेशन इंडेक्स, जैसे कि नॉर्मलाइज्ड डिफरेंस वेजिटेशन इंडेक्स (NDVI), फसल की मजबूती का आकलन करने और पोषक तत्वों की कमी वाले क्षेत्रों की पहचान करने में मदद करते हैं। यह जानकारी खास जगहों पर खाद डालने में मदद करती है, जिससे पोषक तत्वों के इस्तेमाल की क्षमता बेहतर होती है और अनावश्यक खाद का इस्तेमाल कम होता है।

4. कीटनाशकों का सटीक छिड़काव- आधुनिक कृषि ड्रोन रसायनों की कम से कम बर्बादी के साथ लक्षित क्षेत्रों में समान रूप से कीटनाशकों का छिड़काव कर सकते हैं। छिड़काव के पारंपरिक तरीकों की तुलना में, ड्रोन से छिड़काव करने पर मजदूरों की जरूरत कम होती है, ऑपरेटर का खतरनाक रसायनों से संपर्क कम होता है, और छिड़काव की क्षमता बेहतर होती है, खासकर उन खेतों में जहाँ पहुँचना मुश्किल हो या जहाँ पानी भरा हो।

5. सिंचाई प्रबंधन- थर्मल इमेजिंग की मदद से ड्रोन सब्जी के खेतों में नमी के अंतर का पता लगा सकते हैं। किसान पानी की कमी या ज्यादा नमी वाले क्षेत्रों की पहचान कर सकते हैं और उसी के अनुसार सिंचाई का समय तय कर सकते हैं। पानी का कुशल प्रबंधन संसाधनों को बचाता है और साथ ही फसल की सेहत और उत्पादकता में सुधार करता है।

6. पैदावार का अनुमान- ड्रोन से ली गई तस्वीरों और आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस-आधारित विश्लेषण से फसल के बायोमास, पौधों की संख्या, कैनोपी कवरेज (पौधों के फैलाव) और संभावित पैदावार का अनुमान लगाया जा सकता है। पैदावार का सटीक अनुमान किसानों को कटाई के समय, भंडारण, परिवहन और बाज़ार में आपूर्ति की योजना बनाने में मदद करता है।

7. खरपतवार की पहचान- उन्नत इमेज एनालिसिस तकनीकों की मदद से ड्रोन खरपतवार और सब्जी की फसलों के बीच अंतर कर सकते हैं। इससे खास जगहों पर खरपतवार नाशक दवा डालने या यांत्रिक तरीके से खरपतवार हटाने में आसानी होती है, जिससे उत्पादन लागत कम होती है और पर्यावरण प्रदूषण भी कम होता है।

ड्रोन टेक्नोलॉजी के फायदे

सब्जी उगाने वालों के लिए ड्रोन अपनाने के कई फायदे हैं-

- * खेती की बड़ी जगहों की तेजी से निगरानी।
- * कीड़ों, बीमारियों और पोषक तत्वों की कमी का जल्दी पता लगाना।
- * मजदूरी और काम-काज की लागत में कमी।
- * खाद और कीटनाशक के इस्तेमाल में बेहतर सटीकता।
- * पानी के इस्तेमाल की बेहतर क्षमता।
- * फसल की ज्यादा पैदावार और बेहतर कालिटी।
- * सही मात्रा में इनपुट के इस्तेमाल से पर्यावरण प्रदूषण में कमी।
- * डिजिटल डेटा का इस्तेमाल करके खेत का रिकॉर्ड रखने और फसल लेने में सुधार।

चुनौतियाँ

फायदों के बावजूद, कई रुकावटें सब्जी की खेती में ड्रोन को बड़े पैमाने पर अपनाने में बाधा डालती हैं-

- * शुरुआत में ज्यादा निवेश और रखरखाव का खर्च।
- * किसानों में तकनीकी जानकारी की कमी।
- * बैटरी लाइफ और काम करने की रेंज की सीमाएं।
- * मौसम की स्थिति का ड्रोन की उड़ानों पर असर।
- * ड्रोन के इस्तेमाल से जुड़े नियम-कानून।
- * ग्रामीण इलाकों में कुशल सर्विस देने वालों तक सीमित पहुँच।

किसानों को ट्रेनिंग, आर्थिक मदद, तकनीकी तरक्की और सरकार की सहयोगी नीतियों के जरिए इन चुनौतियों का समाधान करने से ड्रोन-आधारित खेती को तेजी से अपनाया जा सकेगा।

निष्कर्ष-ड्रोन टेक्नोलॉजी सटीक, समय पर और डेटा-आधारित खेत प्रबंधन को संभव बनाकर आधुनिक सब्जी उत्पादन के लिए एक क्रांतिकारी उपकरण के रूप में उभरी है। फसल की निगरानी, कीड़ों और बीमारियों का पता लगाने, पोषक तत्वों के प्रबंधन, सिंचाई की योजना बनाने, सटीक छिड़काव और पैदावार का अनुमान लगाने में इसके इस्तेमाल से उत्पादन क्षमता में काफी सुधार होता है, साथ ही मजदूरी, इनपुट लागत और पर्यावरण पर पड़ने वाले असर में भी कमी आती है। हालाँकि लागत, तकनीकी विशेषज्ञता और नियमों से जुड़ी चुनौतियाँ अभी भी बनी हुई हैं, लेकिन लगातार तकनीकी तरक्की और बढ़ती जागरूकता से इसे बड़े पैमाने पर अपनाए जाने की उम्मीद है। सटीक खेती के तरीकों के साथ ड्रोन टेक्नोलॉजी को जोड़ने से सब्जी की उत्पादकता बढ़ाने, संसाधनों के संरक्षण को सुनिश्चित करने और टिकाऊ कृषि विकास में योगदान देने की अपार संभावनाएँ हैं।

Registered with the Registrar of Newspaper for India

R.N.I. Regd. No.: MPHIN/2006/16946

94251-01132



ISSN-2582-5976

Supported by:

Ksaan
Helpline
+91-7415538151

मध्य भारत

READ FOR ONLINE EDITION

Website: www.krishakbharti.in

E-mail: bhartikrishak75@gmail.com

कृषक भारती

हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली मासिक पत्रिका

वर्ष-21 अंक-5

ग्वालियर, अगस्त 2026

मूल्य 30 रुपए

कृषक समृद्धि का संकल्प, आत्मनिर्भर भारत का विकल्प



तकनीक से तरक्की
किसान की प्रगति



मजबूत किसान
मजबूत भारत



उन्नत खेती
अधिक उपज



जल संरक्षण
भविष्य सुरक्षित



आधुनिक तकनीक
किसान के साथ



बेहतर बाजार
उचित मूल्य



मिट्टी की खुशहाली किसान की समृद्धि



जल है तो कल है
हर बूंद की रक्षा,
हर खेत की सुरक्षा



महिला शक्ति
कृषि की नई पहचान,
सशक्त किसान, सशक्त देश



पशुपालन से समृद्धि
स्वस्थ पशु, बेहतर उत्पादन,
आत्मनिर्भर किसान



देवरानी गुप्ता शोध (छात्रा), बाँदा कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय (BUAT) (उ.प्र.)

शिवानी शर्मा पीएच.डी. शोधार्थी, सस्य विज्ञान विभाग, भारतीय मृदा विज्ञान संस्थान (आई.आई.एस.एम.), भोपाल (म.प्र.)

धान की वैज्ञानिक खेती

कीट प्रतिरोधी तथा स्थानीय परिस्थितियों के अनुकूल किस्मों को प्राथमिकता देनी चाहिए।

3. बीज की मात्रा एवं बीज उपचार

बचाव होता है और पौधों की अच्छी स्थापना होती है।

4. नर्सरी एवं रोपाई

नर्सरी के लिए अच्छी जल निकासी वाले स्थान का चयन करें। पौध की उचित उम्र पर रोपाई करनी चाहिए। सामान्यतः एक स्थान पर 2-3 स्वस्थ पौध लगाना और कतारों में उचित दूरी रखना बेहतर रहता है। बहुत घनी रोपाई से बचना चाहिए।

5. उर्वरक प्रबंधन

मृदा परीक्षण के आधार पर नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटाश का प्रयोग करना चाहिए। नाइट्रोजन को एक साथ देने के बजाय विभाजित मात्रा में देना अधिक प्रभावी होता है। आवश्यकता के अनुसार जिनक जैसे सूक्ष्म पोषक तत्वों का प्रयोग भी करना चाहिए।

6. सिंचाई एवं जल प्रबंधन

धान में लगातार अत्यधिक पानी भरा रखना आवश्यक नहीं है। खेत में आवश्यकतानुसार सिंचाई तथा कुछ समय के लिए पानी निकासी की व्यवस्था करने से जल की बचत होती है और जड़ों का बेहतर विकास है।



धान भारत की प्रमुख खाद्यान्न फसलों में से एक है। इसकी वैज्ञानिक खेती अपनाकर कम लागत में अधिक उत्पादन, बेहतर गुणवत्ता तथा जल और उर्वरकों का उचित उपयोग किया जा सकता है।

1. भूमि का चयन एवं तैयारी

धान की खेती के लिए दोमट या चिकनी-दोमट मिट्टी उपयुक्त होती है, जिसमें जल धारण क्षमता अच्छी हो। खेत को अच्छी तरह समतल करके तैयार करना चाहिए। रोपाई वाली खेती में खेत में पर्याप्त पानी भरकर पडलिंग करने से खरपतवार नियंत्रण और पानी की बचत में सहायता मिलती है।

2. उन्नत किस्म का चयन

क्षेत्र की जलवायु, मिट्टी और सिंचाई की उपलब्धता के अनुसार प्रमाणित एवं उन्नत किस्म का चयन करना चाहिए। कम अवधि वाली, रोग-



Registered with the Registrar of Newspaper for India

R.N.I. Regd. No.: MPHIN/2006/16946

94251-01132

Supported by:

Ksaan
Helpline
+91-7415538151



ISSN-2582-5976

मध्य भारत

कृषक भारती

हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली मासिक पत्रिका

READ FOR ONLINE EDITION

Website: www.krishakbharti.in

E-mail: bhartikrishak75@gmail.com

वर्ष-21 अंक-5

ग्वालियर, अगस्त 2026

मूल्य 30 रुपए

कृषक समृद्धि का संकल्प, आत्मनिर्भर भारत का विकल्प



तकनीक से तरक्की
किसान की प्रगति



मजबूत किसान
मजबूत भारत



उन्नत खेती
अधिक उपज



जल संरक्षण
भविष्य सुरक्षित



आधुनिक तकनीक
किसान के साथ



बेहतर बाजार
उचित मूल्य

मिट्टी की खुशहाली किसान की समृद्धि



जल है तो कल है
हर बूंद की रक्षा,
हर खेत की सुरक्षा



महिला शक्ति
कृषि की नई पहचान,
सशक्त किसान, सशक्त देश



पशुपालन से समृद्धि
स्वस्थ पशु, बेहतर उत्पादन,
आत्मनिर्भर किसान



✍ **इब्राहीम** सहायक प्राध्यापक, कृषि विज्ञान विभाग, विश्वेश्वरैया इंस्टीट्यूट ऑफ इंजीनियरिंग एंड टेक्नोलॉजी (0812) दादरी, जी.बी.नगर 201314

✍ **हेमांशु कुमार** बीएससी (कृषि) ऑनर्स, विश्वेश्वरैया इंस्टीट्यूट ऑफ इंजीनियरिंग एंड टेक्नोलॉजी (0812) दादरी, जी.बी. नगर 201314

✍ **खुशी कुमारी** बीएससी (कृषि) ऑनर्स, विश्वेश्वरैया इंस्टीट्यूट ऑफ इंजीनियरिंग एंड टेक्नोलॉजी (0812) दादरी, जी.बी. नगर 201314

प्रस्तावना

कृषि की सफलता का आधार स्वस्थ एवं उपजाऊ मृदा है। किसान अच्छी गुणवत्ता के बीज, सिंचाई, उर्वरक और आधुनिक तकनीक का उपयोग करें, लेकिन यदि मृदा का स्वास्थ्य खराब है तो अपेक्षित उत्पादन प्राप्त करना कठिन हो सकता है। इसलिए वर्तमान समय में कृषि उत्पादन बढ़ाने के साथ-साथ मृदा की उत्पादकता को लंबे समय तक बनाए रखना अत्यंत आवश्यक है। मृदा केवल पौधों को सहारा देने वाला माध्यम नहीं है। इसमें अनेक सूक्ष्मजीव, केंचुए, कार्बनिक पदार्थ, खनिज और पोषक तत्व पाए जाते हैं। इन सभी के बीच संतुलन फसल की वृद्धि और उत्पादकता के लिए महत्वपूर्ण है। मृदा स्वास्थ्य को बनाए रखना इसलिए भी जरूरी है क्योंकि खराब मृदा स्वास्थ्य का सीधा प्रभाव किसान की उत्पादन लागत, उपज और आय पर पड़ सकता है।

मृदा स्वास्थ्य क्या है?

मृदा स्वास्थ्य से आशय मृदा की उस क्षमता से है जिसके द्वारा वह पौधों की वृद्धि के लिए आवश्यक भौतिक, रासायनिक और जैविक परिस्थितियों को बनाए रखती है। एक स्वस्थ मृदा में पर्याप्त जैविक पदार्थ, उचित संरचना, पोषक तत्वों का संतुलन, उचित जलधारण क्षमता और लाभकारी सूक्ष्मजीवों की सक्रियता होती है। मृदा स्वास्थ्य को केवल नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटैश की मात्रा से नहीं समझा जा सकता। मृदा की भौतिक संरचना, जैविक गतिविधि और सूक्ष्म पोषक तत्व भी उतने ही महत्वपूर्ण हैं।

मृदा परीक्षण का महत्व

मृदा स्वास्थ्य प्रबंधन की शुरुआत मृदा परीक्षण से होनी चाहिए। किसान बिना परीक्षण के बार-बार एक ही उर्वरक डालते रहें तो पोषक तत्वों का असंतुलन हो सकता है।

मृदा परीक्षण से मृदा की पोषक स्थिति तथा कुछ महत्वपूर्ण रासायनिक गुणों की जानकारी प्राप्त होती है। इसके आधार पर फसल की आवश्यकता के अनुसार उर्वरक प्रबंधन किया जा सकता है।

इससे किसानों को अनावश्यक उर्वरक खरीदने पर होने वाले खर्च को कम करने में सहायता मिल सकती है और उपलब्ध पोषक तत्वों का अधिक प्रभावी उपयोग किया जा सकता है।

संतुलित उर्वरक प्रबंधन

पौधों को केवल नाइट्रोजन की आवश्यकता नहीं होती।

मृदा स्वास्थ्य एवं उर्वरता प्रबंधन का कृषि उत्पादन में महत्व

फास्फोरस, पोटैश के साथ-साथ सल्फर, जिंक, आयरन, बोरॉन और अन्य सूक्ष्म पोषक तत्व भी आवश्यक होते हैं।

किसानों को 4R सिद्धांत—सही स्रोत, सही मात्रा, सही समय और सही स्थान के आधार पर उर्वरक उपयोग की दिशा में आगे बढ़ना चाहिए।

अत्यधिक नाइट्रोजन देने से हमेशा उत्पादन में समान अनुपात में वृद्धि नहीं होती। इससे फसल में अत्यधिक vegetative growth, कुछ कीट एवं रोगों की समस्या और आर्थिक नुकसान की संभावना बढ़ सकती है।

जैविक पदार्थ का महत्व

मृदा में जैविक पदार्थ उसकी गुणवत्ता बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। गोबर की सड़ी हुई खाद, कम्पोस्ट, वर्मी कम्पोस्ट, हरी खाद और उचित रूप से प्रबंधित फसल अवशेष मृदा में जैविक पदार्थ बढ़ाने में सहायक हो सकते हैं।

फसल अवशेषों को जलाने के बजाय उनका उचित प्रबंधन करना अधिक उपयोगी है। अवशेषों को कम्पोस्ट बनाकर या उपयुक्त तकनीक से मिट्टी में मिलाकर पोषक तत्वों के पुनर्चक्रण में सहायता ली जा सकती है।

फसल चक्र और मृदा स्वास्थ्य

एक ही फसल को लगातार उगाने से मृदा पर एक विशेष प्रकार का दबाव पड़ सकता है। इसके अलावा कुछ कीट एवं रोगों की समस्या भी बढ़ सकती है।

फसल चक्र में अनाज के साथ दलहन और तिलहन जैसी फसलों को शामिल करने से मृदा संसाधनों का बेहतर उपयोग किया जा सकता है। दलहनी फसलें जैविक नाइट्रोजन स्थिरीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

फसल विविधीकरण से किसान की आय के स्रोतों में भी विविधता आती है और एक फसल के खराब होने पर दूसरी फसल से कुछ आर्थिक सुरक्षा मिल सकती है।

मृदा में सूक्ष्मजीवों की भूमिका

मृदा में करोड़ों सूक्ष्मजीव पाए जाते हैं। ये कार्बनिक पदार्थों के अपघटन, पोषक तत्वों के चक्रण और पौधों को कुछ पोषक तत्व उपलब्ध कराने में भूमिका निभाते हैं। अत्यधिक और अनुचित कृषि रसायनों के उपयोग तथा खराब मृदा प्रबंधन से मृदा की जैविक गतिविधि प्रभावित हो सकती है। इसलिए जैविक पदार्थों का उपयोग, फसल विविधीकरण और संतुलित कृषि रसायन प्रबंधन मृदा जैविक स्वास्थ्य के लिए महत्वपूर्ण हैं।

जल प्रबंधन और मृदा स्वास्थ्य

मृदा स्वास्थ्य का संबंध पानी से भी है। अधिक सिंचाई से जलभराव, लवणता और पोषक तत्वों के

नुकसान की समस्या हो सकती है, जबकि कम सिंचाई से फसल तनाव में आ सकती है। ड्रिप एवं स्प्रिंकलर जैसी सूक्ष्म सिंचाई तकनीकों का उपयोग परिस्थितियों के अनुसार जल उपयोग दक्षता बढ़ाने में सहायक हो सकता है। किसान को सिंचाई फसल की अवस्था, मृदा की नमी और स्थानीय मौसम को ध्यान में रखकर करनी चाहिए।



मृदा अपरदन की रोकथाम

मृदा अपरदन कृषि भूमि के लिए गंभीर समस्या है। तेज वर्षा या हवा के कारण उपजाऊ ऊपरी मिट्टी का नुकसान हो सकता है। फसल अवशेषों का उचित प्रबंधन, खेत की मेड़बंदी, आवरण फसलें, वृक्ष आधारित कृषि और ढलान वाले क्षेत्रों में उचित भूमि प्रबंधन जैसी तकनीकें मृदा संरक्षण में उपयोगी हो सकती हैं।

किसानों के लिए आर्थिक महत्व

मृदा स्वास्थ्य का सीधा संबंध किसान की अर्थव्यवस्था से है। यदि किसान मृदा परीक्षण के आधार पर उर्वरकों का उपयोग करता है तो अनावश्यक इनपुट लागत को नियंत्रित किया जा सकता है। स्वस्थ मृदा में फसल की जड़ वृद्धि और पोषक तत्वों के उपयोग की स्थिति बेहतर हो सकती है। इससे लंबे समय में कृषि उत्पादन की स्थिरता बनाए रखने में सहायता मिलती है।

किसानों के लिए प्रमुख सुझाव

- * नियमित रूप से मृदा परीक्षण कराएं।
- * मृदा परीक्षण के अनुसार उर्वरकों का प्रयोग करें।
- * जैविक खाद और कम्पोस्ट का उचित उपयोग करें।
- * फसल अवशेष न जलाएं; उनका प्रबंधन करें।
- * फसल चक्र एवं फसल विविधीकरण अपनाएं।
- * सिंचाई का संतुलित उपयोग करें।
- * आवश्यकता के अनुसार सूक्ष्म पोषक तत्वों का प्रयोग करें।
- * मृदा अपरदन को रोकने के उपाय अपनाएं।

निष्कर्ष

मृदा किसान की सबसे महत्वपूर्ण प्राकृतिक पूंजी है। एक बार मृदा की गुणवत्ता खराब होने पर उसे सुधारने में समय और संसाधन लगते हैं। इसलिए "मृदा बचाएं, उत्पादन बचाएं और किसान की आय बचाएं" के सिद्धांत को कृषि विकास का हिस्सा बनाया जाना चाहिए। मृदा परीक्षण, संतुलित पोषण, जैविक पदार्थों का उपयोग, फसल चक्र, जल संरक्षण और उचित भूमि प्रबंधन के माध्यम से किसान अपनी मृदा को लंबे समय तक स्वस्थ रख सकते हैं। स्वस्थ मृदा ही टिकाऊ कृषि और किसान कल्याण की मजबूत नींव है।



अंकित कुमार सहायक प्राध्यापक,
कृषि विज्ञान विभाग, विश्वेश्वरैया इंस्टीट्यूट ऑफ
इंजीनियरिंग एंड टेक्नोलॉजी (0812) दादरी,
जी.बी.नगर 201314

जैविक खेती : स्वस्थ मृदा और सुरक्षित खाद्य उत्पादन की दिशा में कदम

प्रस्तावना

भारत की अर्थव्यवस्था और ग्रामीण जीवन में कृषि का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। देश की बड़ी आबादी प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से कृषि पर निर्भर है। हरित क्रांति के बाद रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों, सिंचाई और उन्नत किस्मों के प्रयोग से खाद्यान्न उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि हुई। हालांकि, लंबे समय तक रासायनिक आदानों के असंतुलित एवं अत्यधिक प्रयोग से मृदा स्वास्थ्य, जैव विविधता, जल संसाधनों और कृषि की दीर्घकालिक स्थिरता से जुड़ी चिंताएँ भी सामने आई हैं। ऐसी परिस्थितियों में जैविक खेती एक महत्वपूर्ण और टिकाऊ कृषि पद्धति के रूप में उभर रही है।

जैविक खेती का उद्देश्य केवल रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशकों का प्रयोग बंद करना नहीं है, बल्कि ऐसी कृषि प्रणाली विकसित करना है जिसमें मृदा, पौधे, पशु, पर्यावरण और किसान-सभी के स्वास्थ्य एवं हितों का संतुलन बना रहे। इसमें जैविक खाद, कम्पोस्ट, वर्मी कम्पोस्ट, हरी खाद, जैव उर्वरक, जैव कीटनाशक, फसल चक्र और प्राकृतिक संसाधनों के समुचित उपयोग पर विशेष जोर दिया जाता है।

जैविक खेती की अवधारणा

जैविक खेती ऐसी कृषि प्रणाली है जिसमें प्राकृतिक एवं जैविक संसाधनों का उपयोग करके फसल उत्पादन किया जाता है। इसमें खेत की उर्वरता बनाए रखने के लिए गोबर की खाद, कम्पोस्ट, वर्मी कम्पोस्ट, हरी खाद और फसल अवशेषों का उपयोग किया जाता है। नाइट्रोजन स्थिरीकरण करने वाले जैव उर्वरक जैसे राइजोबियम, एजोटोबैक्टर और एजोस्फिरिलम तथा फास्फोरस उपलब्ध कराने वाले सूक्ष्मजीवी उत्पाद भी उपयोगी हो सकते हैं। इसी प्रकार कीट एवं रोग प्रबंधन में नीम आधारित उत्पाद, Trichoderma, Beauveria bassiana, Metarhizium anisopliae और Bacillus thuringiensis जैसे जैविक साधनों का उपयोग परिस्थितियों के अनुसार किया जा सकता है।

जैविक खेती और मृदा स्वास्थ्य

मृदा केवल पौधे को सहारा देने वाला माध्यम नहीं है, बल्कि यह एक जीवंत पारिस्थितिकी तंत्र है। इसमें सूक्ष्मजीव, केंचुए, कार्बनिक पदार्थ और अनेक प्रकार के जीव पाए जाते हैं। स्वस्थ मृदा में पर्याप्त जैविक पदार्थ, उचित संरचना, जलधारण क्षमता और पोषक तत्वों का संतुलन होना आवश्यक है।

जैविक खाद और कम्पोस्ट के प्रयोग से मृदा में कार्बनिक पदार्थ बढ़ने में सहायता मिलती है। इससे मृदा की संरचना तथा जलधारण क्षमता में सुधार हो सकता है। जैविक पदार्थ सूक्ष्मजीवों के लिए ऊर्जा का स्रोत भी प्रदान करते हैं।

किसानों को अपनी मृदा की स्थिति जानने के लिए



नियमित रूप से मृदा परीक्षण कराना चाहिए। मृदा परीक्षण के आधार पर पोषक तत्वों की आवश्यकता निर्धारित करके जैविक एवं अन्य उर्वरक स्रोतों का संतुलित उपयोग किया जा सकता है।

फसल चक्र का महत्व

जैविक खेती में फसल चक्र का विशेष महत्व है। यदि किसान लगातार एक ही फसल उगाते हैं तो कुछ विशेष पोषक तत्वों की कमी तथा कीट एवं रोगों की समस्या बढ़ सकती है। इसके विपरीत, अनाज, दलहन, तिलहन और अन्य फसलों को उचित क्रम में शामिल करने से मृदा की उर्वरता और कृषि प्रणाली की स्थिरता बनाए रखने में सहायता मिल सकती है।

दलहनी फसलें वायुमंडलीय नाइट्रोजन को जैविक रूप से स्थिर करने में मदद करती हैं। इसलिए फसल चक्र में दलहनी फसलों को शामिल करना मृदा पोषण के लिए लाभकारी हो सकता है।

जैविक खेती में कीट एवं रोग प्रबंधन

जैविक खेती में कीटों के नियंत्रण के लिए केवल किसी एक उपाय पर निर्भर नहीं किया जाता। खेत की नियमित निगरानी, स्वस्थ बीज, फसल विविधीकरण, फेरोमोन ट्रैप, पीले चिपचिपे ट्रैप, प्रकाश प्रपंच, प्राकृतिक शत्रुओं का संरक्षण और आवश्यकता के अनुसार जैव कीटनाशकों का उपयोग किया जा सकता है। किसानों को कीट दिखाई देने पर तुरंत किसी भी उत्पाद का छिड़काव करने के बजाय पहले यह पता लगाना चाहिए कि कीट की संख्या आर्थिक क्षति स्तर तक पहुंची है या नहीं। इससे अनावश्यक खर्च और कृषि रसायनों के अनुचित उपयोग को कम किया जा सकता है।

जैविक खेती से किसानों को लाभ

जैविक खेती का एक महत्वपूर्ण लाभ यह है कि किसान खेत पर उपलब्ध संसाधनों का बेहतर उपयोग कर सकते हैं।

गोबर, फसल अवशेष और अन्य जैविक पदार्थों को अपशिष्ट मानने के बजाय उपयोगी कृषि संसाधन में बदला जा सकता है।

यदि किसान अपने खेत पर कम्पोस्ट या अन्य जैविक खाद तैयार करते हैं, तो बाहरी आदानों पर निर्भरता कम करने में सहायता मिल सकती है। इसके अतिरिक्त, विविध फसलों को अपनाने से किसान की आय के स्रोतों में भी विविधता आ सकती है।

जैविक उत्पादों के लिए उपभोक्ताओं में बढ़ती जागरूकता के कारण कुछ बाजारों में प्रमाणित जैविक उत्पादों को बेहतर मूल्य मिल सकता है। हालांकि, किसानों को जैविक उत्पादन शुरू करने से पहले बाजार, प्रमाणन और बिक्री व्यवस्था की जानकारी अवश्य प्राप्त करनी चाहिए।

जैविक खेती की चुनौतियाँ

जैविक खेती के सामने कई चुनौतियाँ भी हैं। जैविक खाद की पर्याप्त मात्रा, गुणवत्तापूर्ण जैविक इनपुट की उपलब्धता, कीट एवं रोगों का प्रभावी प्रबंधन, प्रमाणन की प्रक्रिया, बाजार तक पहुंच और उपज की बिक्री प्रमुख चुनौतियों में शामिल हैं। कुछ परिस्थितियों में जैविक खेती में संक्रमण अवधि के दौरान उत्पादन में कमी आ सकती है। इसलिए किसानों को अचानक पूरी कृषि प्रणाली बदलने के बजाय वैज्ञानिक सलाह और स्थानीय परिस्थितियों के आधार पर चरणबद्ध तरीके से बदलाव करना चाहिए।

किसानों के लिए व्यावहारिक सुझाव

किसान जैविक खेती की शुरुआत अपने खेत के एक छोटे हिस्से से कर सकते हैं। सबसे पहले मृदा परीक्षण कराना, जैविक खाद की व्यवस्था करना और फसल अवशेषों का उचित प्रबंधन करना उपयोगी कदम हैं। किसानों को प्रमाणित एवं गुणवत्तापूर्ण जैविक इनपुट का ही उपयोग करना चाहिए। किसी भी जैविक उत्पाद को केवल 'प्राकृतिक' होने के कारण पूरी तरह सुरक्षित या प्रभावी मान लेना उचित नहीं है। उत्पाद के लेबल और कृषि विशेषज्ञ की सलाह के अनुसार इसका प्रयोग करना चाहिए।

निष्कर्ष

जैविक खेती स्वस्थ मृदा, सुरक्षित खाद्य उत्पादन और पर्यावरण संरक्षण की दिशा में महत्वपूर्ण कदम है। यह किसानों को स्थानीय संसाधनों के बेहतर उपयोग और टिकाऊ कृषि प्रणाली की ओर ले जा सकती है। स्वस्थ मृदा, स्वस्थ फसल और स्वस्थ किसान-जैविक खेती का मूल उद्देश्य होना चाहिए। यदि जैविक खेती को वैज्ञानिक ज्ञान, गुणवत्तापूर्ण इनपुट, उचित बाजार और प्रभावी कृषि विस्तार सेवाओं के साथ जोड़ा जाए, तो यह किसानों के दीर्घकालिक कल्याण में महत्वपूर्ण योगदान दे सकती है।



✍ **इक्तेदार एमएससी (कृषि)** पादप रोग विज्ञान, पादप संरक्षण विभाग, चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ उत्तर प्रदेश (250004)

✍ **विशाल यादव पीएचडी शोधार्थी** पशुपालन एवं दुग्ध विज्ञान विभाग, चंद्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय कानपुर उ.प्र.

✍ **चौधरी शादान एमएससी (कृषि)** कीट विज्ञान, पादप संरक्षण विभाग, चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ उत्तर प्रदेश (250004)

✍ **इब्राहीम सहायक प्रोफेसर, सस्य** विज्ञान, कृषि विज्ञान विभाग, विश्वेश्वरैया इंस्टीट्यूट ऑफ इंजीनियरिंग एंड टेक्नोलॉजी

प्रस्तावना: 21वीं सदी में तकनीक हमारे जीवन के लगभग प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित कर रही है और कृषि भी इससे अछूती नहीं है। बढ़ती जनसंख्या, जल संसाधनों पर दबाव, जलवायु परिवर्तन, श्रम की कमी और कृषि लागत में वृद्धि जैसी चुनौतियों के बीच किसानों के लिए ऐसी तकनीकों की आवश्यकता है जो उपलब्ध संसाधनों का अधिक कुशल उपयोग करने में मदद करें। इसी आवश्यकता से स्मार्ट कृषि और डिजिटल कृषि का विकास हुआ है। मोबाइल फोन, इंटरनेट, GPS, सेंसर, ड्रोन, सैटेलाइट इमेजरी, मौसम डेटा, कृत्रिम बुद्धिमत्ता और डिजिटल बाजार प्लेटफॉर्म कृषि को नई दिशा दे रहे हैं।

स्मार्ट कृषि की अवधारणा

* स्मार्ट कृषि का अर्थ ऐसी कृषि प्रणाली से है जिसमें आधुनिक तकनीक और डेटा की सहायता से खेत की परिस्थितियों के अनुसार बेहतर निर्णय लिए जाते हैं।

* परंपरागत खेती में किसान अपने अनुभव के आधार पर सिंचाई, उर्वरक और कीट नियंत्रण का निर्णय लेते हैं। स्मार्ट कृषि में किसान के अनुभव के साथ मिट्टी की नमी, मौसम, फसल की अवस्था और अन्य आंकड़ों को भी निर्णय प्रक्रिया में शामिल किया जा सकता है।

मोबाइल और इंटरनेट की भूमिका

* आज मोबाइल फोन किसानों के लिए कृषि सूचना का महत्वपूर्ण माध्यम बन चुका है। किसान मोबाइल के माध्यम से मौसम की जानकारी, कृषि सलाह, मंडी भाव और विभिन्न सरकारी कृषि योजनाओं से संबंधित जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

* स्थानीय भाषा में उपलब्ध डिजिटल कृषि सामग्री किसानों के लिए अधिक उपयोगी हो सकती है। यदि किसान को उसकी अपनी भाषा में सरल और विश्वसनीय जानकारी समय पर मिलती है, तो वह कृषि संबंधी निर्णय अधिक प्रभावी तरीके से ले सकता है।

मौसम आधारित कृषि सलाह

मौसम का कृषि उत्पादन पर सीधा प्रभाव पड़ता है। अत्यधिक वर्षा, सूखा, तेज हवा, तापमान में अचानक परिवर्तन और अन्य मौसमीय घटनाएं फसलों को प्रभावित कर सकती हैं।

स्मार्ट कृषि एवं डिजिटल तकनीकः खेती का बदलता स्वरूप

मौसम आधारित डिजिटल सलाह किसानों को सिंचाई, बुवाई, कटाई तथा कुछ कृषि कार्यों के समय निर्धारण में सहायता कर सकती है। इससे मौसम आधारित जोखिमों को कम करने में मदद मिल सकती है।

सेंसर और इंटरनेट ऑफ थिंग्स

* मृदा नमी सेंसर जैसे उपकरण खेत में उपलब्ध नमी की जानकारी दे सकते हैं। किसान इस जानकारी के आधार पर सिंचाई का निर्णय ले सकता है।

* भविष्य में विभिन्न सेंसरों को इंटरनेट से जोड़कर खेत की वास्तविक समय की जानकारी प्राप्त करना और अधिक आसान हो सकता है। इससे पानी एवं अन्य संसाधनों का अधिक कुशल उपयोग संभव हो सकता है।

स्मार्ट सिंचाई

* कृषि में पानी एक महत्वपूर्ण संसाधन है। कई क्षेत्रों में भूजल स्तर में कमी और सिंचाई लागत बढ़ना गंभीर समस्या बन रही है। * स्मार्ट सिंचाई प्रणाली मृदा की नमी, मौसम और फसल की आवश्यकता के आधार पर पानी की आपूर्ति को नियंत्रित करने में सहायता कर सकती है। ड्रिप और स्प्रिंकलर जैसी सूक्ष्म सिंचाई प्रणालियों के साथ डिजिटल निगरानी को जोड़ा जाए तो जल उपयोग दक्षता बढ़ाने की संभावना रहती है।

डिजिटल तकनीक और कीट प्रबंधन

डिजिटल तकनीक की सहायता से खेत की तस्वीर लेकर फसल की स्थिति का विश्लेषण किया जा सकता है। भविष्य में AI आधारित सिस्टम कीट एवं रोगों के प्रारंभिक लक्षणों की पहचान में सहायता कर सकते हैं। हालांकि किसान को किसी डिजिटल सलाह के आधार पर तुरंत कीटनाशक का प्रयोग नहीं करना चाहिए। कीट की पहचान और प्रकोप की पुष्टि कृषि विशेषज्ञ की सलाह से करना अधिक उचित है।

डिजिटल बाजार और किसान

* कृषि में केवल उत्पादन बढ़ाना पर्याप्त नहीं है। किसान को अपनी उपज का उचित बाजार और मूल्य भी मिलना आवश्यक है। * डिजिटल बाजार प्लेटफॉर्म किसानों को विभिन्न बाजारों में उपलब्ध कीमतों की जानकारी प्राप्त करने में सहायता कर सकते हैं। इससे किसान अपनी उपज बेचने के संबंध में बेहतर निर्णय ले सकते हैं।

* किसान उत्पादक संगठन (FPO) भी डिजिटल तकनीक का उपयोग करके सामूहिक विपणन, खरीदारों से संपर्क और कृषि जानकारी साझा करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

छोटे और सीमांत किसानों के लिए स्मार्ट कृषि

* भारत में बड़ी संख्या में किसान छोटे और सीमांत हैं। इसलिए स्मार्ट कृषि का विकास केवल बड़े किसानों को ध्यान में रखकर नहीं किया जाना चाहिए।

* महंगे उपकरणों को व्यक्तिगत रूप से खरीदना छोटे किसानों के लिए कठिन हो सकता है। ऐसे में कस्टम हायरिंग सेंटर, FPO और सेवा प्रदाता कंपनियों के माध्यम से ड्रोन, सेंसर और अन्य तकनीकों को सेवा के रूप में उपलब्ध कराना अधिक उपयोगी हो

सकता है।

स्मार्ट कृषि के लाभ

स्मार्ट कृषि से किसानों को कई संभावित लाभ हो सकते हैं—



- * कृषि निर्णयों में वैज्ञानिक जानकारी का उपयोग
- * पानी और उर्वरक का बेहतर प्रबंधन
- * श्रम की आवश्यकता में संभावित कमी
- * मौसम संबंधी जोखिमों की बेहतर तैयारी
- * कीट एवं रोगों की प्रारंभिक पहचान में सहायता
- * उत्पादन लागत को नियंत्रित करने में सहायता
- * बाजार संबंधी जानकारी तक बेहतर पहुंच
- * कृषि संसाधनों का अधिक कुशल उपयोग

चुनौतियाँ * डिजिटल कृषि के सामने डिजिटल साक्षरता, इंटरनेट कनेक्टिविटी, उपकरणों की लागत, डेटा की गुणवत्ता और स्थानीय भाषा में विश्वसनीय सलाह की उपलब्धता जैसी चुनौतियाँ हैं। * किसानों को गलत या अपूर्ण डिजिटल जानकारी से बचना भी आवश्यक है। कृषि सलाह देने वाले डिजिटल प्लेटफॉर्म पर वैज्ञानिक संस्थानों और कृषि विशेषज्ञों की भूमिका महत्वपूर्ण है।

किसान कल्याण के लिए आगे की दिशा

* स्मार्ट कृषि का वास्तविक लाभ तभी किसानों तक पहुंचेगा जब तकनीक सस्ती, सरल, स्थानीय भाषा में और आसानी से उपलब्ध हो। गांवों में डिजिटल कृषि प्रशिक्षण केंद्र स्थापित किए जा सकते हैं। * किसानों को केवल उपकरण चलाना सिखाना पर्याप्त नहीं है। उन्हें यह भी समझाना आवश्यक है कि प्राप्त आंकड़ों का कृषि निर्णय में किस प्रकार उपयोग किया जाए।

निष्कर्ष— स्मार्ट कृषि भारतीय कृषि को अधिक वैज्ञानिक, कुशल और टिकाऊ बनाने की क्षमता रखती है। डिजिटल तकनीक किसान के अनुभव का स्थान लेने के बजाय उसे मजबूत करने का माध्यम होनी चाहिए। भविष्य की स्मार्ट खेती वही होगी जिसमें आधुनिक तकनीक और किसान का पारंपरिक अनुभव मिलकर बेहतर निर्णय तैयार करेंगे। यदि डिजिटल कृषि तकनीक को छोटे किसानों तक पहुंचाया जाए और स्थानीय भाषा में वैज्ञानिक सलाह उपलब्ध कराई जाए, तो यह किसान आय, संसाधन दक्षता और कृषि स्थिरता में महत्वपूर्ण योगदान दे सकती है।



✍ **इक्तेदार एमएससी (कृषि)** पादप रोग विज्ञान, पादप संरक्षण विभाग, चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ उत्तर प्रदेश (250004)

✍ **विशाल यादव पीएचडी शोधार्थी** पशुपालन एवं दुग्ध विज्ञान विभाग, चंद्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय कानपुर उ.प्र.

✍ **चौधरी शादान एमएससी (कृषि)** कीट विज्ञान, पादप संरक्षण विभाग, चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ उत्तर प्रदेश (250004)

✍ **इब्राहीम सहायक प्रोफेसर, सस्य** विज्ञान, कृषि विज्ञान विभाग, विश्वेश्वरैया इंस्टीट्यूट ऑफ इंजीनियरिंग एंड टेक्नोलॉजी

प्रस्तावना: कृषि क्षेत्र में आधुनिक तकनीकों का उपयोग तेजी से बढ़ रहा है। इनमें ड्रोन तकनीक एक ऐसी तकनीक है जिसने कृषि कार्यों को देखने और प्रबंधित करने के तरीके में महत्वपूर्ण बदलाव की संभावनाएं पैदा की हैं। ड्रोन एक मानव रहित हवाई यंत्र है जिसे जमीन से नियंत्रित किया जा सकता है। कृषि में इसका उपयोग खेत की निगरानी, फसल की स्थिति का आकलन, मैपिंग और अनुमोदित कृषि कार्यों में छिड़काव जैसी गतिविधियों के लिए किया जा सकता है।

भारत में किसानों के सामने श्रम की उपलब्धता, कृषि लागत, बड़े क्षेत्र की निगरानी और समय पर कृषि कार्य करने जैसी चुनौतियाँ हैं। ऐसे में ड्रोन कुछ परिस्थितियों में उपयोगी तकनीकी समाधान प्रदान कर सकता है।

कृषि में ड्रोन का उपयोग

1. **खेत की निगरानी-** ड्रोन की सहायता से खेत का हवाई निरीक्षण किया जा सकता है। किसान बड़े क्षेत्र में फसल की स्थिति को कम समय में देख सकता है। फसल की असमान वृद्धि, जलभराव, सूखे से प्रभावित क्षेत्र या अन्य समस्याओं की पहचान करने में हवाई तस्वीरें उपयोगी हो सकती हैं।

2. **फसल स्वास्थ्य की निगरानी-** विशेष सेंसर वाले ड्रोन पौधों से संबंधित विभिन्न आंकड़े एकत्र कर सकते हैं। इन आंकड़ों का विश्लेषण करके फसल की स्थिति के बारे में जानकारी प्राप्त की जा सकती है। भविष्य में AI के साथ ड्रोन तकनीक को जोड़कर फसल में तनाव, पोषक तत्वों की कमी और कीट एवं रोग के संभावित क्षेत्रों की पहचान अधिक सटीक रूप से की जा सकती है।

3. **कृषि आदानों का छिड़काव-** कुछ अनुमोदित कृषि उपयोगों में ड्रोन से छिड़काव किया जा सकता है। इससे ऊँची फसल या कठिन क्षेत्रों में किसान/श्रमिक का सीधे संपर्क कम करने में सहायता मिल सकती है। हालाँकि ड्रोन आधारित छिड़काव में लेबल निर्देश, अनुमोदित उपयोग, सही मात्रा, मौसम की स्थिति, उड़ान नियम और सुरक्षा मानकों का पालन आवश्यक है।

कृषि में ड्रोन तकनीक: उपयोग, लाभ एवं भविष्य की संभावनाएं

ड्रोन तकनीक के लाभ

ड्रोन का सबसे महत्वपूर्ण लाभ समय की बचत है। कम समय में बड़े क्षेत्र का निरीक्षण किया जा सकता है।

इसके अलावा

- * श्रम की आवश्यकता कम करने में सहायता
- * खेत की निगरानी आसान
- * समस्या वाले क्षेत्रों की पहचान
- * कृषि कार्यों में समयबद्धता
- * डेटा आधारित कृषि निर्णय
- * कठिन भू-भाग में उपयोग की संभावना
- * संसाधनों के अधिक सटीक उपयोग की संभावना



ड्रोन और किसान की आय

ड्रोन तकनीक का उद्देश्य केवल आधुनिक दिखना नहीं होना चाहिए। इसका वास्तविक उद्देश्य किसान की लागत कम करना, समय बचाना और उत्पादन दक्षता बढ़ाना होना चाहिए।

यदि ड्रोन से किसी समस्या का शुरुआती स्तर पर पता चल जाए तो किसान पूरे खेत में एक समान उपचार करने के बजाय समस्या वाले क्षेत्र पर ध्यान केंद्रित कर सकता है। इससे कुछ परिस्थितियों में इनपुट की बचत हो सकती है।

छोटे किसानों के लिए ड्रोन- भारत में अधिकांश किसान छोटे और सीमांत श्रेणी में आते हैं। उनके लिए व्यक्तिगत रूप से ड्रोन खरीदना महंगा हो सकता है।

इस समस्या का समाधान कस्टम हायरिंग सेंटर, FPO, सहकारी संस्थाओं और ड्रोन सेवा प्रदाताओं के माध्यम से किया जा सकता है। किसान आवश्यकता के अनुसार ड्रोन सेवा किराए पर ले सकता है।

इस मॉडल से तकनीक की लागत कई किसानों में विभाजित हो सकती है।

ड्रोन संचालन में प्रशिक्षण- ड्रोन तकनीक का सही उपयोग प्रशिक्षित व्यक्ति द्वारा किया जाना चाहिए। ऑपरेटर को ड्रोन संचालन, बैटरी प्रबंधन, उड़ान सुरक्षा, मौसम की स्थिति और कृषि उपयोग से संबंधित नियमों की जानकारी होनी चाहिए।

विशेष रूप से कृषि रसायनों के छिड़काव में व्यक्तिगत सुरक्षा उपकरण और उत्पाद के लेबल निर्देशों का पालन करना आवश्यक है।

ड्रोन और पर्यावरण- यदि ड्रोन आधारित कृषि कार्य वैज्ञानिक तरीके से किए जाएं तो कुछ परिस्थितियों में कृषि आदानों के अधिक लक्षित उपयोग की संभावना बढ़ सकती है।

लेकिन ड्रोन अपने आप पर्यावरण-अनुकूल नहीं बन जाता। यदि गलत उत्पाद, गलत मात्रा या अनुचित मौसम में छिड़काव किया जाए तो पर्यावरणीय और स्वास्थ्य जोखिम हो सकते हैं। इसलिए तकनीक का जिम्मेदार उपयोग जरूरी है।

भविष्य की संभावनाएं

* भविष्य में ड्रोन को AI, GPS, GIS और सेंसर तकनीक के साथ जोड़कर अधिक स्मार्ट कृषि प्रणाली विकसित की जा सकती है।

* उदाहरण के लिए, ड्रोन पूरे खेत का सर्वेक्षण कर सकता है, AI प्रभावित क्षेत्र की पहचान कर सकता है और किसान को मोबाइल पर समस्या की जानकारी मिल सकती है। आगे चलकर कुछ कृषि कार्यों में स्वचालन भी बढ़ सकता है।

चुनौतियाँ

* ड्रोन तकनीक की प्रमुख चुनौतियों में लागत, प्रशिक्षित ऑपरेटरों की उपलब्धता, बैटरी क्षमता, मौसम का प्रभाव, तकनीकी रखरखाव और नियामकीय अनुपालन शामिल हैं।

* ग्रामीण क्षेत्रों में तकनीकी प्रशिक्षण और सेवा केंद्रों की उपलब्धता बढ़ाना आवश्यक है।

किसान कल्याण की दिशा में सुझाव

ड्रोन तकनीक को किसान-केंद्रित बनाने के लिए निम्न उपाय उपयोगी हो सकते हैं-

- * गांव स्तर पर ड्रोन सेवा केंद्र विकसित करना।
- * FPO को ड्रोन सेवा से जोड़ना।
- * किसानों को प्रशिक्षण देना।
- * स्थानीय भाषा में प्रशिक्षण सामग्री उपलब्ध कराना।
- * छोटे किसानों के लिए किराये पर सेवा उपलब्ध कराना।
- * कृषि विश्वविद्यालयों द्वारा स्थानीय फसलों के लिए उपयुक्त तकनीक विकसित करना।

निष्कर्ष

ड्रोन तकनीक कृषि क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण परिवर्तनकारी तकनीक बन सकती है। लेकिन इसकी सफलता केवल ड्रोन खरीदने पर निर्भर नहीं करती। इसके लिए सही प्रशिक्षण, वैज्ञानिक सलाह, नियामकीय अनुपालन और किसानों के लिए सस्ती सेवा व्यवस्था आवश्यक है।

ड्रोन किसान का विकल्प नहीं, बल्कि किसान की क्षमता बढ़ाने वाला उपकरण है। यदि इसका उपयोग वैज्ञानिक एवं जिम्मेदार तरीके से किया जाए तो यह कृषि लागत, समय और संसाधनों के बेहतर प्रबंधन में योगदान दे सकता है।



✍ **इक्तेदार एमएससी (कृषि)** पादप रोग विज्ञान, पादप संरक्षण विभाग, चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ उत्तर प्रदेश (250004)

✍ **विशाल यादव पीएचडी शोधार्थी** पशुपालन एवं दुग्ध विज्ञान विभाग, चंद्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय कानपुर उ.प्र.

✍ **चौधरी शादान एमएससी (कृषि)** कीट विज्ञान, पादप संरक्षण विभाग, चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ उत्तर प्रदेश (250004)

✍ **इब्राहीम सहायक प्रोफेसर, सस्य** विज्ञान, कृषि विज्ञान विभाग, विश्वेश्वरैया इंस्टीट्यूट ऑफ इंजीनियरिंग एंड टेक्नोलॉजी

प्रस्तावना: कृषि में तकनीकी परिवर्तन का अगला महत्वपूर्ण चरण कृत्रिम बुद्धिमत्ता यानी Artificial Intelligence (AI) है। AI ऐसी तकनीक है जो बड़ी मात्रा में डेटा का विश्लेषण करके पैटर्न पहचानने और निर्णय लेने में सहायता कर सकती है। कृषि में मौसम, मिट्टी, फसल, कीट, रोग, बाजार और सिंचाई से संबंधित बहुत बड़ी मात्रा में डेटा उपलब्ध होता है। AI इस डेटा का विश्लेषण करके किसान और कृषि विशेषज्ञों को बेहतर निर्णय लेने में सहायता कर सकता है।

कृषि में AI की आवश्यकता: आज किसान अनेक चुनौतियों का सामना कर रहा है। मौसम में अनिश्चितता, कीट एवं रोगों का प्रकोप, कृषि लागत में वृद्धि, जल संकट और बाजार मूल्य में उतार-चढ़ाव जैसी समस्याओं के कारण सही समय पर सही निर्णय लेना महत्वपूर्ण हो गया है।

AI इन समस्याओं का अकेले समाधान नहीं है, लेकिन यह उपलब्ध आंकड़ों को समझने और निर्णय लेने की प्रक्रिया को बेहतर बना सकता है।

AI द्वारा फसल निगरानी

* AI आधारित सिस्टम फसल की तस्वीरों और अन्य आंकड़ों का विश्लेषण करके पौधों की स्थिति के बारे में जानकारी दे सकते हैं।

* उदाहरण के लिए, पत्तियों की तस्वीर का विश्लेषण करके कुछ रोगों के संभावित लक्षणों की पहचान करने में AI सहायता कर सकता है। इससे किसान को समस्या की शुरुआती जानकारी मिल सकती है।

* हालांकि केवल AI की पहचान पर निर्भर करके कीटनाशक का प्रयोग करना उचित नहीं है। अंतिम निर्णय में कृषि विशेषज्ञ की सलाह और खेत की वास्तविक स्थिति को भी शामिल करना चाहिए।

मौसम पूर्वानुमान और AI

कृषि मौसम पर अत्यधिक निर्भर है। AI विभिन्न मौसम संबंधी आंकड़ों का विश्लेषण करके कृषि सलाह को अधिक स्थानीय और उपयोगी बनाने में सहायता कर सकता है।

भविष्य में किसान को उसकी फसल और क्षेत्र के अनुसार

कृषि में कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) का उपयोग एवं भविष्य की संभावनाएं

बुवाई, सिंचाई और अन्य कृषि कार्यों के लिए अधिक व्यक्तिगत मौसम आधारित सलाह मिल सकती है।

AI और सिंचाई प्रबंधन

AI मृदा की नमी, मौसम, तापमान, फसल की अवस्था और पिछले सिंचाई डेटा का विश्लेषण करके सिंचाई संबंधी निर्णय में सहायता कर सकता है।

इससे किसान को यह समझने में मदद मिल सकती है कि खेत में कब और कितनी सिंचाई की आवश्यकता है। जल संकट वाले क्षेत्रों में ऐसी तकनीक विशेष रूप से उपयोगी हो सकती है।

AI और कीट प्रबंधन

कीट प्रबंधन में AI का महत्वपूर्ण उपयोग संभव है। ड्रोन, कैमरा या मोबाइल फोन से प्राप्त तस्वीरों का विश्लेषण करके AI कुछ कीटों की पहचान में सहायता कर सकता है।

इसके अलावा मौसम और कीटों के पिछले आंकड़ों का विश्लेषण करके संभावित कीट प्रकोप की चेतावनी देने वाली प्रणालियाँ विकसित की जा सकती हैं।

इससे किसान को समस्या बढ़ने से पहले निगरानी और नियंत्रण की तैयारी करने में सहायता मिल सकती है।

AI आधारित किसान सलाह

भविष्य में AI आधारित कृषि सलाहकार किसानों को स्थानीय भाषा में जानकारी प्रदान कर सकते हैं। किसान मोबाइल पर अपनी फसल, समस्या और खेत की स्थिति से संबंधित प्रश्न पूछ सकता है और उसे प्रारंभिक कृषि सलाह मिल सकती है।

ऐसी प्रणाली में स्थानीय कृषि विश्वविद्यालयों, कृषि विज्ञान केंद्रों और विशेषज्ञों द्वारा सत्यापित जानकारी को शामिल करना आवश्यक होगा।

AI और बाजार

किसानों के लिए उत्पादन के साथ बाजार भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। AI विभिन्न बाजारों से उपलब्ध कीमतों और मांग से संबंधित आंकड़ों का विश्लेषण करके बाजार संबंधी निर्णय लेने में सहायता कर सकता है। हालांकि कृषि बाजार कई आर्थिक और स्थानीय कारकों से प्रभावित होता है, इसलिए AI आधारित अनुमान को निश्चित भविष्यवाणी के रूप में नहीं लेना चाहिए।

छोटे किसानों के लिए AI

भारत की कृषि व्यवस्था में छोटे एवं सीमांत किसानों की संख्या अधिक है। इसलिए AI का विकास केवल बड़े और तकनीकी रूप से सक्षम किसानों के लिए नहीं होना चाहिए।

AI सेवाओं को मोबाइल फोन और स्थानीय भाषा के माध्यम से उपलब्ध कराया जा सकता है। इससे किसान महंगे कंप्यूटर या विशेष उपकरण के बिना भी तकनीक का लाभ उठा सकते हैं।

AI, ड्रोन और सेंसर का संयोजन

भविष्य में AI, ड्रोन और सेंसर मिलकर एक व्यापक स्मार्ट कृषि प्रणाली बना सकते हैं।

उदाहरण के लिए

सेंसर * खेत का डेटा * ड्रोन से फसल की तस्वीर * AI द्वारा विश्लेषण * किसान को मोबाइल पर सलाह * किसान द्वारा कार्रवाई

इस प्रकार की प्रणाली कृषि निर्णयों को अधिक डेटा आधारित बना सकती है।

AI की चुनौतियां

AI के सामने सबसे बड़ी चुनौती सही और गुणवत्तापूर्ण डेटा की उपलब्धता है। यदि AI को गलत डेटा मिलेगा तो उसके परिणाम भी गलत हो सकते हैं।

इसके अतिरिक्त डिजिटल साक्षरता, इंटरनेट कनेक्टिविटी, तकनीक की लागत, स्थानीय भाषाओं में गुणवत्तापूर्ण मॉडल और किसानों के डेटा की सुरक्षा जैसे मुद्दे महत्वपूर्ण हैं।

किसानों को ऐसी डिजिटल सलाह से भी सावधान रहना चाहिए जो बिना प्रमाण के कीट, रोग या कीटनाशक की जानकारी देती हो।

AI और किसान का अनुभव

AI किसान के पारंपरिक ज्ञान और अनुभव को समाप्त करने के लिए नहीं है। किसान को अपने खेत, मिट्टी, मौसम और स्थानीय परिस्थितियों की व्यावहारिक जानकारी होती है।

सबसे प्रभावी कृषि प्रणाली वह होगी जिसमें किसान का अनुभव + वैज्ञानिक ज्ञान + AI आधारित डेटा मिलकर निर्णय लेने में सहायता करें।

किसान कल्याण के लिए AI की दिशा

AI को किसान-केंद्रित बनाने के लिए निम्न कदम महत्वपूर्ण हैं-

- स्थानीय भाषाओं में AI कृषि सलाह उपलब्ध कराना।
- छोटे किसानों हेतु कम लागत वाली सेवाएँ विकसित करना।
- कृषि विश्वविद्यालयों और विशेषज्ञों की वैज्ञानिक जानकारी को AI प्रणालियों से जोड़ना।
- किसानों को डिजिटल साक्षरता का प्रशिक्षण देना।
- कृषि डेटा की सुरक्षा सुनिश्चित करना।
- AI सलाह के साथ मानव विशेषज्ञ की सहायता उपलब्ध रखना।

भविष्य की संभावनाएं

आने वाले वर्षों में AI कृषि के लगभग हर क्षेत्र को प्रभावित कर सकता है। बीज चयन, फसल निगरानी, कीट प्रबंधन, सिंचाई, उर्वरक प्रबंधन, मौसम सलाह, उत्पादन अनुमान और बाजार विश्लेषण में AI की भूमिका बढ़ सकती है। AI आधारित रोबोट और स्वचालित कृषि मशीनों भी भविष्य में कृषि श्रम की समस्या को कम करने में सहायता कर सकती हैं। हालांकि तकनीक का विकास किसान की वास्तविक जरूरतों को ध्यान में रखकर होना चाहिए। ऐसी AI प्रणाली जिसका उपयोग किसान आसानी से न कर सके, उसका वास्तविक कृषि लाभ सीमित रहेगा।

निष्कर्ष-कृत्रिम बुद्धिमत्ता कृषि को अधिक सटीक, डेटा आधारित और संसाधन-कुशल बनाने की क्षमता रखती है। इसका उपयोग किसान के निर्णय को बेहतर बनाने के लिए होना चाहिए, न कि किसान के अनुभव को समाप्त करने के लिए। यदि AI को स्थानीय भाषा, वैज्ञानिक कृषि ज्ञान, मोबाइल तकनीक, ड्रोन और सेंसर के साथ जोड़ा जाए तथा इसे छोटे एवं सीमांत किसानों तक कम लागत में पहुंचाया जाए, तो यह भविष्य में किसान कल्याण और टिकाऊ कृषि विकास का महत्वपूर्ण साधन बन सकता है। भविष्य की कृषि केवल स्मार्ट मशीनों की कृषि नहीं होगी, बल्कि ऐसी किसान-केंद्रित कृषि होगी जिसमें तकनीक किसान को बेहतर निर्णय लेने में सक्षम बनाएगी।



✍ **कामता प्रसाद पांडेय** शोध छात्र, कृषि विज्ञान संस्थान, बनारस हिंदू विश्वविद्यालय
वाराणसी-221005, उत्तर प्रदेश

✍ **सूरज मिश्रा** सहायक प्रोफेसर, कृषि विज्ञान संकाय, भगवंत विश्वविद्यालय, अजमेर, राजस्थान

प्रस्तावना

भारत एक कृषि प्रधान देश है, जहाँ बड़ी संख्या में किसान अपनी आजीविका के लिए कृषि पर निर्भर हैं। बदलती जलवायु, घटते जल संसाधन, मृदा की उर्वरता में कमी, उत्पादन लागत में वृद्धि तथा बाजार की बदलती मांग के कारण पारंपरिक कृषि पद्धतियों के साथ-साथ वैज्ञानिक एवं टिकाऊ कृषि पद्धतियों को अपनाना आवश्यक हो गया है। ऐसी परिस्थितियों में फसल विविधीकरण एवं फसल चक्र कृषि उत्पादन को स्थिर, लाभकारी और टिकाऊ बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

फसल विविधीकरण का अर्थ है किसी एक फसल पर निर्भर रहने के बजाय खेत में विभिन्न प्रकार की फसलों, बागवानी फसलों, दलहनी फसलों, तिलहनी फसलों तथा अन्य कृषि गतिविधियों को अपनाना। वहीं, फसल चक्र का अर्थ है एक ही खेत में अलग-अलग मौसमों में निर्धारित क्रम के अनुसार विभिन्न फसलों की खेती करना। दोनों ही पद्धतियाँ मृदा स्वास्थ्य बनाए रखने, प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण और किसान की आय बढ़ाने में सहायक हैं।

फसल विविधीकरण का अर्थ एवं आवश्यकता

फसल विविधीकरण कृषि व्यवस्था में जोखिम कम

फसल विविधीकरण एवं फसल चक्र का कृषि उत्पादन में महत्व



करने की एक प्रभावी रणनीति है। यदि किसान केवल एक ही फसल पर निर्भर रहता है और उस फसल में कीट-रोग, सूखा, अतिवृष्टि या बाजार मूल्य में गिरावट जैसी समस्या आती है, तो उसे भारी आर्थिक नुकसान हो सकता है। इसके विपरीत विभिन्न फसलों को अपनाने से जोखिम कई फसलों में विभाजित हो जाता है।

फसल विविधीकरण के अंतर्गत अनाज के साथ दलहन, तिलहन, सब्जियाँ, फल, मसाले एवं औषधीय फसलों को शामिल किया जा सकता है। उदाहरण के लिए गेहूँ या धान के साथ चना, मसूर, सरसों, मटर या सब्जी फसलों को कृषि प्रणाली में शामिल करने से किसान को विभिन्न स्रोतों से आय प्राप्त हो सकती है।

फसल विविधीकरण के प्रमुख लाभ

1. किसान की आय में वृद्धि

विभिन्न फसलों की खेती से किसान को एक से अधिक उत्पाद प्राप्त होते हैं। बाजार में किसी एक फसल के कम भाव होने पर दूसरी फसल से प्राप्त आय आर्थिक नुकसान को कम कर सकती है।

2. कृषि जोखिम में कमी

प्रतिकूल मौसम, कीट एवं रोग तथा बाजार की अनिश्चितता का प्रभाव सभी फसलों पर एक समान नहीं होता। इसलिए विविध फसलों को अपनाने से कृषि जोखिम कम होता है।

3. मृदा स्वास्थ्य में सुधार

दलहनी फसलें वायुमंडलीय नाइट्रोजन को स्थिर करने में सहायक होती हैं। इन्हें फसल प्रणाली में शामिल करने से मृदा में नाइट्रोजन की उपलब्धता बढ़ाने और उर्वरता बनाए रखने में सहायता मिलती है।

4. जल संसाधनों का बेहतर उपयोग

अलग-अलग फसलों की जल आवश्यकता अलग होती है। कम पानी में उगने वाली फसलों को शामिल करके सिंचाई जल का अधिक प्रभावी उपयोग किया जा सकता है।

5. रोजगार के अवसर

सब्जी, फल, मसाले तथा अन्य उच्च मूल्य वाली फसलों को कृषि प्रणाली में शामिल करने से वर्षभर कृषि कार्य उपलब्ध रह सकते हैं और ग्रामीण रोजगार को बढ़ावा मिलता है।

6. पोषण सुरक्षा

दलहन, तिलहन, सब्जियाँ और फल कृषि उत्पादन में शामिल होने से परिवार को विभिन्न प्रकार के पौष्टिक खाद्य पदार्थ उपलब्ध होते हैं।

फसल चक्र का अर्थ

फसल चक्र एक वैज्ञानिक कृषि पद्धति है, जिसमें एक ही खेत में लगातार एक ही फसल उगाने के बजाय अलग-अलग फसलों को निश्चित क्रम में उगाया जाता है। इसका मुख्य उद्देश्य मृदा की उर्वरता बनाए रखना,



कीट एवं रोगों के प्रकोप को कम करना तथा उपलब्ध पोषक तत्वों का संतुलित उपयोग करना है।

उदाहरण के लिए किसी खेत में एक वर्ष गेहूँ के बाद मूंग या चना तथा अगले मौसम में तिलहन फसल लेना एक प्रकार का फसल चक्र हो सकता है। इसी प्रकार धान-गेहूँ प्रणाली में दलहनी या हरी खाद वाली फसलों को शामिल करने से कृषि प्रणाली को अधिक टिकाऊ बनाया जा सकता है।

फसल चक्र का कृषि उत्पादन में महत्व

1. मृदा उर्वरता का संरक्षण

लगातार एक ही फसल उगाने से मिट्टी में कुछ विशेष पोषक तत्वों की कमी हो सकती है। अलग-अलग फसलों की पोषक तत्वों की आवश्यकता अलग होती है, इसलिए फसल चक्र अपनाने से पोषक तत्वों के अत्यधिक दोहन को कम किया जा सकता है।

2. कीट एवं रोग नियंत्रण

कई कीट एवं रोग किसी विशेष फसल के साथ लगातार जुड़े रहते हैं। उसी खेत में हर वर्ष वही फसल लेने से इनका जीवन चक्र बना रहता है और प्रकोप

बढ़ सकता है। फसल बदलने से कीट एवं रोगों के जीवन चक्र में व्यवधान उत्पन्न होता है।

3. खरपतवार नियंत्रण

अलग-अलग फसलों की बुवाई का समय, पौधों की वृद्धि एवं खेत प्रबंधन अलग होता है। इससे एक ही प्रकार के खरपतवार को लगातार अनुकूल परिस्थितियाँ नहीं मिलती और खरपतवार नियंत्रण में सहायता मिलती है।

4. पोषक तत्वों का संतुलित उपयोग

गहरी जड़ वाली और उथली जड़ वाली फसलों को क्रम में लेने से मिट्टी की अलग-अलग परतों से पोषक तत्वों के उपयोग में संतुलन बनाया जा सकता है।

5. जैविक गतिविधियों में वृद्धि

फसल अवशेषों और विभिन्न फसलों की जड़ों से मिट्टी में जैविक पदार्थ की मात्रा एवं सूक्ष्मजीवों की गतिविधियों को बढ़ावा मिल सकता है। इससे मृदा की संरचना एवं जलधारण क्षमता में सुधार होता है।

6. उत्पादन की स्थिरता

फसल चक्र मौसम एवं उत्पादन संबंधी जोखिम

को कम करके लंबे समय में उत्पादन को अधिक स्थिर बनाने में मदद करता है।

फसल विविधीकरण और फसल चक्र का परस्पर संबंध

फसल विविधीकरण और फसल चक्र एक-दूसरे के पूरक हैं। विविधीकरण में किसान विभिन्न प्रकार की फसलों एवं कृषि गतिविधियों को अपनाता है, जबकि फसल चक्र में इन फसलों को वैज्ञानिक क्रम के अनुसार खेत में लगाया जाता है। दोनों को साथ अपनाने से कृषि प्रणाली अधिक संतुलित और टिकाऊ बनती है।

उदाहरण के लिए किसान अनाज, दलहन और तिलहन फसलों को अलग-अलग मौसम में क्रम से उगा सकता है। इससे खेत में पोषक तत्वों का संतुलन बना रहता है और एक ही फसल पर निर्भरता कम होती है। इसी प्रकार सब्जियों एवं बागवानी फसलों को कृषि प्रणाली में शामिल करके किसान अपनी आय के अतिरिक्त स्रोत विकसित कर सकता है।

सफल फसल चक्र हेतु आवश्यक बातें

फसल चक्र निर्धारित करते समय स्थानीय जलवायु, मिट्टी का प्रकार, सिंचाई की उपलब्धता, फसल की अवधि, बाजार की मांग तथा किसान की आर्थिक स्थिति को ध्यान में रखना चाहिए। एक ही परिवार की फसलों को लगातार लेने के बजाय अनाज के बाद दलहन या तिलहन जैसी फसलों को शामिल करना उपयोगी हो सकता है।

फसल चयन के साथ संतुलित उर्वरक प्रबंधन, जैविक खाद एवं हरी खाद का उपयोग, उचित सिंचाई, खरपतवार नियंत्रण तथा एकीकृत कीट प्रबंधन को भी अपनाना चाहिए। इससे फसल चक्र के लाभ और अधिक प्रभावी हो सकते हैं।

निष्कर्ष

फसल विविधीकरण एवं फसल चक्र आधुनिक कृषि की महत्वपूर्ण एवं टिकाऊ पद्धतियाँ हैं। इनके माध्यम से किसान एक ओर अपनी आय एवं उत्पादन जोखिम को संतुलित कर सकता है, वहीं दूसरी ओर मृदा स्वास्थ्य, जल संसाधन और पर्यावरण का संरक्षण भी कर सकता है। दलहन, तिलहन, सब्जी, फल, मसाला तथा अन्य फसलों को उचित क्रम में शामिल करने से कृषि प्रणाली अधिक उत्पादक और लाभकारी बन सकती है। आज आवश्यकता है कि किसान स्थानीय परिस्थितियों और बाजार की मांग को ध्यान में रखते हुए वैज्ञानिक सलाह के आधार पर फसल विविधीकरण एवं उपयुक्त फसल चक्र अपनाएँ। इससे मृदा की उर्वरता, कृषि उत्पादन, किसान की आय और प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण-चारों को एक साथ मजबूत किया जा सकता है। यही टिकाऊ एवं समृद्ध कृषि की दिशा में महत्वपूर्ण कदम है।



✍ आयुषी चौधरी रिसर्च स्कॉलर, पादप
रोग विज्ञान विभाग, राजस्थान एग्रीकल्चर
रिसर्च इंस्टीट्यूट दुर्गापुरा जयपुर (राजस्थान)

प्रस्तावना

आधुनिक कृषि में बढ़ती जनसंख्या की खाद्य आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए फसल उत्पादन एवं उत्पादकता में निरंतर वृद्धि आवश्यक है। फसलों को कीट, रोग एवं अन्य हानिकारक जीवों से होने वाले नुकसान से बचाने के लिए लंबे समय से रासायनिक कीटनाशकों का उपयोग किया जाता रहा है। रासायनिक कीटनाशकों ने फसल सुरक्षा में महत्वपूर्ण योगदान दिया है, लेकिन इनके अत्यधिक एवं असंतुलित उपयोग से मृदा, जल, वायु तथा जैव विविधता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की चिंता बढ़ी है। इसके साथ ही अनेक कीटों में कीटनाशक प्रतिरोध विकसित होने तथा उपयोगी कीटों के प्रभावित होने जैसी समस्याएँ भी सामने आई हैं।

ऐसी परिस्थितियों में जैविक कीटनाशक (Biopesticides) एवं जैव-नियंत्रण (Biological Control) पर्यावरण-अनुकूल और टिकाऊ फसल सुरक्षा के महत्वपूर्ण साधन बनकर उभरे हैं। जैविक कीटनाशक ऐसे उत्पाद हैं जिनमें सूक्ष्मजीव, उनके उत्पाद, पौधों से प्राप्त सक्रिय पदार्थ या अन्य प्राकृतिक स्रोतों से प्राप्त घटक फसल के हानिकारक कीटों एवं रोगजनकों को नियंत्रित करने में सहायता करते हैं। वहीं जैव-नियंत्रण में प्राकृतिक शत्रुओं जैसे परभक्षी, परजीवी तथा रोगजनक सूक्ष्मजीवों का उपयोग करके हानिकारक जीवों की संख्या को आर्थिक क्षति स्तर से नीचे रखा जाता है।

आज के समय में जैविक कीटनाशकों और जैव-नियंत्रण को समेकित कीट प्रबंधन (Integrated Pest Management—IPM) का महत्वपूर्ण हिस्सा माना जाता है। इनका उद्देश्य केवल कीटों को पूरी तरह समाप्त करना नहीं, बल्कि उनकी आबादी को आर्थिक क्षति स्तर से नीचे बनाए रखना और पर्यावरणीय संतुलन को सुरक्षित रखना है।

जैविक कीटनाशक का अर्थ

जैविक कीटनाशक वे कीट नियंत्रण उत्पाद हैं जो प्राकृतिक रूप से पाए जाने वाले जीवों, सूक्ष्मजीवों, पौधों या उनसे प्राप्त पदार्थों पर आधारित होते हैं। इनका उपयोग फसलों को नुकसान पहुँचाने वाले कीटों, रोगजनकों तथा कुछ अन्य हानिकारक जीवों के नियंत्रण के लिए किया जाता है।

जैविक कीटनाशकों की प्रमुख विशेषता यह है कि इनमें प्रयुक्त सक्रिय घटक प्राकृतिक स्रोत से प्राप्त होते हैं। उदाहरण के लिए, *Bacillus thuringiensis* (Bt) आधारित उत्पाद कई लेपिडोप्टेरन कीटों की सुड़ियों के

जैविक कीटनाशकों एवं जैव-नियंत्रण का कृषि में महत्व



नियंत्रण में उपयोग किए जाते हैं। इसी प्रकार *Beauveria bassiana* और *Metarhizium anisopliae* जैसे एंटोमोपैथोजेनिक फफूंद विभिन्न कीटों के जैविक नियंत्रण में उपयोगी हैं।

जैविक कीटनाशकों के प्रमुख प्रकार

जैविक कीटनाशकों को उनके स्रोत और कार्य करने के तरीके के आधार पर विभिन्न समूहों में बाँटा जा सकता है।

1. सूक्ष्मजीवी कीटनाशक

इनमें बैक्टीरिया, फफूंद, वायरस या अन्य सूक्ष्मजीवों का उपयोग किया जाता है।

बैक्टीरियल जैविक कीटनाशक

Bacillus thuringiensis सबसे प्रसिद्ध उदाहरण है। इसके कुछ स्टेन विशेष रूप से लेपिडोप्टेरन कीटों की सुड़ियों को नियंत्रित करने में उपयोगी होते हैं।

फफूंद आधारित जैविक कीटनाशक

Beauveria bassiana, *Metarhizium anisopliae*, *Verticillium/Lecanicillium* जैसे फफूंद विभिन्न कीटों के विरुद्ध उपयोग किए जाते हैं। ये कीट की त्वचा पर अंकुरित होकर शरीर के अंदर प्रवेश कर संक्रमण उत्पन्न कर सकते हैं।

वायरस आधारित जैविक कीटनाशक:

न्यूक्लियर पॉलीहेड्रोसिस वायरस (NPV) जैसे जैविक एजेंट कुछ विशिष्ट कीटों के नियंत्रण में उपयोगी होते हैं। उदाहरण के लिए *Helicoverpa armigera* के नियंत्रण में *HaNPV* का प्रयोग किया जाता है।

2. वनस्पति आधारित कीटनाशक

पौधों में मौजूद प्राकृतिक रासायनिक पदार्थों का उपयोग कीट नियंत्रण में किया जाता है। नीम आधारित उत्पाद इसका प्रमुख उदाहरण हैं। नीम में पाए जाने वाले अजाडिरैक्टिन (Azadirachtin) जैसे यौगिक कीटों में भोजन ग्रहण, वृद्धि, विकास एवं प्रजनन को प्रभावित कर सकते हैं।

3. जैव-रासायनिक कीटनाशक

कुछ प्राकृतिक पदार्थ कीटों के व्यवहार या जीवन-चक्र को प्रभावित करते हैं। फेरोमोन, आकर्षक पदार्थ तथा कुछ अन्य प्राकृतिक यौगिक इस श्रेणी में उपयोग किए जाते हैं।

जैव-नियंत्रण का अर्थ

जैव-नियंत्रण का अर्थ है किसी हानिकारक जीव की आबादी को नियंत्रित करने के लिए उसके प्राकृतिक शत्रुओं या जैविक कारकों का उपयोग करना। प्रकृति में प्रत्येक जीव के अनेक प्राकृतिक शत्रु होते हैं, जो उनकी संख्या को नियंत्रित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

कृषि में जैव-नियंत्रण का उद्देश्य इन प्राकृतिक शत्रुओं का संरक्षण, संवर्धन एवं आवश्यकता पड़ने पर उनका कृत्रिम रूप से उपयोग करके कीटों की आबादी को नियंत्रित करना है।

जैव-नियंत्रण में मुख्य रूप से तीन प्रकार के प्राकृतिक शत्रुओं का उपयोग किया जाता है—

- परभक्षी (Predators)
- परजीव्य/परजीवी (Parasitoids)
- रोगजनक (Pathogens)

1. परभक्षियों द्वारा जैव-नियंत्रण

परभक्षी वे जीव हैं जो अपने जीवनकाल में अनेक हानिकारक कीटों को खाकर उनकी संख्या कम करते हैं।

लेडीबर्ड बीटल (Coccinellids) एफिड, मिलीबग एवं अन्य कोमल शरीर वाले कीटों के नियंत्रण में महत्वपूर्ण हैं।

इसी प्रकार *Chrysoperla* की लार्वा अवस्था एफिड, थ्रिप्स, सफेद मक्खी तथा अन्य छोटे कीटों को खाती है। कृषि परिस्थितिकी तंत्र में ये प्राकृतिक शत्रु कीट आबादी को कम करने में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं।



2. परजीव्य द्वारा जैव-नियंत्रण

परजीव्य ऐसे जीव होते हैं जिनकी अपरिपक्व अवस्था किसी एक होस्ट कीट पर या उसके अंदर विकसित होती है और अंततः उस होस्ट की मृत्यु हो जाती है।

Trichogramma एक महत्वपूर्ण अंड परजीव्य है, जिसका उपयोग विभिन्न लेपिडोप्टेरन कीटों के अंडों को नियंत्रित करने के लिए किया जाता है।

इसी प्रकार Braconidae और Ichneumonidae परिवारों के अनेक परजीव्य विभिन्न कीटों की सुंडियों एवं अन्य अवस्थाओं पर प्रभावी हो सकते हैं।

3. रोगजनक सूक्ष्मजीवों द्वारा जैव-नियंत्रण

कीटों में रोग उत्पन्न करने वाले सूक्ष्मजीवों का उपयोग भी जैव-नियंत्रण में किया जाता है।

इनमें प्रमुख हैं—

बैक्टीरिया

फफूंद

वायरस

कुछ प्रोटोजोआ

कुछ अन्य सूक्ष्मजीवी एजेंट

Beauveria bassiana और Metarhizium anisopliae जैसे फफूंद कीटों की बाहरी सतह पर अंकुरित होकर शरीर में प्रवेश कर सकते हैं तथा संक्रमण के कारण कीट की मृत्यु हो सकती है।

कृषि में जैविक कीटनाशकों एवं जैव-नियंत्रण का महत्व

1. पर्यावरण संरक्षण

जैविक कीटनाशकों एवं जैव-नियंत्रण का सबसे महत्वपूर्ण लाभ पर्यावरण संरक्षण है। उचित उपयोग की स्थिति में इनका गैर-लक्षित जीवों और पर्यावरण पर प्रभाव कई व्यापक-स्पेक्ट्रम रासायनिक कीटनाशकों की तुलना में कम हो सकता है।

इससे कृषि पारिस्थितिकी तंत्र में प्राकृतिक संतुलन बनाए रखने में सहायता मिलती है।

2. लाभकारी कीटों का संरक्षण

रासायनिक कीटनाशकों के अंधाधुंध प्रयोग से मधुमक्खी, परभक्षी बीटल, Chrysoperla तथा अन्य लाभकारी जीव प्रभावित हो सकते हैं। जैविक नियंत्रण आधारित रणनीतियाँ इन प्राकृतिक शत्रुओं के संरक्षण को प्राथमिकता देती हैं।

लाभकारी कीटों की संख्या बनी रहने से वे स्वयं खेत में कीटों को नियंत्रित करने में योगदान देते हैं।

3. कीटनाशक अवशेषों में कमी

जैविक नियंत्रण को अपनाने से कई परिस्थितियों

में रासायनिक कीटनाशकों पर निर्भरता कम की जा सकती है। इससे कृषि उत्पादों में कीटनाशक अवशेषों की समस्या को कम करने में सहायता मिल सकती है।

यह विशेष रूप से फल, सब्जियों एवं अन्य उच्च मूल्य वाली फसलों के लिए महत्वपूर्ण है।

4. कीट प्रतिरोध प्रबंधन

रासायनिक कीटनाशकों के बार-बार एवं एक



ही क्रियाविधि वाले उपयोग से कीटों में प्रतिरोध विकसित हो सकता है। जैविक नियंत्रण एजेंट अलग-अलग जैविक तंत्रों से कार्य करते हैं, इसलिए उन्हें IPM में शामिल करने से कीटनाशक प्रतिरोध प्रबंधन की रणनीति मजबूत की जा सकती है।

5. जैव विविधता का संरक्षण

कृषि क्षेत्र में जैव विविधता का संरक्षण टिकाऊ कृषि के लिए आवश्यक है। प्राकृतिक शत्रुओं, परागणकर्ताओं तथा अन्य उपयोगी जीवों का संरक्षण कृषि पारिस्थितिकी तंत्र को अधिक स्थिर बनाने में सहायता करता है।

समेकित कीट प्रबंधन में भूमिका

समेकित कीट प्रबंधन (IPM) एक ऐसी वैज्ञानिक रणनीति है जिसमें विभिन्न कीट नियंत्रण विधियों का आवश्यकता के अनुसार समन्वित उपयोग किया जाता है।

इसमें सामान्यतः शामिल हैं—

खेत की नियमित निगरानी
आर्थिक क्षति स्तर का निर्धारण
कृषि संबंधी उपाय
यांत्रिक एवं भौतिक नियंत्रण
जैविक नियंत्रण

आवश्यकता पड़ने पर रासायनिक नियंत्रण

IPM में जैविक नियंत्रण को प्राथमिकता देने से रासायनिक कीटनाशकों का अनावश्यक उपयोग कम किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, यदि किसी फसल में कीट की आबादी आर्थिक क्षति स्तर से कम है, तो केवल निगरानी और प्राकृतिक शत्रुओं के संरक्षण से काम चल सकता है। आवश्यकता होने पर

ही अन्य नियंत्रण उपाय अपनाए जाते हैं।

जैविक कीटनाशकों के उपयोग में सावधानियाँ

जैविक उत्पाद प्राकृतिक स्रोत से प्राप्त होते हैं, लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि उन्हें बिना किसी सावधानी के इस्तेमाल किया जाना चाहिए।

1. सही उत्पाद का चयन

फसल एवं लक्षित कीट के अनुसार उपयुक्त जैविक उत्पाद का चयन करना आवश्यक है।

2. गुणवत्ता वाले उत्पाद का प्रयोग

उत्पाद की गुणवत्ता, सक्रिय घटक, व्यवहार्यता तथा लेबल पर दिए निर्देशों को ध्यानपूर्वक देखना चाहिए।

3. उचित समय पर प्रयोग

अनेक जैविक एजेंट विशेष परिस्थितियों में अधिक प्रभावी होते हैं। इसलिए कीट की संवेदनशील अवस्था में उनका उपयोग बेहतर परिणाम दे सकता है।

4. मौसम का ध्यान

कुछ सूक्ष्मजीवी जैविक एजेंटों की प्रभावशीलता तापमान, आर्द्रता, वर्षा और सूर्य के प्रकाश से प्रभावित हो सकती है। इसलिए इनके उपयोग के समय स्थानीय मौसम परिस्थितियों का ध्यान रखना चाहिए।

5. रासायनिक कीटनाशकों के साथ सावधानी

कुछ रासायनिक कीटनाशक लाभकारी सूक्ष्मजीवों या प्राकृतिक शत्रुओं को नुकसान पहुँचा सकते हैं। इसलिए जैविक एजेंट और रासायनिक कीटनाशक के बीच संगतता की जानकारी आवश्यक है।

जैविक नियंत्रण को बढ़ावा देने के उपाय

कृषि में जैविक नियंत्रण को प्रभावी बनाने के लिए केवल जैविक उत्पादों का उपयोग पर्याप्त नहीं है। किसान एवं कृषि सलाहकारों को पूरे कृषि पारिस्थितिकी तंत्र को ध्यान में रखना चाहिए।

खेत में प्राकृतिक शत्रुओं का संरक्षण

खेत में अनावश्यक एवं बार-बार कीटनाशक छिड़काव से बचना चाहिए। प्राकृतिक शत्रुओं की पहचान एवं संरक्षण किया जाना चाहिए।

जैविक नियंत्रण एजेंटों का संरक्षण

Trichogramma, Chrysoperla, Coccinellids तथा अन्य उपयोगी जीवों को संरक्षण प्रदान करना चाहिए।

फूलदार पौधों का उपयोग

खेत की मेड़ों या आसपास उपयुक्त फूलदार पौधों को रखने से कई परभक्षी एवं परजीवी कीटों को भोजन एवं आश्रय मिल सकता है।

किसान प्रशिक्षण

जैविक नियंत्रण की सफलता के लिए किसानों को कीट की पहचान, प्राकृतिक शत्रुओं की पहचान, आर्थिक क्षति स्तर तथा जैविक उत्पादों के उचित उपयोग के बारे में प्रशिक्षण देना आवश्यक है।

जैविक कीटनाशकों एवं रासायनिक कीटनाशकों की तुलना

आधार	जैविक कीटनाशक	रासायनिक कीटनाशक
स्रोत	प्राकृतिक/जैविक स्रोत	रासायनिक रूप से निर्मित
पर्यावरणीय प्रभाव	उचित उपयोग में सामान्यतः कम	उत्पाद एवं उपयोग पर निर्भर; कुछ का प्रभाव अधिक हो सकता है
लक्षित जीव	कई उत्पाद अपेक्षाकृत विशिष्ट	कई उत्पाद व्यापक स्पेक्ट्रम के
प्राकृतिक शत्रु	कई जैविक नियंत्रण उपायों में संरक्षण संभव	कुछ उत्पादों से प्रभावित हो सकते हैं
प्रतिरोध	प्रबंधन रणनीति में उपयोगी	बार-बार उपयोग से प्रतिरोध की समस्या हो सकती है
IPM में भूमिका	महत्वपूर्ण	आवश्यकता आधारित अंतिम विकल्प के रूप में उपयोग किया जा सकता है

यह ध्यान रखना आवश्यक है कि 'जैविक' का अर्थ हमेशा पूरी तरह जोखिम-मुक्त नहीं होता। किसी भी उत्पाद का उपयोग उसकी स्वीकृत अनुशंसा, लेबल एवं सुरक्षा निर्देशों के अनुसार ही किया जाना चाहिए।

जैविक नियंत्रण की चुनौतियाँ

जैविक कीटनाशकों एवं जैव-नियंत्रण के अनेक लाभ हैं, लेकिन इनके सामने कुछ चुनौतियाँ भी हैं।

- * पहली चुनौती प्रभाव की गति है। कुछ जैविक एजेंट रासायनिक कीटनाशकों की तुलना में अपेक्षाकृत धीरे काम कर सकते हैं। इसलिए किसान को सही समय पर उनका प्रयोग करना आवश्यक होता है।
- * दूसरी चुनौती पर्यावरणीय परिस्थितियाँ हैं। तापमान, आर्द्रता, सूर्य का प्रकाश और वर्षा कुछ सूक्ष्मजीवी एजेंटों की प्रभावशीलता को प्रभावित कर सकते हैं।
- * तीसरी चुनौती उत्पाद की गुणवत्ता है। जैविक उत्पादों की प्रभावशीलता उनके



सक्रिय एजेंट की गुणवत्ता और व्यवहार्यता पर निर्भर करती है।

- * चौथी चुनौती किसानों में जागरूकता की कमी है। कई किसान जैविक नियंत्रण एजेंटों की पहचान और उपयोग की सही तकनीक से परिचित नहीं होते।
- * पाँचवीं चुनौती भंडारण एवं परिवहन है। कुछ जैविक उत्पादों को विशेष तापमान एवं परिस्थितियों में रखने की आवश्यकता हो सकती है। गलत भंडारण से उनकी प्रभावशीलता कम हो सकती है।

भविष्य की संभावनाएँ

भविष्य में कृषि को अधिक टिकाऊ, सुरक्षित और पर्यावरण-अनुकूल बनाने में जैविक कीटनाशकों एवं जैव-नियंत्रण की भूमिका और अधिक महत्वपूर्ण हो सकती है। जैव प्रौद्योगिकी, माइक्रोबियल फॉर्म्यूलेशन, सटीक कृषि, ड्रोन आधारित निगरानी तथा डिजिटल कृषि के विकास से जैविक नियंत्रण को अधिक प्रभावी ढंग से लागू करने की संभावनाएँ बढ़ रही हैं।

आधुनिक शोध में ऐसे जैविक एजेंटों और फॉर्म्यूलेशन के विकास पर जोर दिया जा रहा है जो विभिन्न पर्यावरणीय परिस्थितियों में बेहतर स्थायित्व एवं प्रभावशीलता प्रदर्शित कर सकें। साथ ही, प्राकृतिक शत्रुओं के संरक्षण और खेत के जैव विविधता-आधारित प्रबंधन को भी अधिक महत्व दिया जा रहा है।

भविष्य की कृषि व्यवस्था में IPM + जैविक नियंत्रण + आधुनिक निगरानी तकनीक का संयोजन रासायनिक कीटनाशकों के विवेकपूर्ण उपयोग के साथ अधिक टिकाऊ फसल सुरक्षा प्रणाली विकसित करने में सहायक हो सकता है।

निष्कर्ष

जैविक कीटनाशक एवं जैव-नियंत्रण आधुनिक टिकाऊ कृषि के महत्वपूर्ण घटक हैं। इनके माध्यम से फसल कीटों एवं रोगजनकों का प्रबंधन करते हुए पर्यावरणीय संतुलन, जैव विविधता और कृषि पारिस्थितिकी तंत्र की सुरक्षा की दिशा में महत्वपूर्ण कदम उठाया जा सकता है।

जैविक कीटनाशकों में *Bacillus thuringiensis*, *Beauveria bassiana*, *Metarhizium anisopliae*, NPV तथा नीम आधारित उत्पादों का विशेष महत्व है। इसी प्रकार *Chrysoperla*, *Coccinellids* तथा *Trichogramma* जैसे प्राकृतिक शत्रु कीट प्रबंधन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

हालाँकि जैविक नियंत्रण को रासायनिक नियंत्रण के पूर्ण विकल्प के रूप में देखने के बजाय समेकित कीट प्रबंधन की एक महत्वपूर्ण रणनीति के रूप में अपनाना अधिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण है। सही कीट पहचान, नियमित निगरानी, आर्थिक क्षति स्तर का ध्यान, प्राकृतिक शत्रुओं का संरक्षण और आवश्यकता आधारित नियंत्रण उपायों का समन्वय ही प्रभावी एवं टिकाऊ फसल संरक्षण की आधारशिला है। इस प्रकार जैविक कीटनाशकों एवं जैव-नियंत्रण को बढ़ावा देकर ऐसी कृषि प्रणाली विकसित की जा सकती है जो उत्पादक, पर्यावरण-अनुकूल, आर्थिक रूप से व्यवहार्य और दीर्घकाल में टिकाऊ हो।



✍ **इक्तेदार एमएससी (कृषि)** पादप रोग विज्ञान, पादप संरक्षण विभाग, चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ उत्तर प्रदेश (250004)

✍ **रवि रंजन कुमार बीएससी (कृषि)** ऑनर्स, विश्वेश्वरैया इंस्टीट्यूट ऑफ इंजीनियरिंग एंड टेक्नोलॉजी (0812) दादरी, जी.बी. नगर 201314

✍ **चौधरी शादान एमएससी (कृषि)** कीट विज्ञान, पादप संरक्षण विभाग, चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ उत्तर प्रदेश (250004)

✍ **इब्राहीम सहायक प्रोफेसर, सस्य** विज्ञान, कृषि विज्ञान विभाग, विश्वेश्वरैया इंस्टीट्यूट ऑफ इंजीनियरिंग एंड टेक्नोलॉजी

भूमिका

भारत एक कृषि प्रधान देश है और देश की बड़ी आबादी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कृषि पर निर्भर है। फसल उत्पादन बढ़ाने के लिए उन्नत बीज, सिंचाई, उर्वरक तथा आधुनिक कृषि तकनीकों का उपयोग किया जा रहा है, लेकिन फसल रोग आज भी उत्पादकता और गुणवत्ता को प्रभावित करने वाली प्रमुख समस्याओं में से एक हैं। विभिन्न प्रकार के कवक, जीवाणु, विषाणु, फाइटोप्लाज्मा तथा निमेटोड फसलों में रोग उत्पन्न करते हैं। इनके कारण पौधों की वृद्धि रुक जाती है, पत्तियों का प्रकाश संश्लेषण प्रभावित होता है तथा अंततः उपज और कृषि आय में कमी आती है।

फसल रोगों का सफल प्रबंधन केवल रोग दिखाई देने के बाद रासायनिक दवाओं के प्रयोग तक सीमित नहीं होना चाहिए। इसके लिए रोग की सही पहचान, रोग के कारण और अनुकूल परिस्थितियों की जानकारी तथा समय पर समन्वित प्रबंधन आवश्यक है। यदि किसान प्रारंभिक अवस्था में रोग की पहचान कर लें तो कम लागत में रोग को नियंत्रित किया जा सकता है।

फसल रोग क्या है?

जब किसी रोगजनक या प्रतिकूल पर्यावरणीय परिस्थिति के कारण पौधे की सामान्य शारीरिक क्रियाओं में लगातार एवं हानिकारक परिवर्तन होने लगते हैं, तो

फसलों में प्रमुख रोगों की पहचान, रोकथाम एवं प्रबंधन

इस अवस्था को पौध रोग कहा जाता है। रोग के कारण पौधे की वृद्धि, विकास, प्रजनन और उत्पादन क्षमता प्रभावित होती है।

फसल रोगों को सामान्यतः दो प्रमुख वर्गों में बाँटा जा सकता है—

1. संक्रामक रोग

ये रोग रोगजनकों के कारण होते हैं और एक पौधे से दूसरे पौधे तक फैल सकते हैं। इनमें कवक, जीवाणु, विषाणु, फाइटोप्लाज्मा और निमेटोड प्रमुख हैं।

2. असंक्रामक रोग

ये किसी रोगजनक के कारण नहीं होते। पोषक तत्वों

उदाहरण के लिए गेहूँ में रतुआ, धान में ब्लास्ट, आलू में झुलसा तथा विभिन्न सब्जियों में पत्ती धब्बा रोग प्रमुख कवक जनित रोग हैं।

कवक जनित रोगों की सामान्य पहचान पत्तियों पर धब्बे, झुलसन, सफेद या धूसर वृद्धि, तने पर घाव तथा जड़ों के सड़ने से की जा सकती है।

2. जीवाणु जनित रोग

जीवाणु पौधों में पत्ती झुलसा, बैक्टीरियल ब्लाइट, सॉफ्ट रॉट आदि रोग उत्पन्न कर सकते हैं। ये रोग संक्रमित बीज, पौध-अवशेष, वर्षा की छींटों, सिंचाई जल तथा कृषि उपकरणों के माध्यम से फैल सकते हैं।

3. विषाणु जनित रोग

विषाणु रोगों में पत्तियों पर मोजेक, पीला-हरा चितकबरा रंग, पत्ती का सिकुड़ना, पौधे का बौनापन तथा वृद्धि में कमी जैसे लक्षण दिखाई देते हैं। कई विषाणु रोग कीट वाहकों, विशेषकर माहू, सफेद मक्खी और थ्रिप्स द्वारा फैलते हैं।

4. निमेटोड जनित रोग

पौध परजीवी निमेटोड मुख्यतः जड़ों को प्रभावित करते हैं। जड़ों में गाँठें, जड़ वृद्धि में कमी, पौधों का बौनापन तथा पोषक तत्वों की कमी जैसे लक्षण दिखाई दे सकते हैं।

फसल रोगों की पहचान कैसे करें?

रोग की सही पहचान प्रभावी प्रबंधन की पहली सीढ़ी है। केवल पत्ती पर दिखाई देने वाले लक्षण के आधार पर दवा का चयन करना उचित नहीं है।

पौधे के विभिन्न भागों का निरीक्षण करें। पत्तियों पर धब्बे हैं या नहीं।

पत्तियाँ पीली या मुड़ी हुई हैं या नहीं।

तने पर घाव या सड़न है या नहीं।

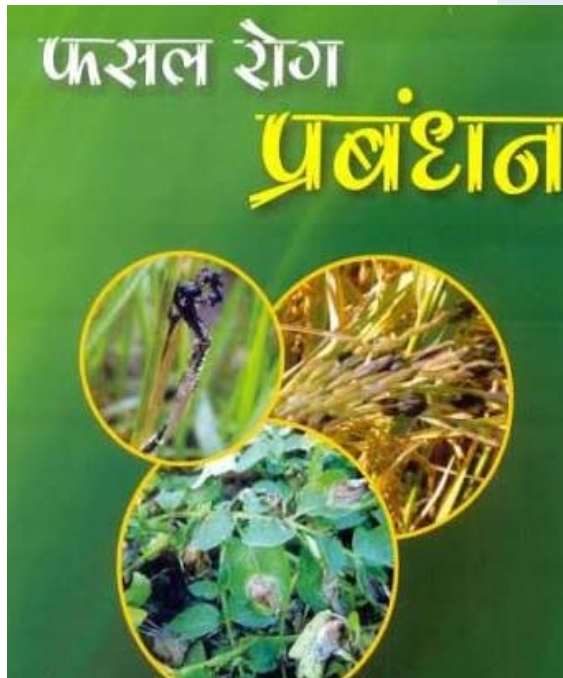
जड़ों में सड़न अथवा गाँठें हैं या नहीं।

पौधों की वृद्धि सामान्य है या नहीं।

रोग खेत में एक स्थान पर है या पूरे खेत में फैला है।

रोग का फैलाव सिंचाई, वर्षा या कीट गतिविधि से संबंधित है या नहीं।

रोग की पहचान करते समय खेत की मिट्टी, मौसम, सिंचाई व्यवस्था, फसल की अवस्था तथा पिछले मौसम की फसल को भी ध्यान में रखना चाहिए।



की कमी या अधिकता, सूखा, जलभराव, तापमान में असामान्य परिवर्तन, लवणीयता, विषाक्तता आदि इनके प्रमुख कारण हो सकते हैं।

प्रमुख फसल रोगजनक

1. कवक जनित रोग

कवक फसलों में सबसे अधिक पाए जाने वाले रोगजनकों में शामिल हैं। ये बीज, मिट्टी, सिंचाई जल, हवा तथा संक्रमित पौध-अवशेषों के माध्यम से फैल सकते हैं।



रोग त्रिकोण की अवधारणा

पौध रोगों के विकास के लिए तीन प्रमुख घटकों की आवश्यकता होती है—

संवेदनशील पौधा + रोगजनक + अनुकूल पर्यावरण = रोग का विकास

इसे रोग त्रिकोण कहा जाता है। यदि इन तीनों में से किसी एक घटक को नियंत्रित कर दिया जाए तो रोग की तीव्रता कम की जा सकती है। उदाहरण के लिए अत्यधिक नमी कई कवक रोगों के लिए अनुकूल होती है। उचित जल निकास द्वारा नमी कम करने से रोग का विकास घटाया जा सकता है।

फसल रोगों की रोकथाम एवं प्रबंधन

1. स्वस्थ एवं प्रमाणित बीज का उपयोग

रोग नियंत्रण की शुरुआत बीज से ही करनी चाहिए। प्रमाणित, स्वस्थ एवं रोगमुक्त बीज का प्रयोग करने से बीज जनित रोगों का खतरा कम होता है।

2. बीज उपचार

बीज उपचार रोग प्रबंधन की सरल और कम लागत वाली तकनीक है। उपयुक्त जैविक या रासायनिक बीज उपचार से बीज और मृदा जनित रोगों की प्रारंभिक अवस्था में रोकथाम की जा सकती है।

बीज उपचार के लिए उपयोग किए जाने वाले उत्पाद का चयन फसल, रोग तथा स्थानीय कृषि विशेषज्ञ की सलाह के अनुसार करना चाहिए।

3. फसल चक्र

एक ही खेत में लगातार एक ही फसल उगाने से कई रोगजनकों की संख्या बढ़ सकती है। फसल चक्र अपनाकर रोगजनक के जीवन चक्र को बाधित किया जा सकता है।

उदाहरण के लिए अनाज फसलों के साथ दलहनी या तिलहनी फसलों को शामिल करना लाभदायक हो सकता है।

4. खेत की स्वच्छता

संक्रमित पौध-अवशेष कई रोगजनकों के लिए आश्रय का कार्य करते हैं। इसलिए रोगग्रस्त पौधों और अवशेषों का उचित प्रबंधन आवश्यक है।

खेत में अनावश्यक पौध-अवशेषों को छोड़ने से रोग का अगली फसल में संक्रमण बढ़ सकता है।

5. उचित सिंचाई एवं जल निकास

अत्यधिक सिंचाई और खेत में जलभराव जड़ एवं तना सड़न जैसी समस्याओं को बढ़ा सकता है। दूसरी ओर अत्यधिक नमी की कमी से पौधे कमजोर हो सकते हैं।

इसलिए फसल की आवश्यकता के अनुसार सिंचाई और उचित जल निकास की व्यवस्था करनी चाहिए।

6. संतुलित पोषण

नाइट्रोजन का अत्यधिक प्रयोग कई रोगों की

संवेदनशीलता बढ़ा सकता है। दूसरी ओर पोटाश और अन्य आवश्यक पोषक तत्वों की संतुलित उपलब्धता पौधे को मजबूत बनाने में सहायता करती है।

मृदा परीक्षण के आधार पर उर्वरक प्रबंधन करना अधिक वैज्ञानिक तरीका है।

7. रोग प्रतिरोधी किस्मों का प्रयोग

रोग प्रतिरोधी या सहनशील किस्मों का चयन रोग प्रबंधन की सबसे प्रभावी रणनीतियों में से एक है। ऐसी किस्मों में रोग विकसित होने की संभावना सामान्य किस्मों की तुलना में कम होती है।

8. जैविक नियंत्रण

जैव नियंत्रण में लाभकारी सूक्ष्मजीवों का उपयोग किया जाता है। Trichoderma जैसे जैव-एजेंट कई मृदा एवं जड़ रोगों के प्रबंधन में उपयोगी हो सकते हैं।

जैव नियंत्रण पर्यावरण के लिए अपेक्षाकृत सुरक्षित विकल्प प्रदान करता है और समन्वित रोग प्रबंधन में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका है।

9. खेत की नियमित निगरानी



रोग नियंत्रण में नियमित निगरानी बहुत महत्वपूर्ण है। किसान को सप्ताह में कम से कम एक बार खेत का निरीक्षण करना चाहिए। रोग के प्रारंभिक लक्षण दिखाई देने पर तुरंत पहचान एवं उचित प्रबंधन करना चाहिए।

10. रासायनिक नियंत्रण का विवेकपूर्ण प्रयोग

जब रोग आर्थिक क्षति स्तर तक पहुँचने की संभावना हो और अन्य उपाय पर्याप्त न हों, तब अनुशंसित फफूंदनाशी या अन्य उपयुक्त रसायन का प्रयोग किया जा सकता है।

रसायन का चयन फसल, रोग तथा स्थानीय अनुशंसा के अनुसार होना चाहिए। लेबल पर दिए निर्देशों, मात्रा, सुरक्षा अवधि और सावधानियों का पालन करना आवश्यक है।

एक ही रासायनिक समूह के उत्पादों का बार-बार उपयोग करने से रोगजनकों में प्रतिरोध विकसित होने का जोखिम बढ़ सकता है। इसलिए आवश्यकता के अनुसार अलग-अलग प्रभाव-तंत्र वाले स्वीकृत उत्पादों का विवेकपूर्ण उपयोग किया जाना चाहिए।

समन्वित रोग प्रबंधन की आवश्यकता

आज के समय में केवल रासायनिक नियंत्रण पर निर्भर रहना उचित नहीं है। समन्वित रोग प्रबंधन में कई नियंत्रण विधियों को एक साथ उपयोग किया जाता है।

इसमें प्रमुख रूप से—

रोग प्रतिरोधी किस्म

स्वस्थ बीज

बीज उपचार

उचित फसल चक्र

संतुलित पोषण

खेत की स्वच्छता

उचित सिंचाई

जैव नियंत्रण

नियमित निगरानी

आवश्यकता आधारित रासायनिक नियंत्रण

को शामिल किया जाता है।

इससे रोग नियंत्रण के साथ-साथ उत्पादन लागत, रसायनों के अनावश्यक उपयोग और पर्यावरणीय प्रभाव को कम करने में सहायता मिलती है।

किसानों के लिए उपयोगी सुझाव

हमेशा प्रमाणित एवं स्वस्थ बीज का उपयोग करें।

बुवाई से पहले बीज उपचार अवश्य करें।

रोग के प्रारंभिक लक्षणों को नजरअंदाज न करें।

खेत में जलभराव न होने दें।

संतुलित उर्वरक प्रबंधन अपनाएँ।

रोगग्रस्त पौध-अवशेषों का उचित प्रबंधन करें।

एक ही फसल को लगातार उगाने से बचें।

जैविक एवं सांस्कृतिक उपायों को प्राथमिकता दें।

रसायनों का प्रयोग केवल आवश्यकता एवं अनुशंसा के अनुसार करें।

दवा की मात्रा स्वयं बढ़ाकर प्रयोग न करें।

निष्कर्ष

फसल रोग कृषि उत्पादन में एक गंभीर चुनौती हैं, लेकिन वैज्ञानिक प्रबंधन द्वारा इनके कारण होने वाली क्षति को काफी हद तक कम किया जा सकता है। रोग की सही पहचान, स्वस्थ बीज, रोग प्रतिरोधी किस्म, बीज उपचार, फसल चक्र, संतुलित पोषण, खेत की स्वच्छता, जैव नियंत्रण और आवश्यकता आधारित रासायनिक नियंत्रण को एकीकृत करके प्रभावी रोग प्रबंधन किया जा सकता है। भविष्य की टिकाऊ कृषि के लिए ऐसी रोग प्रबंधन प्रणाली आवश्यक है जो उत्पादन बढ़ाने के साथ-साथ किसान की लागत, पर्यावरणीय प्रभाव और रसायनों पर निर्भरता को भी कम करे। इसलिए किसानों को रोग दिखाई देने के बाद उपचार करने के बजाय रोकथाम आधारित समन्वित रोग प्रबंधन को अपनाना चाहिए।



डॉ. प्राची चंद्राकर सहायक

प्राध्यापक, पशुधन उत्पादन प्रबंधन विभाग,

श्री गंगानगर पशु चिकित्सा महाविद्यालय,

टांटिया विश्वविद्यालय, श्री गंगानगर, राजस्थान

डॉ. आर.पी.एस. बघेल अधिष्ठाता,

श्री गंगानगर पशु चिकित्सा महाविद्यालय,

टांटिया विश्वविद्यालय, श्री गंगानगर, राजस्थान

प्रस्तावना

भारत कृषि प्रधान देश है और ग्रामीण अर्थव्यवस्था में पशुपालन का महत्वपूर्ण योगदान है। विशेष रूप से दुग्ध पशुपालन किसानों की आय का एक प्रमुख स्रोत है। गाय, भैंस तथा अन्य दुग्ध पशुओं से प्राप्त दुग्ध न केवल परिवार की पोषण आवश्यकताओं को पूरा करता है, बल्कि किसानों को नियमित आय भी प्रदान करता है। दुग्ध उत्पादन की मात्रा और गुणवत्ता मुख्य रूप से पशु की नस्ल, स्वास्थ्य, प्रबंधन, प्रजनन क्षमता तथा आहार एवं पोषण पर निर्भर करती है। इनमें संतुलित आहार का विशेष महत्व है, क्योंकि पशु के शरीर की वृद्धि, रखरखाव, प्रजनन, रोग प्रतिरोधक क्षमता तथा दूध उत्पादन के लिए आवश्यक पोषक तत्वों की पूर्ति आहार के माध्यम से ही होती है।

दुग्ध पशुओं को केवल अधिक मात्रा में चारा उपलब्ध करा देना पर्याप्त नहीं है। पशु को उसकी आयु, शरीर भार, दुग्ध उत्पादन, दुग्ध में वसा की मात्रा, गर्भावस्था, शारीरिक अवस्था तथा मौसम के अनुसार ऊर्जा, प्रोटीन, खनिज, विटामिन और पर्याप्त मात्रा में पानी उपलब्ध कराना आवश्यक है। यदि आहार में किसी पोषक तत्व की कमी या अधिकता हो जाए तो पशु के स्वास्थ्य और उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है।

संतुलित आहार वह आहार है जिसमें पशु की आवश्यकता के अनुसार ऊर्जा, प्रोटीन, खनिज, विटामिन, रेशा, वसा तथा पानी उचित अनुपात में उपस्थित हों। वैज्ञानिक पोषण प्रबंधन अपनाकर किसान कम लागत में अधिक एवं गुणवत्तापूर्ण दुग्ध प्राप्त कर सकते हैं। इससे पशु का स्वास्थ्य बेहतर रहता है, प्रजनन क्षमता में सुधार होता है तथा पशुपालन अधिक लाभकारी एवं टिकाऊ बनता है।

संतुलित आहार की अवधारणा

संतुलित आहार से आशय ऐसे आहार से है जिसमें किसी विशेष पशु की दैनिक पोषण आवश्यकता को पूरा करने के लिए सभी आवश्यक पोषक तत्व उचित मात्रा और अनुपात में उपलब्ध हों। दुग्ध पशुओं के लिए संतुलित आहार में सामान्यतः हरा चारा, सूखा चारा, दाना या सांद्र आहार, खनिज मिश्रण, नमक और स्वच्छ पानी शामिल होते हैं।

पशु की पोषण आवश्यकता स्थिर नहीं होती। एक सूखी अवस्था वाली गाय की आवश्यकता एक उच्च दुग्ध उत्पादन करने वाली गाय से अलग होती है। इसी प्रकार गर्भावस्था के अंतिम चरण में पशु को अतिरिक्त पोषण की आवश्यकता होती है। इसलिए सभी पशुओं को एक जैसा आहार देना

दुग्ध पशुओं में संतुलित आहार एवं पोषण प्रबंधन का महत्व

वैज्ञानिक दृष्टि से उचित नहीं है।

संतुलित आहार तैयार करते समय निम्नलिखित कारकों को ध्यान में रखना चाहिए—

पशु की प्रजाति एवं नस्ल

शरीर भार
आयु
दैनिक दुग्ध उत्पादन
दूध में वसा एवं अन्य घटकों का स्तर

गर्भावस्था की अवस्था
शारीरिक स्थिति एवं स्वास्थ्य
उपलब्ध चारे की गुणवत्ता
मौसम एवं जलवायु
स्थानीय स्तर पर उपलब्ध संसाधन एवं चारे की लागत
दुग्ध पशुओं के लिए प्रमुख पोषक तत्व

दुग्ध पशुओं के शरीर में विभिन्न जैविक क्रियाओं के लिए कई पोषक तत्व आवश्यक होते हैं। प्रमुख पोषक तत्व निम्नलिखित हैं।

1. कार्बोहाइड्रेट

कार्बोहाइड्रेट पशुओं के लिए ऊर्जा का प्रमुख स्रोत हैं। चारे में उपस्थित स्टार्च, शर्करा तथा रेशेदार पदार्थों से पशु को ऊर्जा प्राप्त होती है। ऊर्जा की पर्याप्त उपलब्धता दूध उत्पादन, शरीर के रखरखाव और प्रजनन के लिए आवश्यक है।

ऊर्जा की कमी होने पर पशु अपने शरीर में जमा वसा का उपयोग करने लगता है। इससे शरीर का वजन कम हो सकता है और प्रजनन क्षमता प्रभावित हो सकती है। दूसरी ओर अत्यधिक आसानी से पचने वाले कार्बोहाइड्रेट देने से रूमेन की सामान्य क्रिया प्रभावित हो सकती है।

2. प्रोटीन

प्रोटीन शरीर की वृद्धि, ऊतकों के निर्माण, एंजाइम, हार्मोन तथा दूध के निर्माण के लिए आवश्यक है। दुग्ध उत्पादन करने वाले पशुओं में प्रोटीन की आवश्यकता अधिक होती है।

प्रोटीन की अच्छी मात्रा वाले चारे में बरसीम, लुसर्न, लोबिया, हरी मटर की बेल, दलहनी फसलें तथा विभिन्न तिलहनी खलियां शामिल हैं। संतुलित मात्रा में प्रोटीन उपलब्ध होने से दूध उत्पादन और पशु की शारीरिक स्थिति को बनाए रखने में सहायता मिलती है।

3. रेशा



रेशा जुगाली करने वाले पशुओं के आहार का अत्यंत महत्वपूर्ण घटक है। सूखा चारा, भूसा तथा हरे चारे में रेशा पाया जाता है। रेशा पशु में जुगाली एवं लार निर्माण को बढ़ावा देता है और रूमेन की सामान्य गतिविधि बनाए रखने में सहायता करता है।

हालांकि बहुत अधिक रेशेदार और कम गुणवत्ता वाले चारे से पशु को पर्याप्त ऊर्जा नहीं मिल पाती। इसलिए उच्च दुग्ध उत्पादन वाले पशुओं के आहार में गुणवत्तापूर्ण हरे चारे और उचित मात्रा में सांद्र आहार का संतुलन आवश्यक है।

4. वसा

वसा ऊर्जा का सघन स्रोत है। उचित मात्रा में वसा पशु को अतिरिक्त ऊर्जा प्रदान कर सकती है और दूध की वसा पर भी प्रभाव डालती है। हालांकि अत्यधिक वसा पशु के रूमेन में सूक्ष्मजीवों की गतिविधि को प्रभावित कर सकती है। इसलिए आहार में वसा का उपयोग संतुलित मात्रा में करना चाहिए।

5. खनिज तत्व

कैल्शियम, फास्फोरस, मैग्नीशियम, सोडियम, पोटैशियम, सल्फर तथा सूक्ष्म खनिज जैसे जिंक, कॉपर, आयरन, मैंगनीज, आयोडीन, कोबाल्ट और सेलेनियम पशुओं के लिए महत्वपूर्ण हैं।

कैल्शियम और फास्फोरस हड्डियों के निर्माण तथा दूध उत्पादन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। खनिजों की कमी से वृद्धि में कमी, प्रजनन संबंधी समस्याएं तथा दूध उत्पादन में गिरावट हो सकती है। इसलिए पशुओं को आवश्यकता के अनुसार खनिज मिश्रण देना चाहिए।

6. विटामिन

विटामिन पशु के शरीर में अनेक जैव-रासायनिक क्रियाओं के लिए आवश्यक हैं। विटामिन, B और श्व का विशेष महत्व है। हरे चारे से पशुओं को कई आवश्यक विटामिन और उनके पूर्वगामी पदार्थ प्राप्त होते हैं।

विटामिन A दृष्टि, त्वचा एवं प्रजनन स्वास्थ्य के लिए महत्वपूर्ण है। विटामिन B कैल्शियम एवं फास्फोरस के उपयोग में सहायता करता है, जबकि विटामिन श्व शरीर की प्रतिरक्षा एवं प्रजनन स्वास्थ्य में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

7. पानी

पानी को अक्सर पोषण प्रबंधन में नजरअंदाज कर दिया



जाता है, जबकि यह पशुओं के लिए सबसे आवश्यक पोषक तत्वों में से एक है। दूध में पानी की मात्रा बहुत अधिक होती है, इसलिए अधिक दूध देने वाले पशुओं को पर्याप्त मात्रा में स्वच्छ पानी उपलब्ध होना चाहिए।

गंदा या दूषित पानी पशु के स्वास्थ्य को प्रभावित कर सकता है। पशुओं को साफ, ताजा और सुरक्षित पानी नियमित रूप से उपलब्ध कराना चाहिए।

दुग्ध पशुओं के आहार के प्रमुख स्रोत

1. हरा चारा

हरा चारा पशुओं के लिए स्वादिष्ट और पौष्टिक आहार का महत्वपूर्ण स्रोत है। इसमें ऊर्जा, प्रोटीन, खनिज तथा विटामिन पर्याप्त मात्रा में मिल सकते हैं। बरसीम, जई, लूसर्न, मक्का, ज्वार, बाजरा, लोबिया तथा विभिन्न घासों अच्छे हरे चारे के स्रोत हैं।

दलहनी हरा चारा प्रोटीन से भरपूर होता है, जबकि मक्का और ज्वार जैसे चारे ऊर्जा प्रदान करने में उपयोगी हैं। किसान को संभव हो तो वर्षभर हरे चारे की उपलब्धता बनाए रखने के लिए चारा फसल योजना अपनानी चाहिए।

2. सूखा चारा

गेहूं का भूसा, धान का पुआल, ज्वार-बाजरा का सूखा चारा तथा अन्य फसल अवशेष सूखे चारे के रूप में उपयोग किए जाते हैं। सूखा चारा पशुओं को रेशा उपलब्ध कराता है और जुगाली की प्रक्रिया को बनाए रखने में सहायता करता है।

कम गुणवत्ता वाले भूसे को उचित प्रसंस्करण, जैसे यूरिया उपचार आदि, के माध्यम से अधिक उपयोगी बनाया जा सकता है। हालांकि ऐसी तकनीकों का उपयोग प्रशिक्षित व्यक्ति की सलाह और सही विधि से ही किया जाना चाहिए।

3. सांद्र आहार

सांद्र आहार में अनाज, चोकर, खलियां तथा अन्य पोषक पदार्थ शामिल किए जा सकते हैं। मक्का, जौ, गेहूं, ज्वार आदि ऊर्जा के स्रोत हैं, जबकि सरसों खली, सोयाबीन खली, मूंगफली खली आदि प्रोटीन के स्रोत हैं।

सांद्र आहार की मात्रा पशु के दूध उत्पादन एवं शारीरिक अवस्था के अनुसार निर्धारित करनी चाहिए। बिना आवश्यकता के अत्यधिक दाना खिलाने से लागत बढ़ने के साथ पाचन संबंधी समस्याएं भी हो सकती हैं।

4. खनिज मिश्रण

दुग्ध पशुओं के आहार में खनिज मिश्रण का महत्वपूर्ण स्थान है। विशेष रूप से अधिक दूध देने वाले पशुओं में खनिज तत्वों की आवश्यकता बढ़ जाती है। खनिज मिश्रण का चयन पशु की आवश्यकता और स्थानीय पशु चिकित्सा विशेषज्ञ की सलाह के अनुसार किया जाना चाहिए।

विभिन्न अवस्थाओं में पोषण प्रबंधन

1. सूखी अवस्था

जब पशु दूध देना बंद कर देता है, तब उसे सूखी अवस्था कहा जाता है। इस अवधि में पशु के अगले ब्यांत की तैयारी होती है। इस समय अत्यधिक ऊर्जा देने के बजाय शरीर की उचित स्थिति बनाए रखना महत्वपूर्ण है।

सूखी अवस्था में गुणवत्तापूर्ण चारा, आवश्यक खनिज तथा पर्याप्त पानी उपलब्ध कराना चाहिए। ब्याने से पहले के अंतिम चरण में पशु की पोषण आवश्यकता में परिवर्तन होता है, इसलिए आहार को धीरे-धीरे अगले दुग्ध उत्पादन चरण के अनुरूप तैयार करना चाहिए।

2. ब्याने के बाद की अवस्था



ब्याने के बाद दूध उत्पादन तेजी से बढ़ता है और पशु की ऊर्जा आवश्यकता भी काफी बढ़ जाती है। इस अवधि में यदि पशु की ऊर्जा आवश्यकता और आहार से मिलने वाली ऊर्जा में अंतर हो तो शरीर के संचित भंडार का उपयोग हो सकता है।

इसलिए ब्याने के बाद आहार में गुणवत्तापूर्ण हरा चारा, उचित सूखा चारा, संतुलित सांद्र आहार, खनिज मिश्रण तथा पर्याप्त पानी देना चाहिए। आहार में अचानक परिवर्तन नहीं करना चाहिए।

3. उच्च दुग्ध उत्पादन अवस्था

उच्च दुग्ध उत्पादन वाले पशुओं को अधिक ऊर्जा, प्रोटीन, खनिज और पानी की आवश्यकता होती है। ऐसे पशुओं में आहार की गुणवत्ता अत्यंत महत्वपूर्ण है।

दूध उत्पादन के अनुसार दाने की मात्रा निर्धारित करनी चाहिए। केवल अधिक दाना खिलाने के बजाय चारा और सांद्र आहार का संतुलित संयोजन अधिक उपयोगी होता है।

4. गर्भावस्था

गर्भावस्था के अंतिम चरण में भ्रूण की वृद्धि तेजी से होती है। इसलिए गर्भित पशु को उचित पोषण उपलब्ध कराना आवश्यक है। पोषण की कमी से कमजोर बछड़े, कम जन्म भार तथा भविष्य में उत्पादन क्षमता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है।

गर्भित पशु को पर्याप्त प्रोटीन, ऊर्जा, खनिज और विटामिन उपलब्ध कराना चाहिए तथा शरीर की उचित स्थिति बनाए रखनी चाहिए।

बछड़ों के पोषण का महत्व

भविष्य में अच्छे दुग्ध पशु तैयार करने के लिए बछड़ों का उचित पोषण अत्यंत महत्वपूर्ण है। जन्म के बाद बछड़े को समय पर पर्याप्त मात्रा में खीस (कोलोस्ट्रम) उपलब्ध कराना आवश्यक है। खीस में प्रतिरक्षी पदार्थ होते हैं जो नवजात बछड़े की रोग प्रतिरोधक क्षमता विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

बछड़े की उम्र बढ़ने के साथ उसके आहार में धीरे-धीरे गुणवत्ता वाला स्टार्टर फीड, हरा चारा और अन्य उपयुक्त आहार शामिल किया जाता है। स्वच्छ पानी भी उपलब्ध होना चाहिए।

बछड़े के प्रारंभिक जीवन में उचित पोषण भविष्य में उसकी वृद्धि, प्रजनन क्षमता और दुग्ध उत्पादन की क्षमता को प्रभावित कर सकता है। इसलिए बछड़ा पोषण को दुग्ध पशुपालन का महत्वपूर्ण हिस्सा माना जाना चाहिए।

संतुलित आहार का दूध उत्पादन पर प्रभाव

दूध उत्पादन के लिए पशु को पर्याप्त ऊर्जा, प्रोटीन, खनिज, विटामिन और पानी की आवश्यकता होती है। संतुलित आहार मिलने पर पशु की शारीरिक स्थिति बेहतर रहती है और दूध उत्पादन क्षमता का उचित उपयोग हो पाता है।

आहार में प्रोटीन की कमी होने पर दूध उत्पादन कम हो सकता है। ऊर्जा की कमी से पशु शरीर के भंडार का उपयोग कर सकता है, जिससे शरीर का वजन घट सकता है। खनिजों की कमी प्रजनन और स्वास्थ्य को प्रभावित कर सकती है।

इसलिए दूध उत्पादन बढ़ाने के लिए केवल दाने की मात्रा बढ़ाना वैज्ञानिक तरीका नहीं है। बल्कि पशु की वास्तविक पोषण आवश्यकता के आधार पर संतुलित राशन तैयार करना अधिक प्रभावी है।

पोषण प्रबंधन और पशु स्वास्थ्य

उचित पोषण पशुओं की रोग प्रतिरोधक क्षमता बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। संतुलित आहार लेने वाले पशु सामान्यतः बेहतर शारीरिक स्थिति बनाए रख सकते हैं और संक्रमणों से मुकाबला करने की क्षमता बेहतर हो सकती है।

इसके विपरीत लंबे समय तक पोषण की कमी रहने पर पशु कमजोर हो सकता है और उसकी उत्पादन एवं प्रजनन क्षमता प्रभावित हो सकती है। अत्यधिक या असंतुलित आहार भी पाचन संबंधी समस्याएं उत्पन्न कर सकता है।

इसलिए पोषण प्रबंधन को पशु स्वास्थ्य प्रबंधन से अलग करके नहीं देखा जाना चाहिए।

पोषण प्रबंधन और प्रजनन क्षमता

दुग्ध पशुओं में सफल प्रजनन के लिए उचित पोषण अत्यंत आवश्यक है। ऊर्जा, प्रोटीन, खनिज और विटामिन की कमी से पशुओं में प्रजनन संबंधी समस्याएं उत्पन्न हो सकती हैं।



विशेष रूप से कैल्शियम, फास्फोरस, जिंक, कॉपर तथा कुछ विटामिनों का उचित स्तर प्रजनन स्वास्थ्य के लिए महत्वपूर्ण है। ब्याने के बाद पशु में ऊर्जा संतुलन बनाए रखना भी आवश्यक है।

उचित पोषण से पशु की शारीरिक स्थिति, प्रजनन चक्र और गर्भधारण की संभावना को बेहतर बनाए रखने में सहायता मिल सकती है।

आर्थिक दृष्टि से संतुलित आहार का महत्व

दुध पशुपालन में कुल लागत का बड़ा हिस्सा पशु आहार पर खर्च होता है। इसलिए लाभकारी दुध उत्पादन के लिए कम लागत में गुणवत्तापूर्ण आहार उपलब्ध कराना आवश्यक है।

किसान स्थानीय स्तर पर उपलब्ध चारा संसाधनों का वैज्ञानिक उपयोग करके आहार लागत कम कर सकते हैं। उदाहरण के लिए फसल अवशेष, हरा चारा, दलहनी चारा और स्थानीय स्तर पर उपलब्ध खाद्य उप-उत्पादों का उचित उपयोग किया जा सकता है।

हालांकि किसी भी स्थानीय खाद्य पदार्थ को बड़ी मात्रा में आहार में शामिल करने से पहले उसकी पोषण गुणवत्ता और पशु के लिए उपयुक्तता का ध्यान रखना चाहिए।

चारा संरक्षण का महत्व

- * वर्षभर हरे चारे की उपलब्धता बनाए रखना चुनौतीपूर्ण हो सकता है। इसलिए अतिरिक्त हरे चारे को संरक्षित करके भविष्य में उपयोग किया जा सकता है। हे और साइलेज चारा संरक्षण की महत्वपूर्ण विधियां हैं।
- * साइलेज विशेष रूप से हरे मक्का, ज्वार और अन्य उपयुक्त चारा फसलों से तैयार किया जा सकता है। उचित तरीके से तैयार किया गया साइलेज लंबे समय तक संरक्षित किया जा सकता है और चारे की कमी के समय उपयोगी होता है।
- * चारा संरक्षण से मौसम आधारित चारे की कमी को कम करने और पूरे वर्ष संतुलित आहार उपलब्ध कराने में सहायता मिलती है।

पशु आहार में सावधानियां

पशुओं को आहार देते समय कुछ महत्वपूर्ण सावधानियां अपनानी चाहिए—

- * आहार में अचानक परिवर्तन नहीं करना चाहिए।
- * फफूंद लगा या सड़ा हुआ चारा पशुओं को नहीं खिलाना चाहिए।
- * अत्यधिक मात्रा में दाना एक साथ नहीं देना चाहिए।
- * स्वच्छ एवं सुरक्षित पानी उपलब्ध कराना चाहिए।
- * हरे और सूखे चारे का उचित संतुलन बनाए रखना चाहिए।
- * खनिज मिश्रण का उपयोग पशु की आवश्यकता के अनुसार करना चाहिए।
- * आहार की मात्रा पशु के दूध उत्पादन और शरीर की स्थिति के अनुसार निर्धारित करनी चाहिए।
- * चारा एवं दाने को नमी और कीटों से सुरक्षित स्थान पर रखना चाहिए।

- * अत्यधिक नमकीन, दूषित या अज्ञात पदार्थ पशुओं को नहीं खिलाना चाहिए।
- * आहार में किसी भी नए पदार्थ को धीरे-धीरे शामिल करना चाहिए।

आधुनिक पोषण प्रबंधन की आवश्यकता

आज दुध पशुपालन केवल पारंपरिक गतिविधि नहीं रह गया है, बल्कि यह एक वैज्ञानिक एवं व्यावसायिक क्षेत्र बन चुका है। आधुनिक पशुपालन में पशु की पोषण आवश्यकता के आधार पर राशन तैयार करने पर जोर दिया जाता है।

किसान पशु की दुध उत्पादन क्षमता, शरीर भार, दुध में वसा, गर्भावस्था तथा शरीर की स्थिति के आधार पर आहार का प्रबंधन कर सकते हैं। वैज्ञानिक राशन संतुलन से अनावश्यक पोषक तत्वों की बर्बादी कम की जा सकती है और आहार लागत को नियंत्रित किया जा सकता है।

डिजिटल तकनीकों और मोबाइल आधारित कृषि-पशुपालन सेवाओं के माध्यम से भी किसानों को पशु पोषण, चारा प्रबंधन तथा स्वास्थ्य संबंधी जानकारी उपलब्ध हो रही है। भविष्य में सटीक पशु पोषण (Precision Nutrition) दुध पशुपालन को अधिक दक्ष और लाभकारी बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

सतत एवं पर्यावरण-

अनुकूल पोषण प्रबंधन

संतुलित पशु पोषण का महत्व केवल दूध उत्पादन तक सीमित नहीं है। उचित आहार प्रबंधन से चारे की बर्बादी कम की जा सकती है और उपलब्ध संसाधनों का बेहतर उपयोग किया जा सकता है।

स्थानीय स्तर पर उपलब्ध चारा संसाधनों का उपयोग, फसल अवशेषों का उचित प्रबंधन, चारा संरक्षण तथा पोषण आवश्यकता के अनुसार राशन तैयार करना टिकाऊ पशुपालन में योगदान देता है।

पशु के स्वास्थ्य और उत्पादन के अनुरूप पोषण उपलब्ध कराने से प्रति इकाई दूध उत्पादन के लिए संसाधनों के अधिक कुशल उपयोग में सहायता मिल सकती है। इस प्रकार संतुलित पोषण आर्थिक और पर्यावरणीय दोनों दृष्टियों से महत्वपूर्ण है।

किसानों के लिए व्यावहारिक सुझाव

दुध पशुपालक किसान निम्नलिखित उपाय अपनाकर पशु पोषण में सुधार कर सकते हैं—

- * पशु की अवस्था और दुध उत्पादन के अनुसार राशन तैयार करें।
- * हरे एवं सूखे चारे का संतुलित उपयोग करें।

- * संभव हो तो वर्षभर हरे चारे की योजना बनाएं।
- * गुणवत्तापूर्ण दाना एवं प्रोटीन स्रोत का उपयोग करें।
- * पशुओं को आवश्यकतानुसार खनिज मिश्रण उपलब्ध कराएं।
- * स्वच्छ और पर्याप्त पानी हर समय उपलब्ध रखें।
- * फफूंदयुक्त या खराब चारा न खिलाएं।
- * ब्याने से पहले और बाद के समय में विशेष पोषण प्रबंधन करें।
- * बछड़ों को जन्म के तुरंत बाद उचित मात्रा में खीस उपलब्ध कराएं।
- * पशु की शारीरिक स्थिति और दूध उत्पादन की नियमित निगरानी करें।
- * चारे की गुणवत्ता के अनुसार आहार में परिवर्तन करें।
- * आवश्यकता होने पर पशु चिकित्सक या पशु पोषण विशेषज्ञ की सलाह लें।

निष्कर्ष

दुध पशुओं में संतुलित आहार एवं पोषण प्रबंधन अधिक दूध उत्पादन, बेहतर पशु स्वास्थ्य, अच्छी प्रजनन क्षमता तथा अधिक आर्थिक लाभ की आधारशिला है। पशु को केवल पर्याप्त मात्रा में भोजन देना पर्याप्त नहीं है, बल्कि उसकी वास्तविक पोषण आवश्यकता के अनुसार ऊर्जा, प्रोटीन, रेशा, वसा, खनिज, विटामिन और पानी का उचित संतुलन आवश्यक है।

संतुलित आहार से पशु की शारीरिक स्थिति बेहतर बनाए रखने, दूध उत्पादन क्षमता का उचित उपयोग करने तथा पोषण संबंधी समस्याओं को कम करने में सहायता

मिलती है। विशेष रूप से उच्च दुध उत्पादन वाले पशुओं, गर्भित पशुओं, सूखी अवस्था वाले पशुओं तथा नवजात बछड़ों में पोषण प्रबंधन पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

किसानों को स्थानीय स्तर पर उपलब्ध चारा संसाधनों का वैज्ञानिक उपयोग करते हुए हरे चारे, सूखे चारे और सांद्र आहार का उचित संयोजन करना चाहिए। साथ ही स्वच्छ पानी, खनिज मिश्रण, चारा संरक्षण और नियमित पशु स्वास्थ्य निगरानी को पशुपालन का अभिन्न हिस्सा बनाना चाहिए।

अतः यह कहा जा सकता है कि संतुलित आहार स्वस्थ पशु, गुणवत्तापूर्ण दूध और लाभकारी पशुपालन की आधारशिला है। वैज्ञानिक पोषण प्रबंधन अपनाकर किसान न केवल दूध उत्पादन और पशु स्वास्थ्य में सुधार कर सकते हैं, बल्कि पशुपालन को अधिक टिकाऊ, लाभकारी और ग्रामीण अर्थव्यवस्था के लिए मजबूत आधार बना सकते हैं।





✍ **श्रवण लाल यादव** पीएच.डी.
स्कॉलर, मृदा विज्ञान विभाग, गोविंद बल्लभ
पंत, कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय
पंतनगर, उद्यम सिंह नगर, उत्तराखंड, 263145

✍ **अनिल कुमार** पीएच.डी. शोधार्थी,
मृदा विज्ञान विभाग, गोविंद बल्लभ पंत कृषि
एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, पंतनगर

प्रस्तावना

कृषि उत्पादन में फसलों का महत्वपूर्ण स्थान है, लेकिन विभिन्न रोगों के कारण फसलों की उत्पादकता एवं गुणवत्ता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। पौधों में रोग मुख्य रूप से कवक, जीवाणु, विषाणु, सूत्रकृमि तथा अन्य रोगजनक सूक्ष्मजीवों के कारण उत्पन्न होते हैं। अनुकूल तापमान, अधिक नमी, असंतुलित उर्वरक प्रयोग, संक्रमित बीज तथा खेत में उचित स्वच्छता का अभाव रोगों के फैलाव को बढ़ावा देता है। कई बार रोगों की समय पर पहचान न होने से उत्पादन में भारी कमी हो सकती है।

फसल रोग प्रबंधन का उद्देश्य केवल रोग को समाप्त करना नहीं, बल्कि रोग की शुरुआत को रोकना, उसके फैलाव को कम करना और आर्थिक नुकसान को न्यूनतम करना है। इसके लिए स्वस्थ बीज का उपयोग, बीजोपचार, फसल चक्र, खेत की स्वच्छता, रोगरोधी किस्मों का चयन, जैविक उपाय तथा आवश्यकता के अनुसार अनुशंसित रसायनों का संतुलित प्रयोग किया जाना चाहिए।

प्रमुख फसल रोगों की पहचान

1. गेहूँ के प्रमुख रोग

गेहूँ का पीला रतुआ गेहूँ में प्रमुख रोगों में से एक है। इसकी पहचान पत्तियों पर पीले रंग की धारियों या छोटे-छोटे पीले फफोले जैसे चिह्नों से की जाती है। अधिक नमी और अनुकूल ठंडे मौसम में इसका प्रकोप तेजी से बढ़ सकता है।

गेहूँ का काला रतुआ तने एवं पत्तियों पर गहरे भूरे से काले रंग की धारियों के रूप में दिखाई देता है। अधिक प्रकोप होने पर पौधे कमजोर हो जाते हैं और दानों का विकास प्रभावित होता है।

गेहूँ का करनाल बंट रोग में दानों के कुछ भाग में काले रंग का चूर्ण दिखाई देता है। संक्रमित दानों से दुर्गंध भी आ सकती है, जिससे उपज की गुणवत्ता प्रभावित होती है।

रोकथाम एवं प्रबंधन

प्रमाणित एवं स्वस्थ बीज का प्रयोग,

फसलों में प्रमुख रोगों की पहचान, रोकथाम एवं प्रबंधन

रोगरोधी किस्मों का चयन, संतुलित उर्वरक प्रबंधन और खेत में नियमित निगरानी आवश्यक है। रोग की पुष्टि होने पर कृषि विशेषज्ञ की सलाह से अनुमोदित फफूंदनाशी का प्रयोग किया जा सकता है।

2. धान के प्रमुख रोग

धान का झुलसा रोग (ब्लास्ट) धान का अत्यंत महत्वपूर्ण रोग है। पत्तियों पर नाव के आकार के भूरे या राख जैसे धब्बे दिखाई देते हैं। गंभीर अवस्था में गर्दन पर संक्रमण होने से बालियां कमजोर हो सकती हैं।



हैं।

बैक्टीरियल लीफ ब्लाइट (जीवाणु झुलसा) में पत्तियों के किनारों से पीले या भूरे रंग के धब्बे बढ़ते हुए पूरी पत्ती को प्रभावित कर सकते हैं। अधिक नमी एवं वर्षा के दौरान रोग तेजी से फैल सकता है।

रोकथाम एवं प्रबंधन

स्वस्थ बीज का उपयोग, उचित दूरी पर रोपाई, खेत में संतुलित नाइट्रोजन का प्रयोग, अत्यधिक सिंचाई से बचाव और रोगग्रस्त पौधों की निगरानी उपयोगी उपाय हैं। रोग के अनुसार अनुशंसित जैविक या रासायनिक प्रबंधन अपनाना चाहिए।



3. सोयाबीन के प्रमुख रोग

सोयाबीन में पीला मोजेक रोग प्रमुख विषाणुजनित रोग है। पत्तियों पर पीले और हरे रंग के अनियमित क्षेत्र दिखाई देते हैं। संक्रमित पौधों की वृद्धि प्रभावित होती है।

रोकथाम एवं प्रबंधन

स्वस्थ एवं प्रमाणित बीज का उपयोग, रोगरोधी किस्मों का चयन, खेत में खरपतवार नियंत्रण तथा रोग फैलाने वाले कीटों की निगरानी आवश्यक है। संक्रमित पौधों को प्रारंभिक अवस्था में हटाना भी उपयोगी हो सकता है।

सोयाबीन में चारकोल रॉट जैसे रोग भी देखे जाते हैं। गर्म एवं शुष्क परिस्थितियों में इसका प्रकोप बढ़ सकता है। संतुलित पोषण, उचित नमी प्रबंधन और फसल चक्र इसके प्रबंधन में सहायक हैं।

4. चना एवं अन्य दलहन

फसलों के रोग

चना में उकठा रोग एक गंभीर मृदाजनित रोग है। संक्रमित पौधे धीरे-धीरे मुरझाने लगते हैं और अंततः सूख सकते हैं। जड़ों को देखने पर उनका रंग एवं संरचना सामान्य से अलग दिखाई दे सकती है।

रोकथाम एवं प्रबंधन

रोगरोधी किस्मों का प्रयोग, स्वस्थ बीज, बीजोपचार तथा उचित फसल चक्र अपनाना महत्वपूर्ण है। लगातार एक ही खेत में चने की खेती करने से बचना चाहिए।

5. कपास के प्रमुख रोग

कपास में जीवाणु झुलसा तथा विभिन्न प्रकार के जड़ एवं तना रोग देखे जाते हैं। पत्तियों पर कोणीय धब्बे, पत्तियों का सूखना तथा तने पर घाव इसके प्रमुख लक्षण हो सकते हैं।

रोकथाम एवं प्रबंधन

स्वस्थ बीज का उपयोग, उचित



बीजोपचार, खेत की जल निकासी व्यवस्था, संतुलित पोषण तथा संक्रमित पौधों के उचित प्रबंधन से रोग की तीव्रता कम की जा सकती है।

6. सब्जी फसलों के प्रमुख रोग

टमाटर, मिर्च, बैंगन आदि फसलों में झुलसा रोग, मोजेक रोग, फल सड़न तथा जड़ संबंधी रोग प्रमुख हैं। टमाटर में पत्तियों पर भूरे-काले धब्बे, फल पर सड़न और पौधों का कमजोर होना रोग के संकेत हो सकते हैं। मिर्च में मोजेक रोग होने पर पत्तियों पर हल्के एवं गहरे हरे रंग का चितकबरापन दिखाई देता है तथा पौधों की वृद्धि प्रभावित होती है। संक्रमित पौधों को खेत से हटाना और रोग फैलाने वाले कीटों का प्रबंधन करना आवश्यक है।

रोगों की रोकथाम के प्रमुख उपाय

फसल रोगों की रोकथाम के लिए एकीकृत रोग प्रबंधन (Integrated Disease Management) अपनाना सबसे प्रभावी तरीका है। इसके अंतर्गत निम्न उपाय महत्वपूर्ण हैं—

1. स्वस्थ एवं प्रमाणित बीज का प्रयोग

रोगमुक्त और प्रमाणित बीजों का उपयोग करने से बीजजनित रोगों की संभावना कम होती है। किसान को विश्वसनीय स्रोत से ही बीज खरीदना चाहिए।

2. बीजोपचार

बुवाई से पहले अनुशंसित जैविक एजेंट या फफूंदनाशी से बीजोपचार करने पर कई बीज एवं मृदाजनित रोगों से शुरुआती सुरक्षा मिलती है। बीजोपचार के लिए संबंधित फसल और रोग के अनुसार कृषि विभाग या कृषि वैज्ञानिक की अनुशंसा का पालन करना चाहिए।

3. फसल चक्र

एक ही फसल को लगातार उगाने से कई रोगजनक खेत में बने रहते हैं। दलहन, अनाज एवं अन्य फसलों का उचित क्रम अपनाने से मृदाजनित रोगों के चक्र को तोड़ने में सहायता मिलती है।

4. रोगरोधी किस्मों का चयन

रोगरोधी या रोग सहनशील किस्मों का चयन रोग प्रबंधन का सबसे सुरक्षित और प्रभावी उपाय है। स्थानीय जलवायु एवं क्षेत्र के अनुसार अनुशंसित किस्मों को प्राथमिकता देनी चाहिए।

5. खेत की स्वच्छता

खेत में रोगग्रस्त पौधों के अवशेषों को लंबे समय तक पड़े रहने देने से रोगजनक अगले मौसम में भी संक्रमण कर सकते हैं। इसलिए संक्रमित अवशेषों का उचित निपटारा तथा खेत की स्वच्छता बनाए रखना

आवश्यक है।

6. संतुलित पोषण

अत्यधिक नाइट्रोजन का प्रयोग पौधों को कुछ रोगों के प्रति अधिक संवेदनशील बना सकता है। इसलिए



नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटैश तथा सूक्ष्म पोषक तत्वों का संतुलित प्रयोग करना चाहिए।

7. उचित सिंचाई एवं जल निकास

खेत में लंबे समय तक पानी का जमाव रहने से जड़ एवं तना संबंधी रोग बढ़ सकते हैं। इसलिए फसल की आवश्यकता के अनुसार सिंचाई करें तथा खेत में उचित जल निकास की व्यवस्था रखें।

जैविक एवं रासायनिक प्रबंधन

रोग प्रबंधन में जैविक विधियों का उपयोग पर्यावरण की दृष्टि से उपयोगी है। ट्राइकोडर्मा जैसे लाभकारी सूक्ष्मजीवों का उपयोग कुछ मृदाजनित रोगों के प्रबंधन में किया जाता है। इनका प्रयोग संबंधित फसल एवं रोग के लिए अनुशंसित विधि के अनुसार करना चाहिए।

रासायनिक नियंत्रण का प्रयोग रोग की आर्थिक क्षति सीमा और स्थानीय कृषि सलाह के आधार पर ही करना चाहिए। किसी भी फफूंदनाशी या अन्य कृषि रसायन की मात्रा स्वयं निर्धारित करने के बजाय उत्पाद के लेबल तथा कृषि विशेषज्ञ की अनुशंसा का पालन करना आवश्यक है। एक ही रसायन का बार-बार उपयोग करने से रोगजनकों में प्रतिरोधकता विकसित होने की संभावना बढ़ सकती है।

रोग की पहचान में किसान की भूमिका

रोग की प्रारंभिक पहचान फसल बचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। किसान को नियमित रूप

से खेत का निरीक्षण करना चाहिए और पत्तियों, तने, जड़ों तथा फलों में दिखाई देने वाले असामान्य लक्षणों पर ध्यान देना चाहिए। खेत में रोग का कोई नया लक्षण दिखाई देने पर उसका फोटो लेकर कृषि विशेषज्ञ, कृषि विज्ञान केंद्र या कृषि विभाग से सलाह लेना उपयोगी

रहता है।

रोग की पहचान करते समय यह भी ध्यान रखना चाहिए कि प्रत्येक पीला या सूखा पत्ता रोग के कारण ही नहीं होता। पोषक तत्वों की कमी, कीट प्रकोप, जल की कमी या अधिकता तथा मौसम संबंधी कारणों से भी पौधों में समान लक्षण दिखाई दे सकते हैं। इसलिए सही पहचान के बाद ही नियंत्रण उपाय अपनाना चाहिए।

निष्कर्ष

फसलों में रोगों की समस्या उत्पादन और किसानों की आय दोनों को प्रभावित कर सकती है। रोगों की रोकथाम के लिए केवल रासायनिक दवाओं पर निर्भर रहने के बजाय स्वस्थ बीज, बीजोपचार, रोगरोधी किस्म, फसल चक्र, खेत की स्वच्छता, संतुलित पोषण, उचित सिंचाई, जैविक नियंत्रण तथा आवश्यकता आधारित रासायनिक नियंत्रण को एक साथ अपनाना चाहिए।

समय पर रोग की पहचान और वैज्ञानिक प्रबंधन से फसल को होने वाले नुकसान को काफी हद तक कम किया जा सकता है। इसलिए प्रत्येक किसान को फसल की नियमित निगरानी करते हुए स्थानीय कृषि विशेषज्ञों की सलाह के आधार पर एकीकृत रोग प्रबंधन को अपनाना चाहिए। इससे उत्पादन, गुणवत्ता और कृषि आय में सुधार के साथ-साथ खेती को अधिक टिकाऊ एवं पर्यावरण-अनुकूल बनाने में सहायता मिलेगी।



लवि कुमार शोधार्थी, आनुवंशिकी
एवं पादप प्रजनन विभाग, चौधरी चरण
सिंह, विश्वविद्यालय मेरठ (उ.प्र.)

भूमिका

कृषि उत्पादन में गुणवत्तापूर्ण बीज की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। बीज को कृषि उत्पादन की आधारभूत इकाई माना जाता है, क्योंकि स्वस्थ एवं उच्च गुणवत्ता वाले बीज से ही स्वस्थ पौधों की स्थापना, बेहतर वृद्धि तथा अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। केवल उन्नत किस्म के बीज का चयन कर लेना पर्याप्त नहीं है, बल्कि बुवाई से पूर्व बीज का उचित उपचार करना भी आवश्यक है। बीज उपचार ऐसी वैज्ञानिक प्रक्रिया है, जिसके माध्यम से बीजों को रोगजनक सूक्ष्मजीवों, कीटों तथा प्रतिकूल परिस्थितियों से बचाने के साथ-साथ उनके अंकुरण एवं प्रारंभिक वृद्धि को बेहतर बनाया जाता है।

परंपरागत रूप से किसान बीजों को रासायनिक फफूंदनाशकों से उपचारित करते रहे हैं, लेकिन आधुनिक कृषि में बीज उपचार की तकनीक काफी विकसित हो चुकी है। आज रासायनिक उपचार के साथ-साथ जैविक बीज उपचार, पोषक तत्वों से उपचार, बायोप्राइमिंग, हाइड्रोप्राइमिंग, ओस्मोप्राइमिंग, पेलटिंग तथा अन्य उन्नत तकनीकों का प्रयोग किया जा रहा है। इन तकनीकों का उद्देश्य केवल बीज को रोगों से बचाना ही नहीं, बल्कि तेज एवं समान अंकुरण, बेहतर पौध स्थापना, पोषक तत्वों के कुशल उपयोग तथा फसल की प्रारंभिक अवस्था में प्रतिकूल परिस्थितियों के प्रति सहनशीलता बढ़ाना भी है।

इस प्रकार उन्नत बीज उपचार तकनीक आधुनिक एवं टिकाऊ कृषि उत्पादन प्रणाली का महत्वपूर्ण हिस्सा बन चुकी है।

बीज उपचार का अर्थ

बुवाई से पहले बीजों पर भौतिक, रासायनिक, जैविक अथवा पोषण संबंधी उपचार करके उनकी गुणवत्ता एवं प्रदर्शन में सुधार करने की प्रक्रिया को बीज उपचार कहा जाता है। इसके अंतर्गत बीजों को उचित मात्रा में फफूंदनाशी, कीटनाशी, जैव-एजेंट, सूक्ष्म पोषक तत्व अथवा अन्य उपयोगी पदार्थों से उपचारित किया जाता है।

बीज उपचार का मुख्य उद्देश्य बीज एवं मृदा से होने वाले रोगों से सुरक्षा प्रदान करना, बीज की अंकुरण क्षमता को बढ़ाना तथा प्रारंभिक अवस्था में पौधों को स्वस्थ रखना है। यदि बीज स्वस्थ अवस्था में खेत में स्थापित होता है तो आगे चलकर फसल की वृद्धि और उत्पादन क्षमता भी बेहतर होती है।

बीज उपचार की आवश्यकता

कृषि क्षेत्र में बीज उपचार की आवश्यकता कई कारणों से होती है। बीज की सतह या उसके अंदर अनेक प्रकार के रोगजनक फफूंद, जीवाणु तथा अन्य सूक्ष्मजीव मौजूद

उन्नत बीज उपचार तकनीक एवं फसल उत्पादन में इसका महत्व

हो सकते हैं। इसके अतिरिक्त खेत की मिट्टी में भी अनेक रोगजनक पाए जाते हैं, जो अंकुरित होते पौधों को संक्रमित कर सकते हैं।

बीज उपचार के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

बीज जनित रोगों की रोकथाम।

मृदा जनित रोगों से प्रारंभिक सुरक्षा।

बीज का स्वस्थ एवं समान अंकुरण।

पौधों की प्रारंभिक वृद्धि को बढ़ावा देना।

बीज एवं मृदा में उपस्थित हानिकारक सूक्ष्मजीवों से सुरक्षा।

कीटों से प्रारंभिक सुरक्षा।

सड़न, पौध गलन तथा प्रारंभिक अवस्था के विभिन्न रोगों का प्रकोप कम किया जा सकता है।

हालांकि रासायनिक बीज उपचार करते समय केवल अनुमोदित रसायन, अनुशंसित मात्रा एवं फसल-विशिष्ट निर्देशों का पालन करना चाहिए। अत्यधिक मात्रा में रसायन का प्रयोग बीज के अंकुरण और पर्यावरण दोनों के लिए हानिकारक हो सकता है।

2. जैविक बीज उपचार

जैविक बीज उपचार वर्तमान समय की महत्वपूर्ण एवं पर्यावरण-अनुकूल तकनीक है। इसमें लाभकारी

बीज उपचार कैसे करें?

अच्छी फसल की शुरुआत बीज उपचार से होती है।

इससे बीज सुरक्षित रहता है, अंकुरण अच्छा होता है और पौधे मजबूत बनते हैं।

बीज उपचार क्यों जरूरी?



फफूंद और कीट से सुरक्षा



अंकुरण प्रतिशत बढ़ता है



पौधे मजबूत बनते हैं



उत्पादन बढ़ता है

कब करें?



बुवाई से 24 घंटे पहले

पौधों में पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ाना।
प्रतिकूल पर्यावरणीय परिस्थितियों में पौध स्थापना में सहायता।

फसल की उत्पादकता एवं गुणवत्ता में वृद्धि।

कृषि रसायनों के अनावश्यक प्रयोग को कम करना।

उन्नत बीज उपचार की प्रमुख तकनीकें

आधुनिक कृषि में बीज उपचार के लिए विभिन्न उन्नत तकनीकों का प्रयोग किया जा रहा है। इनमें रासायनिक उपचार के साथ जैविक एवं भौतिक तकनीकों का विशेष महत्व है।

1. रासायनिक बीज उपचार

रासायनिक बीज उपचार सबसे अधिक प्रचलित तकनीकों में से एक है। इसमें फफूंदनाशी, कीटनाशी या अन्य अनुमोदित रसायनों की निर्धारित मात्रा से बीजों को उपचारित किया जाता है।

फफूंदनाशी बीज उपचार से बीज एवं मृदा जनित रोगों को नियंत्रित करने में सहायता मिलती है। इससे बीज

सूक्ष्मजीवों का उपयोग किया जाता है। प्रमुख जैव-एजेंटों में Trichoderma, Pseudomonas fluorescens, Bacillus तथा विभिन्न जैव उर्वरक सूक्ष्मजीव शामिल हैं।

दलहनी फसलों में Rhizobium आधारित कल्चर का बीज उपचार विशेष रूप से उपयोगी होता है। यह पौधों की जड़ों में गांठों के निर्माण में सहायता करता है और वायुमंडलीय नाइट्रोजन के जैविक स्थिरीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

जैविक बीज उपचार के लाभ

बीज जनित रोगों का नियंत्रण।

लाभकारी सूक्ष्मजीवों की संख्या में वृद्धि।

पौधों की जड़ वृद्धि में सुधार।

पोषक तत्वों की उपलब्धता में सहायता।

रासायनिक दवाओं पर निर्भरता में कमी।

मृदा स्वास्थ्य को बनाए रखने में योगदान।

3. बीज प्राइमिंग तकनीक

बीज प्राइमिंग एक उन्नत बीज उपचार तकनीक है,



जिसमें बीजों को नियंत्रित परिस्थितियों में आंशिक रूप से अंकुरण की दिशा में सक्रिय किया जाता है, लेकिन वास्तविक जड़ निकलने से पहले उन्हें सुखाकर बुवाई के लिए तैयार किया जाता है।

प्राइमिंग से बीजों में जैव-रासायनिक प्रक्रियाएं सक्रिय होती हैं। इसके कारण बुवाई के बाद अंकुरण अधिक तेज एवं समान हो सकता है।

बीज प्राइमिंग के प्रमुख प्रकार

हाइड्रोप्राइमिंग

इसमें बीजों को निर्धारित अवधि तक पानी के संपर्क में रखा जाता है और फिर उचित नमी स्तर तक सुखाकर बुवाई की जाती है। यह अपेक्षाकृत सरल और कम लागत वाली तकनीक है।

ओस्मोप्राइमिंग

इसमें नियंत्रित सांद्रता वाले ओस्मोटिक घोल का उपयोग किया जाता है। इसका उद्देश्य बीज में पानी के अवशोषण को नियंत्रित करना होता है, जिससे अंकुरण संबंधी जैव-रासायनिक प्रक्रियाएं पहले से सक्रिय हो सकें।

हार्मोन प्राइमिंग

इस तकनीक में पौध वृद्धि नियामकों के उपयुक्त एवं अनुशंसित घोल का उपयोग किया जाता है। इसका उद्देश्य अंकुरण एवं प्रारंभिक पौध वृद्धि को बेहतर बनाना होता है।

बायोप्राइमिंग

बायोप्राइमिंग में बीज प्राइमिंग के साथ लाभकारी सूक्ष्मजीवों का प्रयोग किया जाता है। यह तकनीक बीज के अंकुरण और पौधों की प्रारंभिक रोग प्रतिरोधक क्षमता को बेहतर बनाने में उपयोगी हो सकती है।

4. पोषक तत्व आधारित बीज उपचार

बीजों को आवश्यक सूक्ष्म एवं स्थूल पोषक तत्वों से उपचारित करना भी आधुनिक बीज उपचार का महत्वपूर्ण हिस्सा है। जंक, आयर्न, मैंगनीज, मोलिब्डेनम आदि सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी वाली परिस्थितियों में उचित बीज उपचार प्रारंभिक पौध वृद्धि में सहायता कर सकता है।

विशेषकर दलहनी फसलों में मोलिब्डेनम एवं अन्य आवश्यक पोषक तत्वों की उपलब्धता नाइट्रोजन स्थिरीकरण जैसी प्रक्रियाओं को प्रभावित कर सकती है।

पोषक तत्व आधारित बीज उपचार से—

प्रारंभिक जड़ विकास बेहतर हो सकता है।

पौधों में पोषक तत्वों की कमी के लक्षण कम हो सकते हैं।

पौधों की स्थापना बेहतर हो सकती है।

फसल की प्रारंभिक वृद्धि में तेजी आ सकती है।

हालांकि पोषक तत्वों की मात्रा फसल, मिट्टी और

स्थानीय कृषि अनुशंसाओं के अनुसार निर्धारित की जानी चाहिए।

5. बीज पेलटिंग तकनीक

स्ट्रुक्स श्रद्धाघट्टहृद्दु में बीज के चारों ओर एक समान परत बनाई जाती है, जिसमें आवश्यक पोषक तत्व, जैविक एजेंट या अन्य अनुमोदित पदार्थ शामिल किए जा सकते हैं।

छोटे एवं अनियमित आकार वाले बीजों के लिए यह तकनीक विशेष उपयोगी हो सकती है। इससे बीज का आकार एवं आकारिकी एकरूप होती है और मशीन से बुवाई करना आसान हो सकता है।

बीज पेलटिंग से—



बीज उपचार

बीजों की एकरूपता बढ़ती है।

सटीक बुवाई में सहायता मिलती है।

बीज की हैंडलिंग आसान होती है।

आवश्यक पदार्थों को बीज के आसपास उपलब्ध कराया जा सकता है।

6. फिल्म कोटिंग तकनीक

फिल्म कोटिंग में बीज के ऊपर बहुत पतली एवं समान परत बनाई जाती है। इस परत में आवश्यकता के अनुसार अनुमोदित फफूंदनाशी, जैविक एजेंट, पोषक तत्व या अन्य बीज उपचार पदार्थ शामिल किए जा सकते हैं।

इस तकनीक का विशेष लाभ यह है कि उपचारित पदार्थ बीज की सतह पर अपेक्षाकृत समान रूप से वितरित किए जा सकते हैं। बड़े पैमाने पर यांत्रिक बुवाई एवं बीज प्रसंस्करण में यह तकनीक उपयोगी हो सकती है।

7. गर्म पानी द्वारा बीज उपचार

कुछ बीज जनित रोगों के प्रबंधन में गर्म पानी उपचार एक महत्वपूर्ण भौतिक तकनीक है। इसमें बीजों को निर्धारित तापमान एवं निर्धारित अवधि के लिए गर्म पानी में उपचारित किया जाता है।

इस प्रक्रिया में तापमान और समय का अत्यंत सावधानीपूर्वक पालन करना आवश्यक है, क्योंकि अधिक तापमान या अधिक समय तक उपचार करने से

बीज की अंकुरण क्षमता प्रभावित हो सकती है।

इसलिए इस तकनीक का उपयोग संबंधित फसल एवं रोग के लिए उपलब्ध वैज्ञानिक अनुशंसाओं के अनुसार ही किया जाना चाहिए।

8. उन्नत जैव-प्राइमिंग

जैव-प्राइमिंग आधुनिक बीज उपचार में तेजी से लोकप्रिय हो रही तकनीक है। इसमें बीज को लाभकारी सूक्ष्मजीवों के संपर्क में लाया जाता है और नियंत्रित नमी की स्थिति में बीज की जैव-रासायनिक गतिविधियों को सक्रिय किया जाता है।

Trichoderma, Bacillus तथा Pseudomonas जैसे सूक्ष्मजीवों का उपयोग कई परिस्थितियों में पौधों की प्रारंभिक वृद्धि एवं रोग प्रबंधन में उपयोगी पाया गया है।

यह तकनीक विशेष रूप से टिकाऊ कृषि एवं एकीकृत रोग प्रबंधन की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

बीज उपचार और

अंकुरण का संबंध

बीज की गुणवत्ता का सबसे पहला प्रभाव उसके अंकुरण पर दिखाई देता है। स्वस्थ बीज में उचित नमी, तापमान और ऑक्सीजन मिलने पर अंकुरण तेजी से होता है। लेकिन बीज की सतह पर रोगजनकों की उपस्थिति, कम जीवन शक्ति या प्रतिकूल परिस्थितियां अंकुरण को प्रभावित कर सकती हैं।

उचित बीज उपचार से बीजों में रोगजनकों का दबाव कम किया जा सकता है तथा कुछ प्राइमिंग तकनीकों द्वारा अंकुरण संबंधी प्रक्रियाओं को पहले से सक्रिय किया जा सकता है। परिणामस्वरूप खेत में पौधों की स्थापना अधिक समान हो सकती है।

बीज उपचार का फसल उत्पादन में महत्व

1. बेहतर पौध स्थापना

बीज उपचार के कारण स्वस्थ पौधों की स्थापना में सहायता मिलती है। समान पौध स्थापना से खेत में पौधों के बीच प्रतिस्पर्धा कम होती है और संसाधनों का बेहतर उपयोग संभव होता है।

2. बीज जनित रोगों से सुरक्षा

कई रोगजनक बीज के साथ एक खेत से दूसरे खेत तक पहुंच सकते हैं। बीज उपचार इन रोगजनकों के प्रसार को कम करने का प्रभावी उपाय है।

3. प्रारंभिक कीट सुरक्षा

कुछ फसलों में बीज या मृदा उपचार के माध्यम से प्रारंभिक अवस्था में पौधों को कुछ हानिकारक कीटों से



सुरक्षा प्रदान की जा सकती है। हालांकि कीटनाशी आधारित बीज उपचार में वर्तमान पंजीकरण एवं लेबल-क्लेम का पालन आवश्यक है।

4. पौधों की जड़ वृद्धि में सुधार

जैविक उपचार एवं प्राइमिंग तकनीकें कई परिस्थितियों में जड़ विकास को बेहतर बनाने में सहायता कर सकती हैं। मजबूत जड़ प्रणाली पौधे को जल एवं पोषक तत्वों के अवशोषण में मदद करती है।

5. उत्पादन लागत में कमी

बीज उपचार अपेक्षाकृत कम मात्रा में उपचार सामग्री के उपयोग से प्रारंभिक अवस्था में सुरक्षा प्रदान कर सकता है। इससे कुछ परिस्थितियों में बाद के रासायनिक हस्तक्षेप की आवश्यकता कम हो सकती है।

6. उपज में वृद्धि

स्वस्थ एवं समान पौध स्थापना से फसल की उत्पादन क्षमता बढ़ाने में सहायता मिलती है। हालांकि वास्तविक उपज पर किस्म, मिट्टी, मौसम, सिंचाई, पोषण और कीट-रोग प्रबंधन सहित अनेक कारकों का प्रभाव पड़ता है।

बीज उपचार की वैज्ञानिक विधि

बीज उपचार करते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए—

पहला चरण - गुणवत्तापूर्ण बीज का चयन प्रमाणित, स्वस्थ एवं अच्छी अंकुरण क्षमता वाले बीज का चयन करें।

दूसरा चरण - बीज की सफाई
बीज से टूटे, रोगग्रस्त, क्षतिग्रस्त तथा अन्य अशुद्ध बीजों को अलग करें।

तीसरा चरण - उपचार सामग्री का चयन
फसल एवं समस्या के अनुसार उचित रासायनिक या जैविक उपचार सामग्री का चयन करें।

चौथा चरण - निर्धारित मात्रा
उपचार सामग्री की मात्रा संबंधित फसल के लिए अनुशंसित निर्देशों के अनुसार रखें।

पांचवां चरण - समान उपचार
बीज के प्रत्येक दाने पर उपचार सामग्री समान रूप से लगनी चाहिए।

छठा चरण - सुखाना
यदि उपचार विधि में आवश्यक हो तो उपचारित बीजों को छाया में उचित तरीके से सुखाएं।

सातवां चरण - बुवाई
उपचारित बीजों की बुवाई अनुशंसित समय एवं उचित नमी वाली मिट्टी में करें।

बीज उपचार में सावधानियां

बीज उपचार लाभकारी तकनीक है, लेकिन

गलत तरीके से किया गया उपचार नुकसान भी पहुंचा सकता है। इसलिए निम्नलिखित सावधानियां आवश्यक हैं—

केवल अनुशंसित एवं अनुमोदित उत्पाद का प्रयोग करें।



उत्पाद के लेबल एवं उपयोग निर्देशों का पालन करें। रसायनों की मात्रा अपनी इच्छा से न बढ़ाएं।

जैविक एवं रासायनिक उपचारों को मिलाने से पहले उनकी संगतता की जानकारी लें।

उपचारित बीज को खाद्य एवं पशु आहार के रूप में उपयोग न करें।

उपचारित बीजों को स्पष्ट रूप से चिह्नित करके अलग रखें।

बीज उपचार करते समय दस्ताने, मास्क एवं आवश्यक व्यक्तिगत सुरक्षा उपकरणों का उपयोग करें।

उपचारित बीज को नालियों, तालाबों एवं जल स्रोतों में न बहने दें।

अत्यधिक नमी वाले बीज को लंबे समय तक बंद अवस्था में न रखें।

जैव-एजेंटों को तेज धूप एवं अत्यधिक तापमान से बचाएं।

टिकाऊ कृषि में बीज उपचार की भूमिका

वर्तमान समय में कृषि का लक्ष्य केवल अधिक उत्पादन प्राप्त करना नहीं है, बल्कि उत्पादन के साथ-साथ मृदा स्वास्थ्य, पर्यावरण संरक्षण और कृषि संसाधनों का विवेकपूर्ण उपयोग भी आवश्यक है। इस दृष्टि से बीज उपचार एक महत्वपूर्ण तकनीक है।

यदि प्रारंभिक अवस्था में ही बीजों को रोगों एवं कुछ कीटों से सुरक्षा मिल जाती है तो खेत में बार-बार रासायनिक उपचार की आवश्यकता कम हो सकती है। जैविक बीज उपचार के प्रयोग से लाभकारी सूक्ष्मजीवों को बढ़ावा दिया जा सकता है तथा रासायनिक इनपुट पर निर्भरता कम करने में सहायता मिलती है।

इस प्रकार बीज उपचार एकीकृत कीट एवं रोग प्रबंधन (IPM) तथा टिकाऊ कृषि का महत्वपूर्ण घटक बन सकता है।

आधुनिक कृषि में बीज उपचार का भविष्य

कृषि में तकनीकी विकास के साथ बीज उपचार की तकनीक भी लगातार उन्नत हो रही है। आने वाले समय में बीज उपचार अधिक सटीक, फसल-विशिष्ट और पर्यावरण-अनुकूल होने की संभावना है।

नैनो-आधारित बीज उपचार, उन्नत बायोप्राइमिंग, माइक्रोबियल कंसोर्टिया, नियंत्रित रिलीज तकनीक तथा डिजिटल बीज प्रसंस्करण जैसी अवधारणाओं पर अनुसंधान किया जा रहा है। इन तकनीकों का उद्देश्य उपचार सामग्री की दक्षता बढ़ाना और पौधों को उनकी आवश्यकता के अनुसार बेहतर सुरक्षा एवं पोषण उपलब्ध कराना है।

भविष्य में किसान के लिए ऐसा बीज उपचार पैकेज विकसित किया जा सकता है जिसमें बीज सुरक्षा, पोषण, जैविक एजेंट और प्राइमिंग जैसी तकनीकों को वैज्ञानिक रूप से एकीकृत किया जाए।

निष्कर्ष

उन्नत बीज उपचार तकनीक आधुनिक कृषि उत्पादन की आधारभूत एवं उपयोगी तकनीकों में से एक है। स्वस्थ बीज से स्वस्थ पौधों की स्थापना होती है और स्वस्थ पौधों से बेहतर फसल उत्पादन प्राप्त करने की संभावना बढ़ती है। रासायनिक बीज उपचार के साथ-साथ जैविक बीज उपचार, बीज प्राइमिंग, बायोप्राइमिंग, पोषक तत्व उपचार, फिल्म कोटिंग एवं पेलेटिंग जैसी आधुनिक तकनीकें कृषि उत्पादन को अधिक वैज्ञानिक एवं टिकाऊ बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं।

बीज उपचार से बीज एवं मृदा जनित रोगों से प्रारंभिक सुरक्षा, बेहतर अंकुरण, समान पौध स्थापना, जड़ विकास तथा फसल की प्रारंभिक वृद्धि में सहायता मिल सकती है। हालांकि किसी भी उपचार की सफलता के लिए सही बीज, सही तकनीक, सही मात्रा और सही समय का पालन आवश्यक है।

अतः किसानों को गुणवत्तापूर्ण बीज के चयन के साथ बुवाई से पूर्व वैज्ञानिक बीज उपचार को अपनी नियमित कृषि पद्धति का हिस्सा बनाना चाहिए। कृषि विभाग, कृषि विश्वविद्यालयों एवं वैज्ञानिक संस्थानों की अनुशंसाओं के अनुसार बीज उपचार अपनाकर उत्पादन लागत को नियंत्रित करने, फसल की उत्पादकता बढ़ाने तथा टिकाऊ एवं पर्यावरण-अनुकूल कृषि को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण योगदान दिया जा सकता है।



पंकज कृषि प्राविधिक सहायक

कृषि विभाग, बी.एससी. (ऑनर्स) कृषि

एम.एससी. कृषि — कीट विज्ञान, उत्तर प्रदेश सरकार

परिचय

कृषि उत्पादन को प्रभावित करने वाले प्रमुख जैविक कारकों में कीटों का महत्वपूर्ण स्थान है। फसलों पर विभिन्न प्रकार के कीट आक्रमण करके पत्तियों, तनों, जड़ों, फूलों, फलों, फलियों तथा बीजों को नुकसान पहुंचाते हैं। कुछ कीट पौधों का रस चूसते हैं, जबकि कुछ पत्तियों एवं अन्य कोमल भागों को खाते हैं। कई कीट पौधों में रोगजनक जीवों के वाहक के रूप में भी कार्य कर सकते हैं। इनके कारण फसल की वृद्धि, उपज और गुणवत्ता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

परंपरागत रूप से कीट नियंत्रण के लिए मुख्यतः रासायनिक कीटनाशकों पर निर्भरता रही है। हालांकि कीटनाशकों का उचित एवं आवश्यकता आधारित प्रयोग फसल सुरक्षा में प्रभावी हो सकता है, लेकिन उनका अनावश्यक, बार-बार या अनुचित उपयोग कीटों में प्रतिरोध, अवशेष, लाभकारी कीटों पर प्रतिकूल प्रभाव तथा पर्यावरणीय समस्याओं को बढ़ा सकता है।

ऐसी परिस्थितियों में एकीकृत कीट प्रबंधन (Integrated Pest Management—IPM) एक वैज्ञानिक एवं टिकाऊ दृष्टिकोण है। इसमें कृषि, यांत्रिक, भौतिक, जैविक, व्यवहारिक तथा आवश्यकता पड़ने पर रासायनिक नियंत्रण विधियों को समन्वित रूप से अपनाया जाता है। इसका उद्देश्य प्रत्येक कीट को पूरी तरह समाप्त करना नहीं, बल्कि उसकी संख्या को आर्थिक क्षति स्तर से नीचे बनाए रखना है।

फसलों के प्रमुख कीटों का एकीकृत कीट प्रबंधन एवं प्रभावी नियंत्रण



1. एकीकृत कीट प्रबंधन का अर्थ

एकीकृत कीट प्रबंधन ऐसी वैज्ञानिक प्रणाली है जिसमें उपलब्ध विभिन्न कीट नियंत्रण विधियों का इस प्रकार समन्वय किया जाता है कि कीटों से होने वाली आर्थिक क्षति को कम किया जा सके और पर्यावरण एवं लाभकारी जीवों की सुरक्षा भी बनी रहे।

IPM में कीट की पहचान, नियमित निगरानी, आर्थिक क्षति स्तर का निर्धारण तथा आवश्यकता के अनुसार उचित नियंत्रण उपायों का चयन महत्वपूर्ण है।

2. IPM के प्रमुख उद्देश्य

एकीकृत कीट प्रबंधन के मुख्य उद्देश्य हैं—
कीटों से होने वाली आर्थिक क्षति को कम करना।

कीटनाशकों के अनावश्यक उपयोग को कम करना।

कीटों में कीटनाशक प्रतिरोध की संभावना को कम करना।

लाभकारी एवं परागणकारी कीटों का संरक्षण।

पर्यावरणीय प्रदूषण को कम करना।

उत्पादन लागत को नियंत्रित करना।

सुरक्षित एवं गुणवत्तापूर्ण कृषि उत्पाद प्राप्त करना।

3. फसल में कीटों की पहचान

प्रभावी कीट प्रबंधन की पहली आवश्यकता सही कीट पहचान है। अलग-अलग कीट पौधे के अलग-अलग भागों को नुकसान पहुंचाते हैं।

उदाहरण के लिए—

माहू एवं सफेद मक्खी रस चूसने वाले कीट हैं।
तना छेदक पौधे के तने को नुकसान पहुंचाता है।
फल एवं तना छेदक अंदर से नुकसान पहुंचा सकते हैं।

पत्ती खाने वाली इल्ली पत्तियों को खाकर नुकसान करती है।

दीमक जड़ों एवं भूमिगत भागों को नुकसान पहुंचा सकती है।

सही पहचान के बिना गलत नियंत्रण उपाय अपनाने की संभावना बढ़ जाती है।

4. कीट निगरानी का महत्व

IPM का आधार नियमित कीट निगरानी है। किसान को खेत में नियमित निरीक्षण करके कीटों की संख्या, उनकी अवस्था और फसल को हुए नुकसान का आकलन करना चाहिए।

निगरानी के लिए—

पौधों का निरीक्षण,
पीले चिपचिपे ट्रैप,
नीले चिपचिपे ट्रैप,
फेरोमोन ट्रैप,
प्रकाश प्रपंच,
स्वीप नेट

जैसी विधियों का उपयोग परिस्थितियों के अनुसार किया जा सकता है।

5. आर्थिक क्षति स्तर

हर कीट की उपस्थिति का अर्थ यह नहीं है कि तुरंत कीटनाशक का प्रयोग किया जाए। कुछ संख्या में कीटों की उपस्थिति के बावजूद फसल को होने वाली क्षति आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण नहीं हो सकती।

आर्थिक क्षति स्तर (ETL) वह सीमा है जिस पर कीट की संख्या इतनी बढ़ जाती है कि उसके नियंत्रण की आवश्यकता उत्पन्न होती है।

शुद्ध फसल, कीट, मौसम, किस्म और क्षेत्र के अनुसार अलग-अलग हो सकता है। इसलिए स्थानीय कृषि विश्वविद्यालय या कृषि विभाग की अनुशंसाओं को प्राथमिकता देनी चाहिए।



6. स्वस्थ एवं गुणवत्तापूर्ण बीज का उपयोग

कीट प्रबंधन की शुरुआत बुवाई से पहले ही की जा सकती है। स्वस्थ, प्रमाणित एवं क्षेत्र के लिए अनुशंसित बीज का उपयोग करने से फसल का प्रारंभिक विकास अच्छा होता है।

मजबूत एवं स्वस्थ पौधे कई प्रतिकूल परिस्थितियों को बेहतर ढंग से सहन कर सकते हैं।

7. प्रतिरोधी किस्मों का उपयोग

जहां उपलब्ध हों, वहां कीट प्रतिरोधी या

खरपतवार और स्वयं उगने वाले पौधे कई कीटों के लिए वैकल्पिक भोजन एवं आश्रय प्रदान कर सकते हैं। इसलिए फसल अवशेषों एवं खरपतवारों का उचित प्रबंधन कीटों की प्रारंभिक आबादी को कम करने में सहायता कर सकता है।

11. यांत्रिक एवं भौतिक नियंत्रण

कुछ कीटों को सीधे हाथ से चुनकर नष्ट किया जा सकता है। बड़े आकार की इल्ली, अंड समूह या संक्रमित पौध भागों को खेत से हटाना उपयोगी हो सकता है।

सूक्ष्मजीवों का उपयोग करके हानिकारक कीटों की आबादी को नियंत्रित किया जाता है।

प्राकृतिक शत्रुओं में—

परभक्षी,
परजीवी कीट,
मकड़ियां,
पक्षी
आदि शामिल हो सकते हैं।

15. प्रमुख परभक्षी कीट

कई लाभकारी कीट फसल के हानिकारक कीटों को खाते हैं। उदाहरण के लिए लेडीबर्ड बीटल माहू जैसे रस चूसने वाले कीटों का शिकार करती है।

क्राइसोपरेला की लार्वा अवस्था भी कई छोटे एवं कोमल कीटों को खाती है।

ऐसे प्राकृतिक शत्रुओं का संरक्षण IPM का महत्वपूर्ण हिस्सा है।

16. परजीवी कीट

कुछ परजीवी कीट अपने जीवन चक्र को हानिकारक कीटों के शरीर या अंडों में पूरा करते हैं। ट्राइकोग्रामा जैसे अंड परजीवी का उपयोग कुछ फसलों में तना छेदक एवं अन्य लेपिडोप्टेरन कीटों के प्रबंधन में किया जाता है।

जैविक नियंत्रण एजेंटों का उपयोग वैज्ञानिक अनुशंसाओं के अनुसार करना चाहिए।

17. सूक्ष्मजीवी जैव-कीटनाशी

कुछ सूक्ष्मजीव कीटों के नियंत्रण में उपयोगी होते हैं।

प्रमुख उदाहरण हैं—

Bacillus thuringiensis (Bt)
Beauveria bassiana
Metarhizium anisopliae

Verticillium समूह के कुछ उपयोगी जैव-एजेंट

इनका प्रभाव लक्षित कीट, तापमान, आर्द्रता और प्रयोग की उचित तकनीक पर निर्भर करता है।

18. वनस्पति आधारित कीट नियंत्रण

नीम आधारित उत्पाद IPM में उपयोगी विकल्प हो सकते हैं। नीम में पाए जाने वाले कुछ सक्रिय घटक कीटों के भोजन, वृद्धि एवं प्रजनन को प्रभावित कर सकते हैं।

नीम आधारित उत्पादों का प्रयोग अनुशंसित मात्रा एवं सही समय पर किया जाना चाहिए।

19. रासायनिक नियंत्रण की भूमिका

IPM में रासायनिक नियंत्रण को पूरी तरह समाप्त करने का उद्देश्य नहीं है। जब कीट आबादी आर्थिक क्षति स्तर तक पहुंच जाए और अन्य उपाय पर्याप्त न हों, तब आवश्यकता के अनुसार अनुशंसित

एकीकृत कीट प्रबंधन

फसल उत्पादन के लिए एक प्रभावी पारिस्थितिकी तंत्र दृष्टिकोण।



सहनशील किस्मों का उपयोग IPM का प्रभावी घटक हो सकता है।

प्रतिरोधी किस्मों से कीटों की वृद्धि एवं नुकसान को सीमित करने में सहायता मिल सकती है तथा कीटनाशकों पर निर्भरता कम हो सकती है।

8. कृषि संबंधी नियंत्रण उपाय

कृषि विधियों द्वारा कीटों के जीवन चक्र एवं प्रजनन को प्रभावित किया जा सकता है।

प्रमुख कृषि उपाय हैं—

समय पर बुवाई।
उचित फसल घनत्व।
संतुलित उर्वरक उपयोग।
फसल चक्र।
खेत की स्वच्छता।
संक्रमित पौध भागों को हटाना।
उचित सिंचाई एवं जल प्रबंधन।
समय पर कटाई।

9. फसल चक्र की भूमिका

एक ही फसल को लगातार उगाने से कुछ विशिष्ट कीटों को लगातार भोजन एवं अनुकूल वातावरण मिलता रहता है। फसल चक्र द्वारा इस निरंतरता को तोड़ा जा सकता है। विशेष रूप से मिट्टी में रहने वाले एवं विशिष्ट फसलों पर निर्भर कीटों के प्रबंधन में फसल चक्र उपयोगी हो सकता है।

10. खेत की स्वच्छता

खेत में बचे हुए संक्रमित पौध अवशेष,

इसके अलावा—

जाल,

ट्रेप,

प्रकाश प्रपंच,

चिपचिपे ट्रेप,

भौतिक अवरोध

का उपयोग भी परिस्थितियों के अनुसार किया जा सकता है।

12. फेरोमोन ट्रेप

फेरोमोन ट्रेप विशेष रूप से कुछ कीट प्रजातियों के नर वयस्कों की निगरानी एवं आकर्षण के लिए उपयोग किए जाते हैं। इनका उपयोग कीट की उपस्थिति का पता लगाने, आबादी की निगरानी तथा कुछ परिस्थितियों में सामूहिक फंसाने के लिए किया जा सकता है। फेरोमोन ट्रेप की संख्या एवं लगाने का समय संबंधित कीट एवं फसल की अनुशंसाओं के अनुसार होना चाहिए।

13. प्रकाश प्रपंच

कई रात्रिचर कीट प्रकाश की ओर आकर्षित होते हैं। इस व्यवहार का उपयोग प्रकाश प्रपंच के माध्यम से कीट निगरानी एवं नियंत्रण में किया जा सकता है।

यह विशेष रूप से वयस्क कीटों की उपस्थिति का अनुमान लगाने में उपयोगी हो सकता है।

14. जैविक नियंत्रण

जैविक नियंत्रण में प्राकृतिक शत्रुओं एवं



कीटनाशक का प्रयोग किया जा सकता है।

यह प्रयोग—

सही कीट की पहचान,

सही कीटनाशक,

सही मात्रा,

सही समय,

सही विधि

के आधार पर होना चाहिए।

20. कीटनाशक प्रतिरोध प्रबंधन

एक ही क्रियाविधि वाले कीटनाशक का बार-बार प्रयोग करने से कीटों में प्रतिरोध विकसित होने की संभावना बढ़ सकती है।

इसलिए अलग-अलग Mode of Action (MoA) समूहों के कीटनाशकों का वैज्ञानिक एवं अनुशंसित तरीके से उपयोग करना चाहिए। अनावश्यक मिश्रण या बार-बार एक ही सक्रिय पदार्थ के उपयोग से बचना चाहिए।

21. लाभकारी कीटों का संरक्षण

खेत में मौजूद सभी कीट हानिकारक नहीं होते। कई कीट प्राकृतिक शत्रु या परागणकर्ता होते हैं।

इसलिए अनावश्यक व्यापक प्रभाव वाले कीटनाशकों के प्रयोग से बचना चाहिए तथा आवश्यकता होने पर अपेक्षाकृत लक्षित एवं अनुशंसित विकल्पों को प्राथमिकता देनी चाहिए।

22. संतुलित पोषण एवं कीट प्रबंधन

अत्यधिक नाइट्रोजन उपयोग से कुछ फसलों में कोमल एवं रसदार वृद्धि बढ़ सकती है, जो कुछ रस चूसने वाले कीटों के लिए अनुकूल हो सकती है।

इसलिए मृदा परीक्षण एवं फसल की आवश्यकता के आधार पर संतुलित पोषक तत्व प्रबंधन दृष्टिकोण महत्वपूर्ण हिस्सा है।

23. खरपतवार प्रबंधन

खरपतवार कई कीटों के लिए वैकल्पिक भोजन एवं आश्रय का कार्य कर सकते हैं। इसलिए खेत एवं आसपास के क्षेत्र में खरपतवारों का वैज्ञानिक प्रबंधन आवश्यक है। हालांकि सभी खरपतवारों को बिना सोचे-समझे समाप्त करना भी उचित नहीं है, क्योंकि कुछ वनस्पतियां लाभकारी कीटों को आश्रय या भोजन प्रदान कर सकती हैं। इसलिए लक्षित एवं समन्वित खरपतवार प्रबंधन अधिक उचित है।

24. फसल-विशिष्ट IPM

प्रत्येक फसल में कीटों की समस्या अलग होती है। उदाहरण के लिए—

धान- तना छेदक, पत्ती लपेटक, गंधी बग आदि।

कपास- सफेद मक्खी, माहू, थ्रिप्स, गुलाबी सुंडी आदि।

दलहन- फली छेदक, माहू आदि।



सब्जियां- फल एवं तना छेदक, सफेद मक्खी, थ्रिप्स आदि।

इसलिए प्रत्येक फसल के लिए अलग IPM योजना बनाना आवश्यक है।

25. धान में एकीकृत कीट प्रबंधन

धान में स्वस्थ पौध तैयार करना, उचित रोपाई घनत्व, संतुलित पोषण, नियमित निगरानी तथा फेरोमोन ट्रैप जैसी तकनीकों का उपयोग किया जा सकता है।

तना छेदक या अन्य कीटों की आबादी आर्थिक सीमा से ऊपर जाने पर कृषि विशेषज्ञों की अनुशंसा के अनुसार उपयुक्त नियंत्रण उपाय अपनाने चाहिए।

26. गेहूं में कीट प्रबंधन

गेहूं में दीमक, माहू तथा अन्य कीट कुछ क्षेत्रों में समस्या उत्पन्न कर सकते हैं। उचित खेत तैयारी, स्वस्थ बीज, समय पर बुवाई, संतुलित पोषण और नियमित निगरानी महत्वपूर्ण हैं।

समस्या की पुष्टि होने के बाद ही अनुशंसित नियंत्रण उपाय अपनाना चाहिए।

27. कपास में IPM

कपास में रस चूसने वाले कीट एवं विभिन्न सुंडियां आर्थिक नुकसान पहुंचा सकती हैं। कपास में फेरोमोन ट्रैप, नियमित निगरानी, प्राकृतिक शत्रुओं का संरक्षण तथा आवश्यकता आधारित कीटनाशक प्रयोग महत्वपूर्ण हैं।

विशेष रूप से सुंडियों के प्रबंधन में फसल की अवस्था एवं कीट की प्रजाति की सही पहचान आवश्यक है।

28. सब्जियों में दृष्टिकोण

सब्जी फसलों में कीटों के कारण उत्पाद की गुणवत्ता एवं बाजार मूल्य प्रभावित हो सकता है। पीले चिपचिपे ट्रैप, फेरोमोन ट्रैप, जैविक नियंत्रण, खेत की स्वच्छता तथा आवश्यकता आधारित कीटनाशक प्रयोग उपयोगी हो सकते हैं।

सब्जियों में कटाई से पहले निर्धारित प्रतीक्षा अवधि का पालन विशेष रूप से आवश्यक है।

29. किसान के लिए

व्यावहारिक IPM

मॉडल

किसान निम्न क्रम अपनाकर प्रभावी कीट प्रबंधन कर सकता है—

सही कीट पहचान * नियमित निगरानी * कीट आबादी का आकलन * ETL से तुलना * कृषि/यांत्रिक उपाय * जैविक नियंत्रण * आवश्यकता होने पर रासायनिक नियंत्रण * परिणाम का पुनः मूल्यांकन।

इस प्रक्रिया से कीटनाशकों के अनावश्यक उपयोग को कम करने में सहायता मिल सकती है।

30. निष्कर्ष

फसलों के प्रमुख कीटों का प्रभावी नियंत्रण केवल कीटनाशकों के प्रयोग से संभव नहीं है। एकीकृत कीट प्रबंधन एक वैज्ञानिक, आर्थिक एवं पर्यावरण-अनुकूल दृष्टिकोण है, जिसमें कीट की सही पहचान, नियमित निगरानी, आर्थिक क्षति स्तर का निर्धारण, स्वस्थ बीज, फसल चक्र, खेत की स्वच्छता, यांत्रिक एवं भौतिक उपाय, जैविक नियंत्रण तथा आवश्यकता आधारित रासायनिक नियंत्रण को एक साथ अपनाया जाता है।

IPM का सबसे महत्वपूर्ण सिद्धांत है कि कीट को पूरी तरह समाप्त करने के बजाय उसकी आबादी को ऐसी सीमा में रखा जाए जिससे फसल को आर्थिक नुकसान न हो। किसानों को अनावश्यक एवं बार-बार कीटनाशक प्रयोग से बचते हुए वैज्ञानिक अनुशंसाओं के आधार पर कीट नियंत्रण करना चाहिए।

इस प्रकार एकीकृत कीट प्रबंधन से उत्पादन लागत को नियंत्रित करने, कीटनाशक प्रतिरोध की समस्या को कम करने, लाभकारी जीवों के संरक्षण, पर्यावरण सुरक्षा तथा सुरक्षित कृषि उत्पाद प्राप्त करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया जा सकता है।



✍ **वसीम अकरम** कार्यक्रम निदेशक

विधान ऑर्गेनाइजेशन, बी.एससी. (ऑनर्स)

कृषि, एम.एससी. एग्रोनॉमी, सोनभद्र, उत्तर प्रदेश

परिचय

कृषि क्षेत्र प्राकृतिक परिस्थितियों पर अत्यधिक निर्भर है। तापमान, वर्षा, आर्द्रता, सूर्यप्रकाश तथा अन्य मौसम संबंधी कारक फसल की वृद्धि, उत्पादन एवं गुणवत्ता को प्रभावित करते हैं। वर्तमान समय में जलवायु परिवर्तन के कारण तापमान में वृद्धि, वर्षा की अनियमितता, लंबे सूखे, अचानक अत्यधिक वर्षा, बाढ़, लू तथा नए कीट एवं रोगों का प्रकोप जैसी समस्याएं कृषि के लिए चुनौती बन रही हैं।

इन परिस्थितियों में ऐसी कृषि प्रणाली की आवश्यकता है जो बदलती जलवायु के अनुरूप स्वयं को अनुकूलित कर सके और साथ ही किसानों की उत्पादकता एवं आय को बनाए रखने में सहायता करे। इसी उद्देश्य से जलवायु-स्मार्ट कृषि (Climate-Smart Agriculture) की अवधारणा महत्वपूर्ण हो गई है। जलवायु-स्मार्ट कृषि का मुख्य उद्देश्य कृषि उत्पादन एवं उत्पादकता को बनाए रखना या बढ़ाना, जलवायु परिवर्तन के प्रतिकूल प्रभावों के प्रति कृषि की अनुकूलन क्षमता बढ़ाना तथा जहां संभव हो वहां कृषि से होने वाले ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन को कम करना है। यह कोई एक तकनीक नहीं बल्कि विभिन्न वैज्ञानिक कृषि तकनीकों का समन्वित दृष्टिकोण है।

1. जलवायु-स्मार्ट कृषि का अर्थ

जलवायु-स्मार्ट कृषि ऐसी कृषि प्रणाली है जिसमें बदलती जलवायु परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए फसल, मृदा, जल, पोषक तत्व एवं प्राकृतिक संसाधनों का वैज्ञानिक प्रबंधन किया जाता है।

इसका मुख्य आधार तीन प्रमुख उद्देश्यों पर है—
कृषि उत्पादकता एवं आय में सुधार।

जलवायु परिवर्तन के प्रति अनुकूलन एवं सहनशीलता बढ़ाना।

कृषि से जुड़े ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन को यथासंभव कम करना।

2. कृषि पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव

जलवायु परिवर्तन कृषि उत्पादन को कई स्तरों पर प्रभावित कर सकता है। तापमान बढ़ने से फसलों की वृद्धि अवधि कम हो सकती है। वर्षा में बदलाव से बुवाई एवं सिंचाई की योजना प्रभावित हो सकती है।

इसके अतिरिक्त—

सूखे की स्थिति, बाढ़, लू, असामान्य वर्षा, ओलावृष्टि, नए कीटों का प्रकोप, रोगों में बदलाव

जैसी परिस्थितियां फसल उत्पादन के लिए जोखिम बढ़ा सकती हैं।

3. जलवायु-सहिष्णु किस्मों का चयन

जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से निपटने में जलवायु-स्मार्ट कृषि का महत्व

जलवायु-स्मार्ट कृषि में ऐसी किस्मों का चयन महत्वपूर्ण है जो स्थानीय प्रतिकूल परिस्थितियों को बेहतर ढंग से सहन कर सकें। क्षेत्र के अनुसार सूखा-सहिष्णु, ताप-सहिष्णु, जलभराव सहनशील, अल्प अवधि वाली तथा रोग-प्रतिरोधी किस्मों का उपयोग किया जा सकता है।

4. समय पर बुवाई



जलवायु परिवर्तन के कारण फसल की बुवाई का सही समय और भी महत्वपूर्ण हो गया है। मौसम की स्थिति के अनुसार उपयुक्त समय पर बुवाई करने से फसल को अनुकूल तापमान एवं नमी की स्थिति मिल सकती है। विशेष रूप से गेहूं में देर से बुवाई करने पर अधिक तापमान के कारण दाना भरने की अवधि प्रभावित हो सकती है।

5. फसल विविधीकरण

फसल विविधीकरण जलवायु जोखिम कम करने की प्रभावी रणनीति है। किसान को केवल एक फसल पर निर्भर रहने के बजाय अनाज, दलहन, तिलहन, सब्जियों एवं अन्य उपयुक्त फसलों को कृषि प्रणाली में शामिल करना चाहिए।

यदि किसी एक फसल पर मौसम का प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है तो दूसरी फसल से होने वाली आय आर्थिक नुकसान को कुछ हद तक संतुलित कर सकती है।

6. फसल चक्र

फसल चक्र से मृदा स्वास्थ्य बनाए रखने, पोषक तत्वों के संतुलित उपयोग और कीट-रोग चक्र को बाधित करने में सहायता मिल सकती है। धान-गेहूं के साथ दलहनी या तिलहनी फसलों को उचित परिस्थितियों में शामिल करना फसल प्रणाली की विविधता बढ़ा सकता है।

7. जल संरक्षण

जलवायु परिवर्तन के कारण वर्षा की अनिश्चितता बढ़ने की स्थिति में खेत में उपलब्ध पानी का संरक्षण आवश्यक है।

इसके लिए—

वर्षा जल संचयन, खेत तालाब, मेड़बंदी, मल्लिचंग, ड्रिप सिंचाई, स्प्रिंकलर, उचित सिंचाई समय जैसी तकनीकें उपयोगी हो सकती हैं।

8. मृदा में नमी संरक्षण

मृदा की सतह पर फसल अवशेष रखने से वाष्पीकरण कम करने और मृदा में नमी बनाए रखने में सहायता मिल सकती है।

मल्लिचंग, संरक्षण कृषि, न्यूनतम जुताई तथा जैविक पदार्थ बढ़ाने जैसी तकनीकें मृदा की जल धारण क्षमता को बेहतर बनाने में योगदान कर सकती हैं।

9. संरक्षण कृषि

संरक्षण कृषि में न्यूनतम जुताई, मृदा आवरण बनाए रखना और फसल विविधीकरण जैसे सिद्धांत महत्वपूर्ण हैं।

इससे मृदा अपरदन कम करने, नमी संरक्षण तथा मृदा जैविक पदार्थ बनाए रखने में सहायता मिल सकती है।

10. शून्य जुताई

विशेष रूप से धान-गेहूं प्रणाली में शून्य जुताई गेहूं की समय पर बुवाई में उपयोगी हो सकती है। इससे खेत की तैयारी में लगने वाला समय एवं ईंधन कम हो सकता है।

फसल अवशेषों को खेत में बनाए रखने से मृदा की सतह पर आवरण भी बना रहता है।

11. फसल अवशेष प्रबंधन

फसल अवशेषों को जलाने के बजाय खेत में उचित तरीके से प्रबंधित करना जलवायु-स्मार्ट कृषि का महत्वपूर्ण हिस्सा है।

अवशेषों को—

मृदा में मिलाया जा सकता है।

मल्टच के रूप में उपयोग किया जा सकता है।

कम्पोस्ट बनाया जा सकता है।

उपयुक्त कृषि मशीनरी से प्रबंधित किया जा सकता है।

इससे जैविक पदार्थ के पुनर्चक्रण में सहायता मिलती है।

12. मृदा जैविक कार्बन का महत्व

मृदा में जैविक कार्बन कृषि की दीर्घकालीन उत्पादकता के लिए महत्वपूर्ण है। जैविक पदार्थ मृदा की संरचना, जल धारण क्षमता एवं सूक्ष्मजीवी गतिविधि को बेहतर बनाने में योगदान कर सकता है। फसल अवशेष, कम्पोस्ट, गोबर की सड़ी खाद और हरी खाद का उचित उपयोग मृदा जैविक कार्बन बढ़ाने में सहायक हो सकता है।

13. संतुलित पोषक तत्व प्रबंधन



जलवायु-स्मार्ट कृषि में उर्वरकों का संतुलित एवं वैज्ञानिक उपयोग आवश्यक है। मृदा परीक्षण के आधार पर उर्वरक की मात्रा निर्धारित करने से अनावश्यक उपयोग को कम किया जा सकता है। नाइट्रोजन का अत्यधिक उपयोग न केवल आर्थिक नुकसान बढ़ा सकता है बल्कि पर्यावरणीय दृष्टि से भी उचित नहीं है। इसलिए आवश्यकता के अनुसार विभाजित मात्रा में पोषक तत्व देना अधिक वैज्ञानिक है।

14. जैविक एवं एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन

रासायनिक उर्वरकों के साथ कम्पोस्ट, गोबर की सड़ी खाद, हरी खाद एवं उपयुक्त जैव उर्वरकों को कृषि प्रणाली में शामिल किया जा सकता है। एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन से मृदा की उर्वरता बनाए रखने और पोषक तत्व उपयोग दक्षता बढ़ाने में सहायता मिल सकती है।

15. सिंचाई का वैज्ञानिक प्रबंधन

जलवायु-स्मार्ट कृषि में सिंचाई केवल निश्चित तारीख के आधार पर करने के बजाय मृदा नमी, फसल अवस्था और मौसम पूर्वानुमान के आधार पर करना अधिक प्रभावी हो सकता है। अनावश्यक सिंचाई से पानी एवं ऊर्जा दोनों की बचत की जा सकती है।

16. सूक्ष्म सिंचाई तकनीक

ड्रिप एवं स्प्रिंकलर जैसी सूक्ष्म सिंचाई प्रणालियां पानी को अधिक नियंत्रित तरीके से फसल तक पहुंचाने में सहायता करती हैं। विशेष रूप से बागवानी, सब्जियों एवं कतार वाली फसलों में ड्रिप सिंचाई उपयोगी हो सकती है।

17. मौसम आधारित कृषि सलाह

मौसम पूर्वानुमान के आधार पर किसान बुवाई, सिंचाई, उर्वरक प्रयोग एवं कीट-रोग प्रबंधन के निर्णयों में सुधार कर सकता है। यदि भारी वर्षा की संभावना हो तो किसान सिंचाई को टाल सकता है। इसी प्रकार तापमान या लू की चेतावनी होने पर फसल एवं सिंचाई प्रबंधन में आवश्यक बदलाव किए जा सकते हैं।

18. डिजिटल कृषि की भूमिका

मोबाइल आधारित कृषि सलाह, मौसम एप, सेंसर, रिमोट सेंसिंग एवं उपग्रह आधारित निगरानी जैसी तकनीकें जलवायु-स्मार्ट कृषि को अधिक प्रभावी बना सकती हैं। इन तकनीकों से किसान खेत की स्थिति की निगरानी और समय पर निर्णय लेने में सक्षम हो सकता है।

19. कृत्रिम बुद्धिमत्ता की संभावनाएं

कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित प्रणालियां मौसम, मृदा एवं फसल संबंधी विभिन्न आंकड़ों का विश्लेषण करके कृषि निर्णयों में सहायता कर सकती हैं। भविष्य में इनका उपयोग सिंचाई की आवश्यकता, कीट-रोग जोखिम तथा उत्पादन पूर्वानुमान जैसी गतिविधियों में और अधिक बढ़ सकता है।

20. समेकित कीट एवं रोग प्रबंधन

जलवायु परिवर्तन के कारण कीट एवं रोगों के प्रकोप का



स्वरूप बदल सकता है। इसलिए नियमित खेत निरीक्षण और समेकित कीट प्रबंधन महत्वपूर्ण है।

इसमें—खेत की निगरानी, प्रतिरोधी किस्म, जैव नियंत्रण, उचित कृषि क्रियाएं, फेरोमोन ट्रैप, आवश्यकता अनुसार अनुशंसित कीटनाशक का समन्वित उपयोग किया जा सकता है।

21. कृषि वानिकी

कृषि भूमि पर उपयुक्त वृक्षों के साथ फसल उत्पादन करने से कृषि वानिकी प्रणाली विकसित होती है।

पेड़ मृदा संरक्षण, जैव विविधता तथा अतिरिक्त कृषि आय में योगदान कर सकते हैं। हालांकि वृक्षों का चयन स्थानीय जलवायु, मृदा और फसल के अनुसार सावधानी से किया जाना चाहिए।

22. पशुपालन का समावेश

फसल उत्पादन के साथ पशुपालन को जोड़ना कृषि जोखिम कम करने में सहायक हो सकता है। फसल अवशेषों का उपयोग चारे के रूप में और पशु अपशिष्ट का उपयोग जैविक खाद बनाने में किया जा सकता है। इस प्रकार कृषि प्रणाली में संसाधनों का पुनर्चक्रण बेहतर होता है।

23. कम अवधि वाली फसलों का उपयोग

जहां मौसम की अनिश्चितता अधिक है, वहां उपयुक्त कम अवधि वाली फसलों या किस्मों को अपनाने से फसल को प्रतिकूल मौसम से पहले परिपक्व करने में सहायता मिल सकती है। फसल अवधि का चयन स्थानीय कृषि विश्वविद्यालय या विशेषज्ञ की अनुशंसा के अनुसार किया जाना चाहिए।

24. सूखा प्रबंधन

वर्षा आधारित क्षेत्रों में सूखे की संभावना को ध्यान में रखते हुए किसान— वर्षा जल संग्रह, मृदा नमी संरक्षण, मल्लिचंग, सूखा सहनशील किस्म, उचित फसल घनत्व, कम अवधि वाली फसल जैसी रणनीतियां अपना सकते हैं।

25. बाढ़ एवं जलभराव प्रबंधन

अत्यधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में जल निकास की उचित व्यवस्था आवश्यक है। खेत में लंबे समय तक पानी जमा रहने से कई फसलों की जड़ों में ऑक्सीजन की कमी हो सकती है। उचित जल निकास, ऊंची क्यारियां एवं क्षेत्र के अनुकूल फसलों का चयन जलभराव के जोखिम को कम करने में सहायता कर सकता है।

26. किसान की आय और जलवायु-स्मार्ट कृषि

जलवायु-स्मार्ट कृषि का उद्देश्य केवल पर्यावरण संरक्षण

नहीं है। इसका महत्वपूर्ण लक्ष्य किसान की आय और आजीविका को सुरक्षित रखना भी है।

फसल विविधीकरण, पशुपालन, कृषि वानिकी, बागवानी एवं अन्य कृषि आधारित गतिविधियां आय के वैकल्पिक स्रोत उपलब्ध करा सकती हैं।

27. कृषि जोखिम प्रबंधन

जलवायु जोखिम को पूरी तरह समाप्त करना संभव नहीं है, लेकिन उसका प्रभाव कम किया जा सकता है। किसान को फसल विविधीकरण, उचित बीमा, मौसम आधारित सलाह, गुणवत्तापूर्ण बीज तथा वैज्ञानिक कृषि तकनीकों का उपयोग करना चाहिए।

28. किसानों हेतु व्यावहारिक जलवायु-स्मार्ट मॉडल

एक किसान निम्न प्रकार की समेकित रणनीति अपना सकता है— मृदा परीक्षण * उपयुक्त किस्म * समय पर बुवाई * संतुलित पोषण * जल संरक्षण * फसल विविधीकरण * फसल अवशेष प्रबंधन * मौसम आधारित निर्णय * समेकित कीट प्रबंधन

इस प्रकार की रणनीति कृषि को बदलती जलवायु परिस्थितियों के प्रति अधिक सक्षम बनाने में सहायता कर सकती है।

29. जलवायु-स्मार्ट कृषि की चुनौतियां

इसके सामने कुछ प्रमुख चुनौतियां हैं—

छोटे एवं सीमांत किसानों के पास सीमित संसाधन। आधुनिक तकनीकों की प्रारंभिक लागत। तकनीकी जानकारी की कमी। गुणवत्तापूर्ण बीज की उपलब्धता। बाजार की अनिश्चितता। मौसम संबंधी जानकारी तक सीमित पहुंच। कृषि मशीनरी की उपलब्धता।

इन चुनौतियों को दूर करने के लिए किसान प्रशिक्षण, तकनीकी विस्तार सेवाओं, कृषि संस्थानों और सरकारी योजनाओं के बीच बेहतर समन्वय आवश्यक है।

30. निष्कर्ष

जलवायु परिवर्तन के वर्तमान दौर में पारंपरिक कृषि प्रणालियों के साथ वैज्ञानिक एवं संसाधन-कुशल तकनीकों को अपनाना आवश्यक है। जलवायु-स्मार्ट कृषि किसानों को बदलते तापमान, अनियमित वर्षा, सूखा, बाढ़ तथा अन्य मौसम संबंधी जोखिमों से निपटने में सहायता करने वाली एक समेकित रणनीति है। फसल विविधीकरण, जल संरक्षण, संरक्षण कृषि, मृदा जैविक कार्बन का संरक्षण, संतुलित पोषक तत्व प्रबंधन, जलवायु-सहिष्णु किस्में, फसल अवशेष प्रबंधन, सूक्ष्म सिंचाई, मौसम आधारित सलाह और डिजिटल कृषि तकनीकों का उचित संयोजन कृषि को अधिक टिकाऊ बना सकता है। भविष्य की कृषि के लिए आवश्यक है कि किसान कम संसाधन में अधिक एवं स्थिर उत्पादन के सिद्धांत को अपनाएं। जलवायु-स्मार्ट कृषि न केवल उत्पादन एवं आय को सुरक्षित करने में सहायक है, बल्कि मृदा, जल और पर्यावरण जैसे प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।



नीरज राठौर एमएससी पशुपालन विभाग,
सरदार वल्लभ भाई पटेल कृषि एवं प्रौद्योगिकी
विश्वविद्यालय मेरठ, उत्तर प्रदेश

ब्रॉयलर मुर्गी पालन में आहार, स्वास्थ्य एवं आवास प्रबंधन

सारांश: ब्रॉयलर मुर्गियाँ मुख्य रूप से कम समय में अधिक मांस उत्पादन के उद्देश्य से पाली जाती हैं। आधुनिक कुक्कुट उद्योग में ब्रॉयलर पालन किसानों, छोटे उद्यमियों तथा व्यावसायिक पोल्ट्री फार्मों के लिए आय का महत्वपूर्ण स्रोत बन चुका है। ब्रॉयलर की वृद्धि दर और उत्पादन क्षमता मुख्यतः तीन प्रमुख कारकों पर निर्भर करती है—संतुलित आहार, प्रभावी स्वास्थ्य प्रबंधन तथा वैज्ञानिक आवास प्रबंधन। इन तीनों में से किसी एक की उपेक्षा होने पर मुर्गियों की वृद्धि, आहार रूपांतरण क्षमता, रोग प्रतिरोधक क्षमता और अंतिम उत्पादन प्रभावित हो सकता है।

ब्रॉयलर को तेजी से बढ़ने के लिए ऊर्जा, प्रोटीन, अमीनो अम्ल, खनिज, विटामिन तथा पर्याप्त स्वच्छ पानी की आवश्यकता होती है। इसके साथ ही उचित तापमान, वेंटिलेशन, प्रकाश, बिछावन सामग्री, उचित ह्यूमिडिटी स्तर तथा स्वच्छता बनाए रखना आवश्यक है। स्वास्थ्य प्रबंधन में टीकाकरण, जैव-सुरक्षा, रोगों की समय पर पहचान, मृत पक्षियों का उचित निपटारा तथा फार्म की नियमित निगरानी महत्वपूर्ण हैं। वैज्ञानिक प्रबंधन अपनाकर मृत्यु दर कम की जा सकती है, आहार की दक्षता बढ़ाई जा सकती है तथा गुणवत्तापूर्ण मांस उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। प्रस्तुत लेख में ब्रॉयलर पालन के लिए आहार, स्वास्थ्य एवं आवास प्रबंधन के प्रमुख वैज्ञानिक पहलुओं का विस्तृत वर्णन किया गया है।

मुख्य शब्द: ब्रॉयलर, संतुलित आहार, स्वास्थ्य प्रबंधन, आवास प्रबंधन, जैव-सुरक्षा, टीकाकरण, वेंटिलेशन, आहार रूपांतरण।

1. प्रस्तावना- भारत में कुक्कुट पालन कृषि आधारित अर्थव्यवस्था का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। बढ़ती जनसंख्या, शहरीकरण और पशु प्रोटीन की बढ़ती मांग के कारण पोल्ट्री मांस की मांग लगातार बढ़ रही है। ब्रॉयलर मुर्गियाँ विशेष रूप से मांस उत्पादन के लिए विकसित की गई हैं और इनकी विशेषता है कि वे अपेक्षाकृत कम समय में अच्छे शरीर भार प्राप्त कर लेती हैं। ब्रॉयलर पालन देखने में सरल लग सकता है, लेकिन व्यावसायिक स्तर पर सफल उत्पादन के लिए वैज्ञानिक प्रबंधन आवश्यक है। चूजों की गुणवत्ता, आहार, पानी, तापमान, वेंटिलेशन, प्रकाश व्यवस्था, बिछावन, स्वच्छता, टीकाकरण और जैव-सुरक्षा जैसे अनेक कारक उत्पादन को प्रभावित करते हैं।

ब्रॉयलर की उत्पादन क्षमता आनुवंशिक क्षमता के साथ-साथ उसके पर्यावरण एवं प्रबंधन पर निर्भर करती है। यदि उच्च आनुवंशिक क्षमता वाले चूजों को उचित पोषण, स्वच्छ पानी, आरामदायक तापमान और पर्याप्त वेंटिलेशन नहीं मिलता, तो उनकी वास्तविक उत्पादन क्षमता प्राप्त नहीं हो पाती। इसी प्रकार खराब स्वास्थ्य प्रबंधन के कारण रोग फैलने पर पूरे झुंड की वृद्धि प्रभावित हो सकती है।

इसलिए ब्रॉयलर पालन में "अच्छी गुणवत्ता के चूजे + संतुलित आहार + स्वच्छ पानी + वैज्ञानिक आवास + प्रभावी स्वास्थ्य एवं जैव-सुरक्षा" को सफल उत्पादन का आधार माना जा सकता है।



2. ब्रॉयलर पालन के प्रमुख उद्देश्य

ब्रॉयलर पालन का मुख्य उद्देश्य कम अवधि में अधिक मात्रा में गुणवत्तापूर्ण मांस का उत्पादन करना है। इसके प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

- कम समय में अधिक शरीर भार प्राप्त करना।
- बेहतर आहार रूपांतरण क्षमता बनाए रखना।
- मृत्यु दर को न्यूनतम रखना।
- रोगों से होने वाले आर्थिक नुकसान को कम करना।
- उच्च गुणवत्ता वाला और सुरक्षित पोल्ट्री मांस प्राप्त करना।
- प्रति पक्षी उत्पादन लागत को कम करना।
- उपलब्ध संसाधनों का अधिकतम उपयोग करना।
- किसान को अधिक आर्थिक लाभ उपलब्ध कराना।

3. गुणवत्तापूर्ण ब्रॉयलर चूजों का चयन- सफल ब्रॉयलर पालन की शुरुआत गुणवत्तापूर्ण डे-ओल्ड चूजों से होती है। स्वस्थ और अच्छे स्रोत से प्राप्त चूजों की वृद्धि अपेक्षाकृत बेहतर होती है तथा रोगों के प्रति उनका प्रतिरोध भी अच्छा रहता है।

चूजों का चयन करते समय निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना चाहिए—

- चूजे सक्रिय और चुस्त हों।
- आंखें चमकदार और साफ हों।
- शरीर पर सूखे एवं समान रूप से विकसित पंख हों।
- नाभि अच्छी तरह बंद हो।
- पैर मजबूत और सीधे हों।
- चूजों में अत्यधिक कमजोरी या निर्जलीकरण न हो।
- चूजे समान आकार एवं वजन के हों।
- विश्वसनीय हैचरी से प्राप्त किए गए हों।
- हैचरी द्वारा किए गए टीकाकरण एवं स्वास्थ्य संबंधी जानकारी उपलब्ध हो।

कमजोर अथवा असमान चूजों को झुंड में शामिल करने से बाद में उत्पादन में असमानता दिखाई दे सकती है।

4. ब्रॉयलर के लिए संतुलित आहार प्रबंधन- ब्रॉयलर पालन में कुल उत्पादन लागत का एक बड़ा हिस्सा आहार पर खर्च होता है। इसलिए आहार प्रबंधन का सीधा संबंध लाभप्रदता से है। संतुलित आहार वह है जिसमें पक्षी की आयु और उत्पादन अवस्था के अनुसार आवश्यक ऊर्जा, प्रोटीन, अमीनो अम्ल, खनिज, विटामिन तथा अन्य आवश्यक पोषक तत्व उचित मात्रा में उपलब्ध हों।

4.1 आहार के प्रमुख पोषक तत्व

ब्रॉयलर आहार में मुख्य रूप से निम्न पोषक तत्व आवश्यक होते हैं—

ऊर्जा- ऊर्जा पक्षी को शरीर का तापमान बनाए रखने, चलने-फिरने, शरीर के ऊतकों के निर्माण तथा अन्य जैविक क्रियाओं के लिए आवश्यक होती है। आहार में ऊर्जा की कमी होने पर वृद्धि प्रभावित हो सकती है, जबकि अत्यधिक ऊर्जा से शरीर में अनावश्यक वसा जमा हो सकती है।

प्रोटीन- मांसपेशियों और शरीर के ऊतकों के निर्माण के लिए प्रोटीन अत्यंत आवश्यक है। ब्रॉयलर की तेज वृद्धि को देखते हुए उसकी आयु के अनुसार पर्याप्त एवं गुणवत्तापूर्ण प्रोटीन उपलब्ध होना चाहिए।

अमीनो अम्ल- लाइसिन, मेथियोनीन, थ्रेओनीन आदि आवश्यक अमीनो अम्ल शरीर में प्रोटीन निर्माण के लिए महत्वपूर्ण हैं। केवल कुल प्रोटीन की मात्रा पर्याप्त होना आवश्यक नहीं है; आहार में आवश्यक अमीनो अम्लों का संतुलन भी महत्वपूर्ण है।

खनिज- कैल्शियम और फास्फोरस हड्डियों के विकास के लिए आवश्यक हैं। सोडियम, पोटैशियम, मैग्नीशियम तथा अन्य खनिज भी शरीर की सामान्य जैविक क्रियाओं में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

विटामिन- विटामिन पक्षियों की वृद्धि, प्रतिरक्षा, हड्डियों के विकास तथा विभिन्न चयापचय प्रक्रियाओं के लिए आवश्यक हैं। विटामिन की कमी से वृद्धि में कमी, कमजोरी और रोग प्रतिरोधक क्षमता में कमी हो सकती है।

5. ब्रॉयलर में चरणबद्ध आहार व्यवस्था- ब्रॉयलर की पोषण आवश्यकताएँ उम्र के साथ बदलती रहती हैं। इसलिए एक ही प्रकार का आहार पूरे पालन काल में देना वैज्ञानिक दृष्टि से उचित नहीं माना जाता। सामान्यतः आहार को विभिन्न चरणों में विभाजित किया जाता है।

5.1 स्टार्टर आहार- यह शुरुआती उम्र के चूजों के लिए दिया जाता है। इस अवस्था में शरीर की प्रारंभिक वृद्धि और अंगों के विकास के लिए पर्याप्त पोषक तत्व आवश्यक होते हैं। स्टार्टर आहार स्वादिष्ट, आसानी से पचने योग्य तथा गुणवत्तापूर्ण होना चाहिए।

5.2 ग्रोअर आहार- मध्य अवस्था में मांसपेशियों और शरीर के आकार में तेजी से वृद्धि होती है। इस समय पक्षी की बढ़ती आवश्यकता के अनुसार ऊर्जा एवं अमीनो अम्लों का संतुलन बनाए रखना चाहिए।

5.3 फिनिशर आहार- अंतिम अवस्था में पक्षी तेजी से बाजार योग्य वजन की ओर बढ़ता है। इस दौरान आहार की पोषण संरचना को पक्षी की वृद्धि और बाजार आयु के अनुरूप रखा जाता है।

आहार कार्यक्रम स्थानीय परिस्थितियों, नस्ल/वाणिज्यिक स्टेन, पक्षियों की आयु, प्रबंधन प्रणाली तथा पशु पोषण विशेषज्ञ की सलाह के अनुसार निर्धारित करना अधिक उचित है।

6. स्वच्छ एवं पर्याप्त पानी का प्रबंधन- ब्रॉयलर पालन में



पानी को अक्सर आहार से भी अधिक महत्वपूर्ण माना जाता है, क्योंकि पानी शरीर के तापमान नियंत्रण, पाचन, चयापचय तथा अन्य शारीरिक प्रक्रियाओं के लिए आवश्यक है।

मुर्गियों को हर समय पर्याप्त मात्रा में स्वच्छ और सुरक्षित पेयजल उपलब्ध होना चाहिए।

ध्यान देने योग्य बातें— पानी साफ और पीने योग्य हो। पानी के बर्तनों/निपल लाइन की नियमित सफाई की जाए। पानी में मल, बिछवन या अन्य गंदगी न जाने पाए। गर्म मौसम में पानी की उपलब्धता विशेष रूप से सुनिश्चित की जाए। पानी की पाइपलाइन और drinker system का नियमित निरीक्षण किया जाए। पानी की गुणवत्ता का समय-समय पर परीक्षण कराया जाए, विशेषकर बड़े फार्मों में। गंदा पानी रोग फैलाने का माध्यम बन सकता है और इससे पूरे झुंड का स्वास्थ्य प्रभावित हो सकता है।

7. आहार भंडारण एवं फीडिंग प्रबंधन— आहार को सूखी, साफ और हवादार जगह पर रखना चाहिए। नमी के कारण फफूंद विकसित हो सकती है तथा कुछ परिस्थितियों में फफूंदजनित विषैले पदार्थों का खतरा बढ़ सकता है।

आहार प्रबंधन के लिए— पुराने और नए आहार को अनावश्यक रूप से लंबे समय तक मिश्रित न रखें। आहार को सीधे फर्श पर न रखें। फीडर को नियमित रूप से साफ करें। फीडर में अत्यधिक आहार भरकर बर्बादी न करें। आहार में असामान्य गंध, फफूंद या रंग परिवर्तन दिखाई देने पर उसका उपयोग न करें। पक्षियों की आयु और आवश्यकता के अनुसार आहार दें।

8. वैज्ञानिक आवास प्रबंधन— ब्रॉयलर के लिए ऐसा आवास आवश्यक है जिसमें पर्याप्त स्थान, स्वच्छता, उचित तापमान, नमी नियंत्रण, वेंटिलेशन और प्रकाश की व्यवस्था हो। आवास का उद्देश्य केवल पक्षियों को रखने के लिए स्थान उपलब्ध कराना नहीं है, बल्कि उन्हें ऐसा वातावरण देना है जिसमें वे अपनी आनुवंशिक क्षमता के अनुसार स्वस्थ एवं तेजी से बढ़ सकें।

8.1 पोल्ट्री शेड का स्थान— पोल्ट्री शेड का स्थान चुनते समय निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना चाहिए—

स्थान ऊंचा और जलभराव से मुक्त हो। शेड के आसपास पर्याप्त जल निकास की व्यवस्था हो। सड़क से उचित संपर्क हो। स्वच्छ पानी की उपलब्धता हो। बिजली की व्यवस्था हो। फार्म के आसपास अनावश्यक भीड़भाड़ न हो। अन्य पोल्ट्री फार्मों से उचित दूरी एवं जैव-सुरक्षा व्यवस्था रखी जाए।

9. शेड की संरचना एवं दिशा— क्षेत्र की जलवायु के अनुसार शेड की संरचना निर्धारित की जानी चाहिए। गर्म क्षेत्रों में प्राकृतिक वेंटिलेशन को बढ़ावा देने वाली डिजाइन उपयोगी हो सकती है, जबकि नियंत्रित वातावरण वाले फार्मों में आधुनिक ventilation systems का उपयोग किया जाता है।

शेड में—

पर्याप्त हवा का आवागमन, उचित छत की ऊंचाई, वर्षा से सुरक्षा, सूर्य की अत्यधिक गर्मी से बचाव, सफाई में सुविधा, चूहों एवं जंगली पक्षियों के प्रवेश को रोकने की व्यवस्था होनी चाहिए।

10. बूडिंग प्रबंधन— ब्रॉयलर चूजों के शुरुआती दिनों में तापमान प्रबंधन अत्यंत महत्वपूर्ण होता है। छोटे चूजे स्वयं अपने शरीर का तापमान प्रभावी ढंग से नियंत्रित नहीं कर पाते।

इसलिए शुरुआती अवस्था में कृत्रिम ऊष्मा की आवश्यकता पड़ती है।

अच्छे बूडिंग की पहचान चूजों के व्यवहार से भी की जा सकती है—

यदि चूजे ऊष्मा स्रोत के नीचे बहुत अधिक इकट्ठे हों तो वे ठंड महसूस कर सकते हैं।

यदि चूजे ऊष्मा स्रोत से बहुत दूर फैलकर हांफ रहे हों तो अत्यधिक गर्मी हो सकती है।

यदि चूजे समान रूप से क्षेत्र में फैले हों, सक्रिय हों और सामान्य रूप से आहार-पानी ले रहे हों तो वातावरण अपेक्षाकृत आरामदायक माना जा सकता है।

शुरुआती दिनों में तापमान को धीरे-धीरे कम करते हुए पक्षियों की उम्र और पंखों के विकास के अनुसार समायोजित किया जाता है।



11. बिछवन सामग्री का प्रबंधन— ब्रॉयलर को सामान्यतः litter system में पाला जाता है। बिछवन के लिए उपयुक्त, सूखी और साफ सामग्री का उपयोग किया जाता है।

अच्छी litter की विशेषताएँ—

सूखी हो, साफ हो, नुकीली वस्तुओं से मुक्त हो, अत्यधिक धूल वाली न हो,

नमी को सोखने की क्षमता रखती हो।

गीली litter से अमोनिया की मात्रा बढ़ सकती है तथा पैरों और त्वचा से संबंधित समस्याओं का जोखिम बढ़ सकता है। इसलिए litter की नियमित निगरानी आवश्यक है।

जहां litter अत्यधिक गीली हो जाए, वहां कारण की पहचान करनी चाहिए। पानी के रिसाव, सड़कट्टा/सड़क की ऊंचाई/समायोजन, खराब वेंटिलेशन या अत्यधिक नमी जैसी समस्याओं को ठीक करना आवश्यक है।

12. वेंटिलेशन का महत्व—ब्रॉयलर फार्म में उचित वेंटिलेशन अत्यंत आवश्यक है। वेंटिलेशन से शेड में ताजी हवा आती है और कार्बन डाइऑक्साइड, अमोनिया, अतिरिक्त नमी, धूल एवं गर्मी बाहर निकलती है।

खराब वेंटिलेशन के कारण— अमोनिया की मात्रा बढ़ सकती है, सांस संबंधी समस्याएं बढ़ सकती हैं, litter गीली हो सकती है, पक्षियों में तनाव बढ़ सकता है, वृद्धि और आहार दक्षता प्रभावित हो सकती है। गर्मियों में उचित हवा का प्रवाह पक्षियों को गर्मी के तनाव से बचाने में विशेष रूप से महत्वपूर्ण होता है।

13. तापमान एवं गर्मी तनाव प्रबंधन— ब्रॉयलर उच्च तापमान के प्रति संवेदनशील होते हैं। गर्म मौसम में पक्षी अधिक हांफते हैं और शरीर से गर्मी निकालने के लिए पानी का सेवन बढ़ा सकते हैं।

गर्मी तनाव के नियंत्रण के लिए— शेड में पर्याप्त वायु प्रवाह रखें। पर्याप्त स्वच्छ पानी उपलब्ध कराएं। शेड में अनावश्यक भीड़ न रखें। आवश्यकता के अनुसार cooling systems का उपयोग करें। दिन के अत्यधिक गर्म समय में अनावश्यक handling से बचें।

बिजली और ventilation equipment की वैकल्पिक व्यवस्था रखें।

14. प्रकाश प्रबंधन— प्रकाश ब्रॉयलर के व्यवहार, आहार सेवन और आराम की अवधि को प्रभावित करता है। प्रकाश कार्यक्रम पक्षियों की उम्र, फार्म प्रणाली और विशेषज्ञ सलाह के अनुसार निर्धारित किया जाना चाहिए।

प्रकाश की व्यवस्था करते समय—

शेड में प्रकाश समान रूप से पहुंचना चाहिए।

अचानक प्रकाश में अत्यधिक परिवर्तन से बचना चाहिए।

पक्षियों को पर्याप्त विश्राम अवधि मिलनी चाहिए।

बल्ब एवं प्रकाश व्यवस्था साफ रखनी चाहिए।

उचित प्रकाश व्यवस्था से पक्षियों की गतिविधि एवं फीडिंग व्यवहार को नियंत्रित करने में सहायता मिलती है।

15. स्वास्थ्य प्रबंधन— ब्रॉयलर पालन में स्वास्थ्य प्रबंधन का उद्देश्य रोगों को रोकना, शुरुआती अवस्था में रोग की पहचान करना और बीमारी फैलने से रोकना है। उपचार की अपेक्षा रोकथाम अधिक प्रभावी और आर्थिक रूप से लाभकारी होती है।

स्वास्थ्य प्रबंधन के प्रमुख घटक हैं—

स्वस्थ चूजे, स्वच्छ आवास, संतुलित आहार, सुरक्षित पानी, उचित टीकाकरण, जैव-सुरक्षा, नियमित निगरानी, रोग की शीघ्र पहचान।

16. टीकाकरण प्रबंधन— पोल्ट्री में टीकाकरण रोग नियंत्रण का महत्वपूर्ण साधन है। अलग-अलग क्षेत्रों में रोगों का प्रचलन अलग हो सकता है, इसलिए टीकाकरण कार्यक्रम स्थानीय पशु चिकित्सक तथा पोल्ट्री स्वास्थ्य विशेषज्ञ की सलाह के अनुसार तैयार किया जाना चाहिए। ब्रॉयलर में क्षेत्रीय स्थिति के अनुसार सामान्यतः न्यूकैसल रोग, संक्रामक बर्सल रोग (IBD) और अन्य महत्वपूर्ण रोगों के विरुद्ध टीकाकरण कार्यक्रम अपनाया जा सकता है।

टीकाकरण के समय—

वैक्सीन की cold chain बनाए रखें। समाप्ति तिथि की जांच करें। निर्माता के निर्देशों का पालन करें। उचित मात्रा एवं सही विधि से वैक्सीन दें। दूषित पानी या अस्वच्छ उपकरणों का उपयोग न करें। टीकाकरण का रिकॉर्ड रखें।

यह भी समझना जरूरी है कि टीकाकरण अकेले रोग नियंत्रण की गारंटी नहीं देता। इसके साथ मजबूत जैव-सुरक्षा और उचित प्रबंधन भी आवश्यक है।

17. ब्रॉयलर में सामान्य स्वास्थ्य समस्याएँ— ब्रॉयलर में विभिन्न संक्रामक और गैर-संक्रामक समस्याएँ हो सकती हैं। इनमें प्रमुख रूप से—

17.1 न्यूकैसल रोग

यह एक महत्वपूर्ण संक्रामक रोग है। इसके नियंत्रण के लिए क्षेत्रीय टीकाकरण कार्यक्रम तथा जैव-सुरक्षा आवश्यक है।

17.2 संक्रामक बर्सल रोग

यह विशेष रूप से कम उम्र के पक्षियों में प्रतिरक्षा तंत्र को प्रभावित कर सकता है। उचित टीकाकरण और जैव-सुरक्षा



महत्त्वपूर्ण हैं।

17.3 कोवसीडियोसिस

यह आंतों से संबंधित महत्वपूर्ण समस्या है। गीली द्रवह-हृद्रह और खराब स्वच्छता परिस्थितियां इसके जोखिम को बढ़ा सकती हैं। रोकथाम के लिए उचित द्रवहहृद्रह द्रुटुद्रुद्रदद्रुह, जैव-सुरक्षा और विशेष की सलाह के अनुसार कार्यक्रम अपनाना चाहिए।

17.4 श्वसन संबंधी समस्याएँ- खराब वेंटिलेशन, धूल, अमोनिया, संक्रमण तथा अत्यधिक भीड़ श्वसन समस्याओं को बढ़ा सकती है। इसलिए पर्यावरण प्रबंधन अत्यंत महत्वपूर्ण है।

17.5 पोषण संबंधी समस्याएँ- असंतुलित आहार, खराब गुणवत्ता वाले कच्चे माल या पोषक तत्वों की कमी से वृद्धि एवं स्वास्थ्य प्रभावित हो सकता है।

18. जैव-सुरक्षा का महत्व- ब्रायलर फार्म में जैव-सुरक्षा का अर्थ है रोगजनक जीवों को फार्म में प्रवेश करने और फार्म के अंदर फैलने से रोकने के लिए अपनाए गए उपाय।

प्रमुख जैव-सुरक्षा उपाय— फार्म में अनावश्यक व्यक्तियों का प्रवेश सीमित करें।

आगतुको का रिकार्ड रखें। प्रवेश द्वार पर उचित biosecurity व्यवस्था रखें। फार्म में अलग जूते एवं कपड़े उपयोग करें। उपकरणों की नियमित सफाई और disinfect करें। जंगली पक्षियों और चूहों का नियंत्रण करें। मृत पक्षियों को तुरंत हटाकर सुरक्षित तरीके से निपटाएं। अलग-अलग आयु वर्ग के पक्षियों को अनावश्यक रूप से न मिलाएं। फार्म के अंदर और बाहर उपकरणों की आवाजाही नियंत्रित करें।

19. फार्म की दैनिक निगरानी- ब्रॉयलर फार्म में पक्षियों का प्रतिदिन निरीक्षण करना चाहिए। किसान को केवल मृत्यु दर पर निर्भर नहीं रहना चाहिए, बल्कि पक्षियों के व्यवहार में छोटे बदलावों पर भी ध्यान देना चाहिए।

दैनिक निरीक्षण में देखें—

पक्षियों की सक्रियता, आहार सेवन, पानी का सेवन, मल की स्थिति, श्वसन, पक्षियों का वितरण, litter की स्थिति, तापमान, वेंटिलेशन,

मृत एवं कमजोर पक्षियों की संख्या।

यदि पक्षियों के व्यवहार में अचानक परिवर्तन दिखाई दे तो तुरंत कारण की जांच करनी चाहिए।

20. रिकॉर्ड रखने का महत्व- वैज्ञानिक ब्रॉयलर पालन में रिकॉर्ड रखना अत्यंत आवश्यक है। इससे किसान को फार्म की वास्तविक स्थिति समझने और भविष्य के निर्णय लेने में सहायता मिलती है।

निम्न रिकॉर्ड रखने चाहिए— चूजों की संख्या, चूजों का स्रोत, दैनिक मृत्यु, दैनिक आहार खपत, पानी की खपत, टीकाकरण रिकॉर्ड, दवा/उपचार रिकॉर्ड, साप्ताहिक वजन, पर्यावरण संबंधी रिकॉर्ड, बिक्री एवं बाजार वजन, कुल उत्पादन लागत।

रिकॉर्ड के आधार पर FCR, mortality और body weight gain आँसे महत्वपूर्ण उत्पादन संकेतकों का मूल्यांकन किया जा सकता है।

21. आहार रूपांतरण अनुपात (FCR)

ब्रॉयलर उत्पादन की आर्थिक दक्षता मापने के लिए Feed

Conversion Ratio महत्वपूर्ण सूचक है।

सामान्य रूप से—

FCR = कुल खाए गए आहार की मात्रा / कुल जीवित वजन में वृद्धि

यदि समान परिस्थितियों में कम मात्रा के आहार से अधिक वजन प्राप्त होता है तो आहार रूपांतरण दक्षता बेहतर मानी जाती है। इसलिए संतुलित आहार, स्वस्थ पक्षी, उचित तापमान, स्वच्छ पानी और वैज्ञानिक आवास स्रष्टृको बेहतर बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

22. मृत्यु दर कम करने के उपाय- ब्रॉयलर पालन में मृत्यु दर को कम रखना लाभप्रदता के लिए आवश्यक है। इसके लिए-

उच्च गुणवत्ता वाले चूड़े खरीदें। उचित ब्रूडिंग करें। संतुलित आहार दें। स्वच्छ पानी उपलब्ध कराएं। उचित वेंटिलेशन रखें। शेड में अत्यधिक भीड़ से बचें। टीकाकरण कार्यक्रम अपनाएं। जैव-सुरक्षा का पालन करें। बीमार पक्षियों की शीघ्र पहचान करें। मृत पक्षियों का सुरक्षित निपटान करें। फार्म की नियमित सफाई



और disinfect करें। दवाओं का उपयोग पशु चिकित्सक की सलाह से करें।

23. एंटीबायोटिक के विवेकपूर्ण उपयोग की आवश्यकता- पोल्ट्री उत्पादन में रोगों की रोकथाम के लिए केवल एंटीबायोटिक पर निर्भर रहना उचित नहीं है। अनावश्यक या गलत उपयोग से antimicrobial resistance की समस्या उत्पन्न हो सकती है।

इसलिए— बिना आवश्यकता एंटीबायोटिक न दें। पशु चिकित्सक की सलाह लें। निर्धारित मात्रा और अवधि का पालन करें। withdrawal period का पालन करें। रोग की रोकथाम के लिए स्वच्छता और जैव-सुरक्षा को प्राथमिकता दें।

24. पर्यावरणीय एवं अपशिष्ट प्रबंधन—ब्रायलर फार्म से litter, पंख, मृत पक्षी और अन्य जैविक अपशिष्ट निकलते हैं। इनका उचित प्रबंधन आवश्यक है ताकि दुर्गंध, मक्खियों, रोगजनकों और पर्यावरण प्रदूषण की समस्या न हो। पोल्ट्री litter को उचित प्रक्रिया से कम्पोस्ट बनाकर जैविक खाद के रूप में उपयोग किया जा सकता है। मृत पक्षियों का निपटान स्थानीय नियमों और पशु स्वास्थ्य दिशानिर्देशों के अनुसार सुरक्षित तरीके से करना चाहिए।

25. आर्थिक लाभ बढ़ाने के प्रमुख उपाय- ब्रॉयलर फार्म की लाभप्रदता बढ़ाने के लिए केवल अधिक पक्षी रखना पर्याप्त नहीं है। उत्पादन लागत और उत्पादन दक्षता दोनों पर ध्यान देना चाहिए।

प्रमुख उपाय— गुणवत्तापूर्ण चूजे खरीदें। आहार की बर्बादी कम करें। पानी की बर्बादी रोकें। उचित stocking density रखें। बेहतर FCR प्राप्त करने पर ध्यान दें। मृत्यु दर कम रखें। रोगों की रोकथाम करें। बिजली एवं ईंधन का कुशल उपयोग करें। बाजार की मांग के अनुसार बिक्री की योजना बनाएं। सभी खर्च और आय का रिकॉर्ड रखें।

26. आधुनिक तकनीकों की भूमिका- आधुनिक ब्रॉयलर उत्पादन में तकनीक का उपयोग तेजी से बढ़ रहा है। बड़े फार्मों में स्वचालित feeder, drinker, climate control, ventilation, temperature monitoring और digital record keeping का उपयोग किया जा रहा है।

सेंसर आधारित तकनीक से तापमान, आर्द्रता और वायु गुणवत्ता की निगरानी की जा सकती है। कुछ आधुनिक फार्मों में स्वचालित प्रणालियाँ पर्यावरणीय परिस्थितियों के अनुसार ventilation और cooling को नियंत्रित करने में सहायता करती हैं। भविष्य में डेटा आधारित फार्म प्रबंधन, सेंसर, कृत्रिम बुद्धिमत्ता और precision livestock farming जैसी तकनीकों का उपयोग उत्पादन को और अधिक कुशल बना सकती हैं।

27. किसान के लिए व्यावहारिक प्रबंधन
सत्र

सफल ब्रायलर पालन के लिए किसान निम्न सरल सूत्र अपना सकता है— अच्छा चूड़ा * सही ब्रूडिंग * संतुलित आहार * स्वच्छ पानी * उचित तापमान * अच्छा वेंटिलेशन * सूखी litter * टीकाकरण * जैव-सुरक्षा * नियमित निगरानी * सही समय पर बिक्री

इनमें से किसी भी कड़ी की उपेक्षा उत्पादन एवं आर्थिक लाभ को प्रभावित कर सकती है।

28. निष्कर्ष- ब्रॉयलर मुर्गी पालन कम अवधि में मांस उत्पादन उपलब्ध कराने वाला महत्वपूर्ण व्यवसाय है। इसकी सफलता मुख्य रूप से आहार, स्वास्थ्य और आवास प्रबंधन के उचित समन्वय पर निर्भर करती है। संतुलित एवं गुणवत्तापूर्ण आहार पक्षियों की वृद्धि और आहार रूपांतरण दक्षता को बेहतर बनाने में सहायता करता है, जबकि स्वच्छ एवं पर्याप्त पानी शरीर की सामान्य क्रियाओं के लिए अनिवार्य है। इसी प्रकार वैज्ञानिक आवास प्रबंधन के अंतर्गत उचित तापमान, वेंटिलेशन, प्रकाश, litter, स्थान और स्वच्छता की व्यवस्था आवश्यक है। स्वास्थ्य प्रबंधन में टीकाकरण, नियमित निरीक्षण, जैव-सुरक्षा और रोगों की शीघ्र पहचान महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। किसी भी बीमारी के लक्षण दिखाई देने पर स्वयं दवा देने के बजाय योग्य पशु चिकित्सक की सलाह लेना चाहिए। आज के प्रतिस्पर्धी पोल्ट्री व्यवसाय में केवल पक्षियों की संख्या बढ़ाना पर्याप्त नहीं है। कम मृत्यु दर, बेहतर स्रष्टृ तेज और समान वृद्धि, कम उत्पादन लागत तथा गुणवत्तापूर्ण मांस उत्पादन ही सफल ब्रॉयलर फार्म की पहचान है। वैज्ञानिक प्रबंधन, आधुनिक तकनीक, उचित रिकॉर्ड-कीपिंग और मजबूत जैव-सुरक्षा को अपनाकर छोटे एवं बड़े दोनों स्तर के किसान ब्रॉयलर पालन को अधिक लाभकारी और टिकाऊ व्यवसाय बना सकते हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि ब्रॉयलर पालन में =आहार + स्वास्थ्य + आवास= तीनों का संतुलित एवं वैज्ञानिक प्रबंधन ही उच्च उत्पादन, कम लागत और बेहतर आर्थिक लाभ की कंजी है।



अनिल कुमार यंग प्रोफेशनल - 1

एकीकृत ग्रामीण आजीविका परियोजना

कृषि विश्वविद्यालय, जोधपुर, (राजस्थान)

फसल उत्पादन बढ़ाने में संतुलित पोषक तत्व प्रबंधन का महत्व



प्रस्तावना- भारत एक कृषि प्रधान देश है और देश की बड़ी आबादी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कृषि पर निर्भर है। बढ़ती जनसंख्या, घटती कृषि योग्य भूमि, जल संसाधनों पर बढ़ता दबाव तथा जलवायु परिवर्तन के कारण कृषि उत्पादन को टिकाऊ तरीके से बढ़ाना आज एक बड़ी चुनौती बन गया है। ऐसी स्थिति में केवल अधिक मात्रा में उर्वरकों का प्रयोग करके उत्पादन बढ़ाना उचित समाधान नहीं है। फसल को उसकी आवश्यकता के अनुसार सभी आवश्यक पोषक तत्व उचित मात्रा, उचित समय और उचित विधि से उपलब्ध कराना ही संतुलित पोषक तत्व प्रबंधन कहलाता है।

पौधों की वृद्धि, विकास, प्रकाश संश्लेषण, जड़ एवं तना विकास, फूल एवं फल निर्माण, बीज उत्पादन तथा रोग एवं प्रतिकूल परिस्थितियों से सहनशीलता के लिए विभिन्न पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटैश प्रमुख पोषक तत्व हैं, जबकि सल्फर, जिंक, आयरन, बोरॉन, मैंगनीज, कॉपर, मोलिब्डेनम तथा क्लोरीन जैसे सूक्ष्म पोषक तत्व भी पौधों के लिए आवश्यक हैं। इनमें से किसी एक तत्व की कमी होने पर पौधे की वृद्धि और उपज प्रभावित हो सकती है। संतुलित पोषण का उद्देश्य केवल अधिक उपज प्राप्त करना नहीं है, बल्कि उच्च एवं गुणवत्तापूर्ण उत्पादन, उर्वरकों की उपयोग दक्षता में वृद्धि, मृदा स्वास्थ्य का संरक्षण, उत्पादन लागत में कमी तथा कृषि की दीर्घकालिक स्थिरता सुनिश्चित करना भी है।

संतुलित पोषक तत्व प्रबंधन का अर्थ- संतुलित पोषक तत्व प्रबंधन से आशय फसल की आवश्यकता, मृदा की पोषक स्थिति, फसल की किस्म, जल उपलब्धता और स्थानीय परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए आवश्यक पोषक तत्वों की सही मात्रा में आपूर्ति करने से है। सरल शब्दों में कहा जाए तो पौधे को जितनी मात्रा में जिस पोषक तत्व की आवश्यकता है, उसे उसी अनुपात में उपलब्ध कराना संतुलित पोषण है। उदाहरण के लिए यदि किसी खेत में नाइट्रोजन पर्याप्त मात्रा में है, लेकिन जिंक या सल्फर की कमी है, तो केवल नाइट्रोजन उर्वरक की मात्रा बढ़ाने से उत्पादन में अपेक्षित वृद्धि नहीं होगी।

संतुलित पोषण का प्रमुख आधार है— सही स्रोत + सही मात्रा + सही समय + सही स्थान = बेहतर पोषक तत्व प्रबंधन।

इसके लिए मृदा परीक्षण, फसल की पोषक आवश्यकता, जैविक स्रोतों का उपयोग, रासायनिक उर्वरकों का उचित प्रयोग तथा जैव उर्वरकों का समन्वित उपयोग महत्वपूर्ण है।

पौधों के लिए आवश्यक पोषक तत्व- पौधों को सामान्य वृद्धि और विकास के लिए विभिन्न आवश्यक पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। इन्हें मुख्यतः तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—

1. **प्राथमिक प्रमुख पोषक तत्व-** नाइट्रोजन (N), फास्फोरस (P) और पोटैश (K) को प्राथमिक प्रमुख पोषक तत्व कहा जाता है।

नाइट्रोजन पौधों की हरी वृद्धि, पत्तियों के विकास, प्रोटीन निर्माण तथा क्लोरोफिल के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसकी कमी से पौधों की पुरानी पत्तियाँ पीली पड़ने लगती हैं और पौधे की वृद्धि रुक जाती है। फास्फोरस जड़ विकास, ऊर्जा

स्थानांतरण, फूल एवं बीज निर्माण तथा प्रारंभिक पौध वृद्धि में महत्वपूर्ण है। इसकी कमी से पौधों की जड़ प्रणाली कमजोर हो सकती है और फसल की परिपक्वता प्रभावित होती है। पोटैश पौधों में जल संतुलन, एंजाइम सक्रियता, प्रकाश संश्लेषण, रोग प्रतिरोध तथा दानों एवं फलों की गुणवत्ता सुधारने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

2. **द्वितीयक पोषक तत्व-** कैल्शियम, मैग्नीशियम और सल्फर द्वितीयक पोषक तत्व हैं। कैल्शियम कोशिका भित्ति निर्माण और जड़ एवं नई वृद्धि के लिए आवश्यक है। मैग्नीशियम क्लोरोफिल का प्रमुख घटक है तथा प्रकाश संश्लेषण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। सल्फर प्रोटीन और कुछ आवश्यक एंजाइमों के निर्माण में महत्वपूर्ण है। तिलहन और दलहनी फसलों में इसकी विशेष आवश्यकता होती है।

3. **सूक्ष्म पोषक तत्व-** जिंक, आयरन, बोरॉन, मैंगनीज, कॉपर, मोलिब्डेनम और क्लोरीन जैसे तत्व कम मात्रा में आवश्यक होते हैं, लेकिन इनका महत्व अत्यधिक है। जिंक की कमी से पौधों की वृद्धि रुक सकती है, आयरन की कमी से नई पत्तियों में पीलापन दिखाई देता है तथा बोरॉन की कमी से फूल, फल और प्रजनन संबंधी प्रक्रियाएँ प्रभावित हो सकती हैं।

इसलिए सूक्ष्म पोषक तत्वों को कम मात्रा में आवश्यक होने के कारण कम महत्वपूर्ण समझना उचित नहीं है।

फसल उत्पादन में संतुलित पोषण का महत्व

1. **फसल की उपज में वृद्धि-** संतुलित पोषण का सबसे प्रमुख लाभ फसल उत्पादन में वृद्धि है। जब पौधे को सभी आवश्यक पोषक तत्व उचित मात्रा में मिलते हैं, तो जड़, तना, पत्ती, फूल और फल का विकास बेहतर होता है। इसके परिणामस्वरूप प्रति इकाई क्षेत्र अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। यदि किसी एक पोषक तत्व की कमी हो तो अन्य पोषक तत्वों की पर्याप्त उपलब्धता के बावजूद फसल की उत्पादकता सीमित रह सकती है। इसलिए केवल नाइट्रोजन, फास्फोरस या पोटैश पर निर्भर रहने के बजाय सभी आवश्यक पोषक तत्वों का संतुलित प्रबंधन आवश्यक है।

2. **फसल की गुणवत्ता में सुधार-** संतुलित पोषण केवल उपज की मात्रा बढ़ाने तक सीमित नहीं है, बल्कि उत्पाद की गुणवत्ता में भी सुधार करता है। अनाज में उचित प्रोटीन और दाने की गुणवत्ता, फलों में उचित आकार एवं गुणवत्ता तथा तिलहनों में

तेल की मात्रा जैसे गुण पोषक तत्वों के संतुलित प्रबंधन से प्रभावित होते हैं। उदाहरण के लिए पोटैश पौधों में कई जैव-रासायनिक प्रक्रियाओं को नियंत्रित करता है और फलों तथा सब्जियों की गुणवत्ता में योगदान देता है।

3. **मृदा स्वास्थ्य का संरक्षण-** किसी एक उर्वरक का लगातार और अत्यधिक प्रयोग मृदा के पोषक संतुलन को बिगाड़ सकता है। संतुलित पोषक तत्व प्रबंधन के माध्यम से जैविक खाद, हरी खाद, फसल अवशेष, जैव उर्वरक तथा रासायनिक उर्वरकों का समन्वित उपयोग किया जाता है।

इससे मृदा की भौतिक, रासायनिक और जैविक गुणवत्ता को बनाए रखने में सहायता मिलती है।

4. **उर्वरक उपयोग दक्षता में वृद्धि-** यदि उर्वरक को फसल की वास्तविक आवश्यकता के अनुसार दिया जाए तो उसका अधिक हिस्सा पौधे द्वारा उपयोग किया जा सकता है। इससे पोषक तत्वों का अनावश्यक नुकसान कम होता है। विशेष रूप से नाइट्रोजन के अधिक प्रयोग से वाष्पीकरण, लीचिंग तथा अन्य प्रक्रियाओं द्वारा नुकसान हो सकता है। उचित मात्रा और उचित समय पर उर्वरक देने से इसकी उपयोग दक्षता बढ़ाई जा सकती है।

5. **उत्पादन लागत में कमी-** अधिक मात्रा में उर्वरक डालना हमेशा अधिक उत्पादन की गारंटी नहीं देता। आवश्यकता से अधिक उर्वरक खरीदने और डालने से किसान की लागत बढ़ती है। मृदा परीक्षण और फसल की आवश्यकता के आधार पर उर्वरक की मात्रा निर्धारित करने से अनावश्यक खर्च कम किया जा सकता है और किसान की आर्थिक आय में सुधार हो सकता है।

मृदा परीक्षण की भूमिका- संतुलित पोषक तत्व प्रबंधन की शुरुआत मृदा परीक्षण से होनी चाहिए। मृदा परीक्षण से यह पता लगाया जा सकता है कि खेत में कौन-से पोषक तत्व पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं और किनकी कमी है। मृदा परीक्षण के आधार पर किसान फसल के लिए उचित उर्वरक मात्रा निर्धारित कर सकता है। इससे एक ही प्रकार के उर्वरक का लगातार उपयोग करने की समस्या कम होती है। मृदा परीक्षण के माध्यम से सामान्यतः मृदा की अम्लीयता या क्षारीयता, कार्बनिक कार्बन तथा प्रमुख पोषक तत्वों की उपलब्धता का आकलन किया जा सकता है। इसलिए प्रत्येक किसान को नियमित अंतराल पर खेत की मिट्टी की जांच करवाकर उर्वरक प्रबंधन की योजना बनानी चाहिए।

जैविक एवं रासायनिक स्रोतों का समन्वित उपयोग- संतुलित पोषक तत्व प्रबंधन में केवल रासायनिक उर्वरकों पर निर्भर रहना उचित नहीं है। गोबर की खाद, कम्पोस्ट, वर्मी कम्पोस्ट, हरी खाद और फसल अवशेष जैसे जैविक स्रोत मृदा में कार्बनिक पदार्थ बढ़ाने में सहायक होते हैं। रासायनिक उर्वरक पोषक तत्वों की त्वरित आपूर्ति करते हैं, जबकि जैविक खाद मृदा की संरचना, जल धारण क्षमता और सूक्ष्मजीवी गतिविधियों को बेहतर बनाने में सहायक होती है। इसलिए दोनों स्रोतों का वैज्ञानिक तरीके से समन्वित उपयोग अधिक प्रभावी माना जाता है।

जैव उर्वरकों का महत्व- जैव उर्वरक ऐसे जीवित सूक्ष्मजीवी स्रोत हैं जो पौधों को पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ाने में सहायता



करते हैं। राइजोबियम, एजोटोबैक्टर, एजोस्फिरिलम, फॉस्फेट घुलनशील जीवाणु तथा माइकोराइजा जैसे जैविक घटक विभिन्न फसलों में उपयोगी हो सकते हैं।

दलहनी फसलों में राइजोबियम वायुमंडलीय नाइट्रोजन के स्थिरीकरण में सहायता करता है। इसी प्रकार फास्फोरस घुलनशील सूक्ष्मजीव मिट्टी में उपलब्ध अघुलनशील फास्फोरस को पौधों के लिए अधिक उपलब्ध रूप में परिवर्तित करने में सहायता कर सकते हैं। जैव उर्वरकों का उचित उपयोग रासायनिक उर्वरकों की आवश्यकता को कुछ हद तक कम करने और पोषक तत्व उपयोग दक्षता बढ़ाने में सहायक हो सकता है।

4R सिद्धांत और संतुलित पोषण

आधुनिक पोषक तत्व प्रबंधन में 4R सिद्धांत अत्यंत उपयोगी है। इसके चार प्रमुख आधार हैं—

Right Source – सही स्रोत

Right Rate – सही मात्रा

Right Time – सही समय

Right Place – सही स्थान

किसान को फसल और मृदा के अनुसार उचित उर्वरक स्रोत का चयन करना चाहिए। उर्वरक की मात्रा मृदा परीक्षण और फसल की आवश्यकता के अनुसार निर्धारित होनी चाहिए। फसल की महत्वपूर्ण वृद्धि अवस्थाओं के अनुसार पोषक तत्व उपलब्ध कराने चाहिए और उर्वरक को ऐसी जगह देना चाहिए जहां जड़ें उसे प्रभावी रूप से ग्रहण कर सकें।

नाइट्रोजन प्रबंधन- नाइट्रोजन का अत्यधिक प्रयोग फसल के लिए नुकसानदायक हो सकता है। इससे पौधों में अत्यधिक शाकीय वृद्धि, रोग एवं कीटों के प्रति संवेदनशीलता और फसल के गिरने जैसी समस्याएं उत्पन्न हो सकती हैं। नाइट्रोजन को फसल की आवश्यकता के अनुसार विभाजित मात्रा में देना अधिक प्रभावी हो सकता है। इससे पोषक तत्वों के नुकसान को कम करने और पौधों को आवश्यक समय पर नाइट्रोजन उपलब्ध कराने में सहायता मिलती है। नाइट्रोजन प्रबंधन में मृदा परीक्षण, फसल की अवस्था, सिंचाई और मौसम की स्थिति को ध्यान में रखना आवश्यक है।

फास्फोरस एवं पोटैश प्रबंधन- फास्फोरस का मुख्य प्रभाव जड़ विकास और ऊर्जा संबंधी प्रक्रियाओं पर होता है। इसलिए इसे फसल की प्रारंभिक अवस्था में उपलब्ध कराना महत्वपूर्ण होता है। पोटैश पौधे में जल संतुलन, एंजाइम गतिविधि और प्रतिकूल परिस्थितियों से सहनशीलता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। पोटैश की उचित मात्रा फसल की गुणवत्ता और उत्पादन क्षमता को बेहतर करने में सहायता कर सकती है। इन दोनों पोषक तत्वों की मात्रा भी मृदा परीक्षण के आधार पर निर्धारित की जानी चाहिए।

सूक्ष्म पोषक तत्वों का प्रबंधन- भारत के कई कृषि क्षेत्रों में जंक, आयर्न, बोरॉन और सल्फर जैसे पोषक तत्वों की कमी पाई जा सकती है। लगातार अधिक उपज देने वाली किस्मों की खेती और संतुलित मात्रा में जैविक पदार्थों की वापसी न होने के कारण कुछ क्षेत्रों में सूक्ष्म पोषक तत्वों की समस्या बढ़ सकती है। सूक्ष्म पोषक तत्वों का प्रयोग केवल कमी की स्थिति में और अनुशंसित मात्रा के अनुसार करना चाहिए। अत्यधिक मात्रा में सूक्ष्म पोषक तत्वों का प्रयोग भी फसल के लिए हानिकारक हो सकता है।

फसल अवशेषों का प्रबंधन- फसल कटाई के बाद खेत में बचे अवशेषों को जलाने के बजाय उनका उचित प्रबंधन करना चाहिए। फसल अवशेषों को मिट्टी में मिलाने या कम्पोस्ट बनाने से

कार्बनिक पदार्थ और कुछ पोषक तत्वों की वापसी होती है। फसल अवशेषों का उचित प्रबंधन मृदा में जैविक गतिविधि बढ़ाने, जल धारण क्षमता सुधारने और पोषक तत्वों के चक्रण में सहायता करता है।

फसल चक्र एवं पोषक तत्व प्रबंधन- संतुलित पोषण के लिए फसल चक्र भी महत्वपूर्ण है। एक ही फसल को लगातार उगाने से विशेष पोषक तत्वों की मांग बढ़ सकती है और कुछ कीट एवं रोगों की समस्या भी बढ़ सकती है। दलहनी फसलों को फसल चक्र में शामिल करने से जैविक नाइट्रोजन स्थिरीकरण में सहायता मिलती है। उदाहरण के लिए अनाज-दलहन आधारित फसल चक्र मृदा की उर्वरता बनाए रखने में उपयोगी हो सकता है।



सिंचाई और पोषक तत्व प्रबंधन का संबंध- पोषक तत्वों की उपलब्धता और उनका पौधों द्वारा अवशोषण जल की उपलब्धता से गहराई से जुड़ा है। अत्यधिक सिंचाई से नाइट्रोजन और अन्य घुलनशील पोषक तत्वों का लीचिंग के माध्यम से नुकसान हो सकता है। दूसरी ओर जल की कमी होने पर पौधों की पोषक तत्व अवशोषण क्षमता प्रभावित हो सकती है। इसलिए सिंचाई और उर्वरक प्रबंधन को एक-दूसरे से जोड़कर देखना चाहिए।

फसल उत्पादन में आधुनिक तकनीकों की भूमिका- आधुनिक कृषि में सेंसर, ड्रोन, रिमोट सेंसिंग, जीपीएस आधारित कृषि, मोबाइल एप्लीकेशन और प्रिंसीजन फार्मिंग जैसी तकनीकों का उपयोग बढ़ रहा है। इन तकनीकों की सहायता से खेत के विभिन्न हिस्सों में पोषक तत्वों की स्थिति का आकलन करके आवश्यकता के अनुसार उर्वरक प्रयोग किया जा सकता है। प्रिंसीजन कृषि का उद्देश्य पूरे खेत में समान मात्रा में उर्वरक डालने के बजाय फसल की वास्तविक आवश्यकता के अनुसार पोषक तत्वों का उपयोग करना है। इससे उर्वरक बचत और उत्पादन दक्षता में सुधार की संभावना रहती है।

संतुलित पोषण की प्रमुख चुनौतियाँ- किसानों के सामने संतुलित पोषक तत्व प्रबंधन अपनाने में कई चुनौतियाँ हैं। इनमें मृदा परीक्षण के प्रति जागरूकता की कमी, उर्वरकों की कीमत, स्थानीय स्तर पर तकनीकी सलाह का अभाव, एक ही प्रकार के उर्वरक पर निर्भरता तथा सूक्ष्म पोषक तत्वों की जानकारी का अभाव प्रमुख हैं। कई बार किसान केवल दिखाई देने वाली कमी के आधार पर उर्वरक का प्रयोग करते हैं, जबकि पोषक तत्वों की वास्तविक स्थिति जानने के लिए मृदा परीक्षण अधिक विश्वसनीय तरीका है। कृषि विभाग, कृषि विश्वविद्यालय, कृषि विज्ञान केंद्र और अन्य संस्थाओं द्वारा किसानों को स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार पोषक तत्व प्रबंधन की जानकारी उपलब्ध कराना आवश्यक है।

किसानों के लिए व्यावहारिक सुझाव

संतुलित पोषक तत्व प्रबंधन के लिए किसानों को निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए— खेत की मिट्टी का नियमित

परीक्षण करवाएं। फसल की आवश्यकता के अनुसार उर्वरकों का चयन करें। केवल नाइट्रोजन आधारित उर्वरक पर निर्भर न रहें। नाइट्रोजन की अनुशंसित मात्रा को आवश्यकता के अनुसार विभाजित करके दें। जैविक खाद, कम्पोस्ट और फसल अवशेषों का उचित उपयोग करें।

आवश्यकता के अनुसार सूक्ष्म पोषक तत्वों का प्रयोग करें।

जैव उर्वरकों का वैज्ञानिक तरीके से उपयोग करें। उर्वरकों को उचित समय और उचित स्थान पर दें। सिंचाई और उर्वरक प्रबंधन को एकीकृत रूप से अपनाएं। फसल चक्र में दलहनी फसलों को शामिल करें। फसल अवशेषों को जलाने के बजाय उनका प्रबंधन करें। उर्वरकों की मात्रा निर्धारित करते समय कृषि विशेषज्ञों की सलाह लें। खेत की उत्पादकता के साथ-साथ मृदा स्वास्थ्य को भी प्राथमिकता दें।

पर्यावरणीय दृष्टि से संतुलित पोषण का महत्व-

असंतुलित और अत्यधिक उर्वरक उपयोग का प्रभाव केवल खेत तक सीमित नहीं रहता। अतिरिक्त पोषक तत्व जल स्रोतों तक पहुंचकर पर्यावरणीय समस्याएं पैदा कर सकते हैं। विशेष रूप से नाइट्रोजन के अत्यधिक उपयोग से जल एवं वायुमंडलीय प्रदूषण की समस्या उत्पन्न हो सकती है। संतुलित पोषण के माध्यम से उर्वरकों की अनावश्यक मात्रा को कम किया जा सकता है। इससे पोषक तत्वों के नुकसान और पर्यावरणीय दबाव को कम करने में सहायता मिलती है। इस प्रकार संतुलित पोषक तत्व प्रबंधन उत्पादन बढ़ाने के साथ-साथ पर्यावरण संरक्षण के लिए भी आवश्यक है।

सतत कृषि में संतुलित पोषण की भूमिका- सतत कृषि का उद्देश्य वर्तमान पीढ़ी की खाद्य आवश्यकताओं को पूरा करते हुए भविष्य की पीढ़ियों के लिए प्राकृतिक संसाधनों को सुरक्षित रखना है। संतुलित पोषक तत्व प्रबंधन सतत कृषि का महत्वपूर्ण आधार है।

जब किसान मृदा परीक्षण, जैविक खाद, जैव उर्वरक, उचित रासायनिक उर्वरक, फसल चक्र और आधुनिक तकनीकों को एकीकृत रूप से अपनाता है, तो मृदा की उत्पादकता लंबे समय तक बनाए रखने में सहायता मिलती है।

इससे उत्पादन, आर्थिक लाभ और पर्यावरणीय सुरक्षा के बीच संतुलन स्थापित किया जा सकता है।

निष्कर्ष- फसल उत्पादन बढ़ाने के लिए संतुलित पोषक तत्व प्रबंधन अत्यंत आवश्यक है। केवल अधिक मात्रा में उर्वरक डालना अधिक उत्पादन की गारंटी नहीं है। फसल को सभी आवश्यक पोषक तत्व उसकी वास्तविक आवश्यकता के अनुसार सही स्रोत, सही मात्रा, सही समय और सही स्थान पर उपलब्ध कराना ही प्रभावी पोषक तत्व प्रबंधन है। मृदा परीक्षण आधारित उर्वरक सिफारिश, जैविक एवं रासायनिक उर्वरकों का समन्वित उपयोग, जैव उर्वरकों का प्रयोग, सूक्ष्म पोषक तत्वों की पूर्ति, फसल चक्र, फसल अवशेष प्रबंधन तथा आधुनिक प्रिंसीजन कृषि तकनीकों को अपनाकर फसल उत्पादन और गुणवत्ता दोनों में सुधार किया जा सकता है। संतुलित पोषण से न केवल फसल की उत्पादकता बढ़ती है, बल्कि उर्वरक उपयोग दक्षता, किसान की आय, मृदा स्वास्थ्य और पर्यावरणीय स्थिरता में भी सुधार होता है। इसलिए भविष्य की कृषि को अधिक उत्पादक, लाभकारी और टिकाऊ बनाने के लिए संतुलित पोषण-समृद्ध किसान और स्वस्थ मृदा के सिद्धांत को कृषि उत्पादन प्रणाली का अभिन्न हिस्सा बनाना आवश्यक है।



धान एवं गेहूँ की उन्नत एवं वैज्ञानिक खेती की आधुनिक तकनीकें

मनीष कुमार यादव कृषि प्राविधिक सहायक कृषि विभाग, बी.एससी. (ऑनर्स) कृषि, एम.एससी. कृषि — कृषि विज्ञान (एग्रोनॉमी) उत्तर प्रदेश सरकार

सारांश- धान और गेहूँ भारत की प्रमुख खाद्यान्न फसलें हैं तथा देश की खाद्य एवं पोषण सुरक्षा में इनका महत्वपूर्ण योगदान है। बढ़ती जनसंख्या, घटते प्राकृतिक संसाधन, जलवायु परिवर्तन, भूजल स्तर में कमी, मृदा स्वास्थ्य में गिरावट तथा खेती की बढ़ती लागत के कारण पारंपरिक उत्पादन पद्धतियों के साथ-साथ आधुनिक एवं वैज्ञानिक तकनीकों को अपनाना आवश्यक हो गया है। धान में गुणवत्तापूर्ण बीज, स्वस्थ पौध तैयार करना, उचित रोपाई दूरी, सीधी बुवाई, पोषक तत्वों का संतुलित उपयोग, वैकल्पिक गीला-सूखा सिंचाई प्रबंधन, खरपतवार नियंत्रण तथा समन्वित कीट एवं रोग प्रबंधन से उत्पादन एवं संसाधन उपयोग दक्षता बढ़ाई जा सकती है। इसी प्रकार गेहूँ में समय पर बुवाई, प्रमाणित बीज, उचित बीज दर, जीरो टिलेज, अवशेष प्रबंधन, संतुलित उर्वरक प्रयोग, सिंचाई की महत्वपूर्ण अवस्थाओं पर पानी देना तथा खरपतवार एवं रोग प्रबंधन उत्पादन बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इस लेख में धान एवं गेहूँ की वैज्ञानिक खेती की प्रमुख आधुनिक तकनीकों, पोषक तत्व प्रबंधन, जल प्रबंधन, खरपतवार नियंत्रण, कीट एवं रोग प्रबंधन तथा जलवायु-स्मार्ट कृषि तकनीकों का विस्तार से वर्णन किया गया है।

मुख्य शब्द- धान, गेहूँ, वैज्ञानिक खेती, उन्नत तकनीक, जीरो टिलेज, पोषक तत्व प्रबंधन, जल प्रबंधन, खरपतवार प्रबंधन, जलवायु-स्मार्ट कृषि।

1. प्रस्तावना- भारत एक कृषि प्रधान देश है और कृषि क्षेत्र में धान एवं गेहूँ का विशेष स्थान है। धान मुख्यतः खरीफ मौसम में तथा गेहूँ रबी मौसम में उगाया जाता है। देश के विभिन्न कृषि-जलवायु क्षेत्रों में इन फसलों की खेती अलग-अलग परिस्थितियों में की जाती है। दोनों फसलें किसानों की आय, खाद्य सुरक्षा तथा कृषि आधारित अर्थव्यवस्था के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। हालांकि, वर्तमान समय में धान एवं गेहूँ की उत्पादकता बढ़ाने के सामने अनेक चुनौतियाँ हैं। लगातार एक ही फसल प्रणाली अपनाने, अत्यधिक सिंचाई, असंतुलित रासायनिक उर्वरक उपयोग, फसल अवशेषों को जलाने, मृदा में जैविक पदार्थ की कमी तथा जलवायु परिवर्तन के कारण कृषि की स्थिरता प्रभावित हो रही है। ऐसी परिस्थितियों में "अधिक उत्पादन, कम लागत और प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण" आधुनिक कृषि का प्रमुख उद्देश्य होना चाहिए। इसके लिए उन्नत किस्मों के साथ-साथ वैज्ञानिक फसल प्रबंधन, मृदा परीक्षण, सूक्ष्म सिंचाई, मशीनरी, डिजिटल कृषि, मौसम आधारित सलाह और समन्वित कीट प्रबंधन जैसी तकनीकों को अपनाना आवश्यक है।

2. धान की उन्नत एवं वैज्ञानिक खेती

2.1 उन्नत किस्मों का चयन

धान की सफल खेती की पहली आवश्यकता क्षेत्र एवं मौसम के अनुकूल प्रमाणित और उच्च गुणवत्ता वाली किस्म का चयन है। किस्म का चयन करते समय उसकी अवधि, उत्पादन क्षमता, रोग एवं कीट प्रतिरोध, दाने की गुणवत्ता तथा बाजार की मांग को ध्यान में रखना चाहिए। कम अवधि वाली किस्में कई परिस्थितियों में पानी और समय की बचत कर सकती हैं तथा इनके बाद रबी फसल की समय पर बुवाई संभव होती है। रोग एवं कीट प्रतिरोधी किस्मों के प्रयोग से रासायनिक कीटनाशकों पर निर्भरता भी कम की जा सकती



है।

2.2 गुणवत्तापूर्ण बीज एवं बीज उपचार- उच्च उत्पादन के लिए शुद्ध, स्वस्थ, अच्छी अंकुरण क्षमता वाले प्रमाणित बीज का प्रयोग करना चाहिए। बुवाई से पहले बीज उपचार करने से प्रारंभिक अवस्था में बीज एवं मृदाजनित रोगों से बचाव में सहायता मिलती है। जैविक बीज उपचार के लिए उपयुक्त जैव-एजेंटों का प्रयोग भी परिस्थितियों और अनुशंसाओं के अनुसार किया जा सकता है। इससे पौधों की प्रारंभिक वृद्धि बेहतर हो सकती है तथा कुछ रोगों का दबाव कम करने में सहायता मिलती है।

2.3 धान की नर्सरी प्रबंधन- पारंपरिक रोपाई वाले धान में स्वस्थ एवं मजबूत पौध तैयार करना बहुत महत्वपूर्ण है। नर्सरी के लिए समतल, उपजाऊ तथा अच्छी जल निकास वाली भूमि का चयन करना चाहिए। नर्सरी में अत्यधिक घनी बुवाई से बचना चाहिए। स्वस्थ पौधों की जड़ प्रणाली अच्छी होती है और वे मुख्य खेत में रोपाई के बाद तेजी से स्थापित होते हैं। आजकल मैट नर्सरी तकनीक का प्रयोग मशीन द्वारा रोपाई के लिए किया जा रहा है। इससे श्रम की आवश्यकता कम होती है और रोपाई अपेक्षाकृत समान दूरी पर की जा सकती है।

2.4 धान की सीधी बुवाई- धान उत्पादन में पानी और श्रम की बचत के लिए Direct Seeded Rice (DSR) एक महत्वपूर्ण आधुनिक तकनीक है। इसमें पौध तैयार करके रोपाई करने के बजाय सीधे खेत में बीज बोया जाता है।

DSR के प्रमुख लाभ हैं— * रोपाई के श्रम की बचत * खेत में पानी की आवश्यकता में कमी * फसल स्थापना में कम समय * मशीनरी के प्रयोग की संभावना * गेहूँ की समय पर बुवाई में सहायता। हालांकि DSR में खरपतवार प्रबंधन अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसलिए खेत की तैयारी, उचित बीज दर, समय पर खरपतवार नियंत्रण तथा उपलब्ध अनुशंसित तकनीकों का सही उपयोग आवश्यक है।

2.5 धान की रोपाई की वैज्ञानिक विधि- पारंपरिक रोपाई में बहुत अधिक उम्र की पौध का प्रयोग करने से पौध स्थापना एवं वृद्धि प्रभावित हो सकती है। क्षेत्र एवं उत्पादन प्रणाली के अनुसार उचित उम्र की स्वस्थ पौध का चयन करना चाहिए। रोपाई के समय पौधों को बहुत गहराई में लगाने से बचना चाहिए। उचित दूरी पर रोपाई करने से पौधों को प्रकाश, वायु, पानी तथा पोषक तत्व पर्याप्त मात्रा

में प्राप्त होते हैं। यांत्रिक रोपाई के माध्यम से समान दूरी एवं समान गहराई बनाए रखने में सहायता मिलती है और श्रम लागत कम की जा सकती है।

3. धान में जल प्रबंधन- धान को पारंपरिक रूप से अत्यधिक पानी की आवश्यकता वाली फसल माना जाता है, लेकिन आधुनिक तकनीकों के माध्यम से पानी की बचत की जा सकती है।

वैकल्पिक गीला-सूखा सिंचाई प्रबंधन- Alternate Wetting and Drying (AWD) में खेत को लगातार पानी से भरा रखने के बजाय आवश्यकतानुसार सिंचाई की जाती है। इससे अनावश्यक जल उपयोग कम किया जा सकता है। खेत में उचित जल निकास की व्यवस्था भी आवश्यक है। लंबे समय तक अनावश्यक जलभराव रहने से जड़ों का विकास प्रभावित हो सकता है तथा कुछ रोगों का खतरा बढ़ सकता है।

4. धान में पोषक तत्व प्रबंधन- धान में नाइट्रोजन, फास्फोरस एवं पोटैश के साथ-साथ जिंक, सल्फर आदि पोषक तत्वों की भी आवश्यकता हो सकती है। पोषक तत्वों का प्रयोग मृदा परीक्षण एवं स्थानीय कृषि अनुशंसाओं के आधार पर करना चाहिए। नाइट्रोजन की पूरी मात्रा एक साथ देने के बजाय उपयुक्त समय पर विभाजित मात्रा में देने से पौधों द्वारा पोषक तत्वों के उपयोग की दक्षता बढ़ाई जा सकती है। एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन (INM) में रासायनिक उर्वरकों के साथ जैविक खाद, कम्पोस्ट, हरी खाद तथा उपलब्ध जैव उर्वरकों का उचित संयोजन किया जाता है।

5. धान में खरपतवार प्रबंधन- धान में खरपतवार फसल के साथ पानी, प्रकाश, स्थान और पोषक तत्वों के लिए प्रतिस्पर्धा करते हैं। प्रारंभिक अवस्था में खरपतवार नियंत्रण विशेष रूप से महत्वपूर्ण है।

खरपतवार प्रबंधन के लिए- * खेत की उचित तैयारी * स्वच्छ एवं प्रमाणित बीज * उचित पौध दूरी * हाथ से निराई कोनो बीडर जैसे यंत्रों का प्रयोग, उपलब्ध अनुशंसित खरपतवारनाशी का सही समय एवं सही मात्रा में प्रयोग किया जा सकता है। विशेषकर DSR में खरपतवार प्रबंधन के लिए समेकित खरपतवार प्रबंधन अपनाना आवश्यक है।

6. धान में कीट एवं रोग प्रबंधन- धान में तना छेदक, पत्ती लपेटक, हिप्पा, माहू तथा विभिन्न प्रकार के चूसक कीट आर्थिक नुकसान कर सकते हैं। रोगों में ब्लास्ट, शीथ ब्लाइट तथा जीवाणुजनित झुलसा प्रमुख समस्याएँ हो सकती हैं।

इनके नियंत्रण के लिए समन्वित कीट प्रबंधन (IPM) अपनाना अधिक प्रभावी एवं पर्यावरण-अनुकूल तरीका है।

IPM के अंतर्गत- स्वस्थ एवं प्रतिरोधी किस्मों का चयन, संतुलित पोषण, खेत की नियमित निगरानी, आर्थिक क्षति स्तर के आधार पर निर्णय, जैविक नियंत्रण साधनों का उपयोग, आवश्यकता पड़ने पर अनुशंसित कीटनाशकों का विवेकपूर्ण प्रयोग शामिल हैं।

7. गेहूँ की उन्नत एवं वैज्ञानिक खेती- गेहूँ भारत की प्रमुख रबी फसल है। इसकी उत्पादकता मुख्य रूप से किस्म, बुवाई का समय, बीज गुणवत्ता, सिंचाई, पोषक तत्व प्रबंधन तथा खरपतवार एवं रोग नियंत्रण पर निर्भर करती है।

7.1 उपयुक्त किस्म का चयन- क्षेत्र एवं बुवाई के समय के अनुसार उपयुक्त प्रमाणित किस्म का चयन करना चाहिए। देर से बुवाई



वाले क्षेत्रों में ऐसी किस्मों का चयन करना चाहिए जो अपेक्षाकृत कम अवधि में अपना जीवन चक्र पूरा कर सकें। रोग प्रतिरोधी किस्मों का उपयोग करने से रोग प्रबंधन की लागत कम हो सकती है।

7.2 समय पर बुवाई का महत्व- गेहूँ में समय पर बुवाई उच्च उत्पादकता की महत्वपूर्ण कुंजी है। देर से बुवाई करने पर पौधों को अनुकूल तापमान की अवधि कम मिलती है और दाना भरने के समय अधिक तापमान का सामना करना पड़ सकता है। इसलिए धान की कटाई के बाद खेत की शीघ्र तैयारी और गेहूँ की समय पर बुवाई आवश्यक है।

8. जीरो टिलेज एवं संरक्षण कृषि-Zero Tillage (जीरो टिलेज) गेहूँ उत्पादन की महत्वपूर्ण आधुनिक तकनीक है। इसमें पारंपरिक जुताई किए बिना विशेष मशीन की सहायता से गेहूँ की बुवाई की जाती है।

इसके प्रमुख लाभ हैं— * खेत की तैयारी में समय की बचत * डीजल एवं श्रम लागत में कमी * गेहूँ की समय पर बुवाई * मिट्टी की संरचना के संरक्षण में सहायता * नमी संरक्षण * फसल अवशेषों का बेहतर उपयोग। धान-गेहूँ प्रणाली में Happy Seeder तथा Super Seeder जैसी मशीनें फसल अवशेष प्रबंधन और समय पर गेहूँ की बुवाई में उपयोगी हो सकती हैं।

9. गेहूँ में बीज एवं बीज दर प्रबंधन- गेहूँ के लिए प्रमाणित, स्वस्थ और अच्छी अंकुरण क्षमता वाला बीज उपयोग करना चाहिए। बीज दर का निर्धारण बुवाई की विधि, समय, किस्म एवं स्थानीय कृषि अनुशंसा के अनुसार करना चाहिए। बहुत अधिक बीज दर से पौधों की संख्या अत्यधिक बढ़ सकती है, जिससे प्रकाश एवं पोषक तत्वों के लिए प्रतिस्पर्धा बढ़ती है। दूसरी ओर बहुत कम बीज दर से खेत में पौधों का उचित घनत्व नहीं बन पाता। इसलिए उचित पौध संख्या बनाए रखना अधिक महत्वपूर्ण है।

10. गेहूँ में पोषक तत्व प्रबंधन- गेहूँ में नाइट्रोजन का महत्वपूर्ण योगदान होता है, लेकिन केवल नाइट्रोजन पर निर्भर रहने से संतुलित पोषण प्राप्त नहीं होता। फास्फोरस एवं पोटैश के साथ-साथ सल्फर, जिंक और अन्य सूक्ष्म पोषक तत्वों की आवश्यकता मिट्टी की स्थिति के अनुसार हो सकती है।

मृदा परीक्षण के आधार पर उर्वकों का प्रयोग करने से— उर्वरक लागत को नियंत्रित किया जा सकता है, पोषक तत्वों की कमी दूर की जा सकती है, उत्पादन क्षमता बढ़ाई जा सकती है, मृदा स्वास्थ्य बनाए रखने में सहायता मिलती है। नाइट्रोजन की आवश्यकता के अनुसार विभाजित मात्रा में देना अधिक प्रभावी हो सकता है।

11. गेहूँ में सिंचाई प्रबंधन- गेहूँ में सिंचाई की संख्या और समय मिट्टी, मौसम, किस्म तथा उपलब्ध जल पर निर्भर करता है। फसल की कुछ अवस्थाएँ पानी की दृष्टि से विशेष रूप से महत्वपूर्ण होती हैं। क्राउन रूट इनिशिएशन (CRI) अवस्था गेहूँ की अत्यंत महत्वपूर्ण सिंचाई अवस्था है। इस अवस्था में पर्याप्त नमी उपलब्ध होने से पौधों की जड़ एवं कल्ले बनने की प्रक्रिया को सहायता मिलती है। इसके बाद मौसम एवं मिट्टी की स्थिति के अनुसार अन्य महत्वपूर्ण अवस्थाओं पर सिंचाई की योजना बनानी चाहिए। अनावश्यक सिंचाई से पानी की बर्बादी के साथ-साथ पोषक तत्वों के नीचे जाने और जलभराव जैसी समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं।

12. गेहूँ में खरपतवार प्रबंधन- गेहूँ में संकरी पत्ती वाले तथा चौड़ी पत्ती वाले दोनों प्रकार के खरपतवार पाए जाते हैं। ग्लूब्रि-डंडा (Phalaris minor) और जंगली जई जैसे खरपतवार कई गेहूँ क्षेत्रों में महत्वपूर्ण समस्या हो सकते हैं।

खरपतवार नियंत्रण के लिए— * समय पर बुवाई * स्वच्छ बीज * उचित बीज दर * फसल चक्र * यांत्रिक नियंत्रण उपलब्ध अनुशंसित खरपतवारनाशी का सही उपयोग अपनाया जा सकता है। लगातार एक ही खरपतवारनाशी का प्रयोग करने से खरपतवारों में प्रतिरोध विकसित होने की संभावना रहती है। इसलिए अलग-अलग प्रभाव-तंत्र वाली अनुशंसित विधियों को फसल एवं क्षेत्र के अनुसार समेकित करना चाहिए।

13. गेहूँ में रोग एवं कीट प्रबंधन- गेहूँ में विभिन्न प्रकार के रतुआ रोग, करनाल बंट, पाउडरी मिल्ड्यू आदि रोग परिस्थितियों के अनुसार नुकसान पहुंचा सकते हैं। दीमक एवं कुछ अन्य कीट भी समस्या उत्पन्न कर सकते हैं। रोग प्रबंधन में रोगरोधी किस्मों का चयन, स्वस्थ बीज, संतुलित पोषण, उचित सिंचाई तथा खेत की निगरानी महत्वपूर्ण हैं। किसी भी कीटनाशी या फफूंदनाशी का प्रयोग फसल, रोग/कीट, अनुशंसित मात्रा और पंजीकृत लेबल के अनुसार ही करना चाहिए।

14. फसल अवशेष प्रबंधन- धान की कटाई के बाद बचे अवशेषों को जलाना मृदा एवं पर्यावरण दोनों के लिए हानिकारक है। इससे जैविक पदार्थ की हानि, वायु प्रदूषण तथा उपयोगी सूक्ष्मजीवों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है।

इसके स्थान पर अवशेषों को— * मिट्टी में मिलाया * मल्ल के रूप में उपयोग करना * कम्पोस्ट बनाना * पशु चारे के रूप में उपयुक्त उपयोग Happy Seeder/Super Seeder जैसी तकनीकों के माध्यम से खेत में बनाए रखना जैसी विधियों से प्रबंधित किया जा सकता है। फसल अवशेष मिट्टी में जैविक कार्बन बढ़ाने तथा मृदा संरचना सुधारने में भी योगदान कर सकते हैं।



15. धान-गेहूँ प्रणाली में संरक्षण कृषि- धान-गेहूँ प्रणाली में लगातार पारंपरिक जुताई करने से समय, ऊर्जा एवं लागत बढ़ सकती है। संरक्षण कृषि का उद्देश्य मिट्टी की अनावश्यक जुताई को कम करना, फसल अवशेषों को बनाए रखना तथा फसल विविधता को बढ़ावा देना है।

इसके तीन प्रमुख सिद्धांत हैं— न्यूनतम मृदा विक्षोभ + पर्याप्त फसल अवशेष + फसल विविधीकरण।

यह प्रणाली मृदा स्वास्थ्य, जल संरक्षण तथा उत्पादन लागत में सुधार की दिशा में उपयोगी हो सकती है।

16. आधुनिक कृषि मशीनरी का उपयोग- आधुनिक कृषि में मशीनरी की भूमिका तेजी से बढ़ रही है। धान में ट्रान्सप्लान्ट, सीड ड्रिल तथा कंबाइन हार्वेस्टर और गेहूँ में जीरो-टिल ड्रिल, हैपी सीडर, सुपर सीडर एवं कंबाइन हार्वेस्टर जैसी मशीनें उपयोगी हैं। मशीनीकरण से श्रम की कमी की समस्या कम हो सकती है तथा कृषि कार्यों को समय पर पूरा करने में सहायता मिलती है।

17. डिजिटल एवं स्मार्ट कृषि तकनीक- आज के समय में

मोबाइल आधारित मौसम पूर्वानुमान, डिजिटल कृषि सलाह, GPS आधारित मशीनरी, रिमोट सेंसिंग, ड्रोन तथा सेंसर आधारित निगरानी जैसी तकनीकों का कृषि में उपयोग बढ़ रहा है। किसान मौसम की जानकारी के आधार पर सिंचाई, उर्वरक एवं पौध संरक्षण कार्यों की बेहतर योजना बना सकते हैं। ड्रोन एवं रिमोट सेंसिंग तकनीक बड़े क्षेत्र में फसल की स्थिति का आकलन करने में भी उपयोगी हो सकती है। भविष्य में कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) आधारित कृषि सलाह और डेटा-आधारित निर्णय प्रणाली फसल उत्पादन को अधिक सटीक बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं।

18. जलवायु-स्मार्ट धान एवं गेहूँ उत्पादन- जलवायु परिवर्तन के कारण तापमान में वृद्धि, वर्षा के अनिश्चित पैटर्न, सूखा, अत्यधिक वर्षा तथा गर्म हवाओं जैसी परिस्थितियाँ फसल उत्पादन को प्रभावित कर सकती हैं।

इन परिस्थितियों में— * कम अवधि वाली उपयुक्त किस्मों का चयन * सूखा/ताप सहनशील किस्मों का उपयोग * समय पर बुवाई * जल संरक्षण * संरक्षण कृषि * फसल विविधीकरण * संतुलित पोषण

मौसम आधारित कृषि सलाह को अपनाया उपयोगी है। विशेषकर गेहूँ में दाना भरने की अवस्था के दौरान अधिक तापमान उत्पादन को प्रभावित कर सकता है। इसलिए समय पर बुवाई तथा उपयुक्त किस्म का चयन अत्यंत महत्वपूर्ण है।

19. किसानों के लिए समेकित वैज्ञानिक रणनीति- धान एवं गेहूँ की उत्पादकता बढ़ाने के लिए केवल एक तकनीक पर निर्भर रहने के बजाय समेकित फसल प्रबंधन अपनाया चाहिए। एक सफल रणनीति में निम्नलिखित बिंदु शामिल किए जा सकते हैं— गुणवत्तापूर्ण बीज * मृदा परीक्षण * उपयुक्त किस्म * समय पर बुवाई/रोपाई * संतुलित पोषण * उचित सिंचाई * प्रभावी खरपतवार प्रबंधन * IPM * अवशेष प्रबंधन * समय पर कटाई एवं भंडारण। इस प्रकार उत्पादन के प्रत्येक चरण पर वैज्ञानिक निर्णय लेने से संसाधनों का बेहतर उपयोग किया जा सकता है।

20. निष्कर्ष- धान एवं गेहूँ की खेती भारतीय कृषि व्यवस्था की आधारशिला है। बदलते जलवायु परिदृश्य, जल संकट, बढ़ती उत्पादन लागत और मृदा स्वास्थ्य में गिरावट को देखते हुए इन फसलों की पारंपरिक खेती में वैज्ञानिक एवं आधुनिक तकनीकों का समावेश आवश्यक हो गया है।

धान में उन्नत किस्म, गुणवत्तापूर्ण बीज, वैज्ञानिक नर्सरी, छत्तू उचित रोपाई, वैकल्पिक गीला-सूखा सिंचाई, संतुलित पोषण तथा समेकित खरपतवार एवं कीट प्रबंधन महत्वपूर्ण हैं। वहीं गेहूँ में समय पर बुवाई, प्रमाणित बीज, जीरो टिलेज, फसल अवशेष प्रबंधन, मृदा परीक्षण आधारित पोषण, छत्तू अवस्था पर उचित सिंचाई तथा समेकित खरपतवार एवं रोग प्रबंधन उत्पादन एवं लाभप्रदता बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। आधुनिक कृषि का लक्ष्य केवल अधिक उत्पादन प्राप्त करना नहीं बल्कि कम लागत में अधिक उत्पादन, प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण, मृदा स्वास्थ्य में सुधार और किसानों की आय को स्थायी रूप से बढ़ाना होना चाहिए। यदि किसान वैज्ञानिक कृषि तकनीकों को स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार अपनाते हैं और कृषि वैज्ञानिकों एवं कृषि विभाग की अनुशंसाओं का पालन करते हैं, तो धान-गेहूँ प्रणाली को अधिक उत्पादक, लाभकारी एवं टिकाऊ बनाया जा सकता है। अतः आधुनिक वैज्ञानिक तकनीकों का समन्वित उपयोग ही भविष्य की धान एवं गेहूँ खेती को अधिक टिकाऊ, संसाधन-कुशल और किसान हितैषी बनाने की दिशा में महत्वपूर्ण कदम है।



✍ **सर्वेश कुमार** कृषि प्राविधिक सहायक
कृषि विभाग, बी.एस.सी. (ऑनर्स) कृषि
एम.एस.सी. कृषि — पादप रोग विज्ञान
उत्तर प्रदेश सरकार

जैविक रोग नियंत्रण में जैव- फफूंदनाशकों का महत्व एवं उपयोग

सारांश—कृषि उत्पादन में फसल रोगों का प्रकोप उत्पादन एवं गुणवत्ता को गंभीर रूप से प्रभावित करता है। लंबे समय से रासायनिक फफूंदनाशकों का उपयोग रोग नियंत्रण के लिए किया जाता रहा है, लेकिन इनके अत्यधिक एवं असंतुलित प्रयोग से मृदा एवं जल प्रदूषण, लाभकारी सूक्ष्मजीवों पर प्रतिकूल प्रभाव, अवशेष समस्या तथा रोगजनकों में प्रतिरोध विकसित होने जैसी समस्याएँ सामने आ रही हैं। ऐसी परिस्थितियों में जैव-फफूंदनाशक (Biofungicides) टिकाऊ एवं पर्यावरण-अनुकूल रोग प्रबंधन का महत्वपूर्ण विकल्प बनकर उभरे हैं। जैव-फफूंदनाशक मुख्यतः लाभकारी सूक्ष्मजीवों अथवा उनके उत्पादों पर आधारित होते हैं, जो रोगजनक कवकों को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से नियंत्रित करते हैं। Trichoderma, Pseudomonas, Bacillus तथा कुछ अन्य सूक्ष्मजीव फसल रोग प्रबंधन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ये प्रतिस्पर्धा, परजीविता, एंटीबायोटिसिस, पोषक तत्वों की उपलब्धता में परिवर्तन तथा पौधों की प्रतिरोधक क्षमता को सक्रिय करके रोगों को कम कर सकते हैं। जैव-फफूंदनाशकों का बीज उपचार, पौध उपचार, मृदा उपचार, नर्सरी उपचार तथा जैविक खाद के साथ उपयोग किया जा सकता है। यह लेख जैव-फफूंदनाशकों की अवधारणा, प्रमुख प्रकार, कार्यविधि, उपयोग की विधियाँ, लाभ, सीमाएँ तथा प्रभावी उपयोग के लिए आवश्यक सावधानियों का विस्तृत विवरण प्रस्तुत करता है।

मुख्य शब्द— जैव-फफूंदनाशक, ट्राइकोडर्मा, जैविक रोग नियंत्रण, बीज उपचार, समन्वित रोग प्रबंधन, लाभकारी सूक्ष्मजीव, टिकाऊ कृषि।

1. प्रस्तावना— भारत की कृषि व्यवस्था में फसल उत्पादन को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारकों में कीट, रोग, खरपतवार तथा प्रतिकूल मौसम महत्वपूर्ण हैं। इनमें फसल रोगों के कारण प्रतिवर्ष उत्पादन में उल्लेखनीय कमी आती है। फफूंद एवं फफूंद-सदृश रोगजनक पौधों में जड़ सड़न, तना सड़न, झुलसा, उकठा, पत्ती धब्बा, फल सड़न तथा अन्य रोग उत्पन्न करते हैं। रोगों की रोकथाम के लिए किसान सामान्यतः रासायनिक फफूंदनाशकों का प्रयोग करते हैं। उचित मात्रा एवं सही समय पर इनका उपयोग प्रभावी हो सकता है, लेकिन लगातार एवं अनावश्यक उपयोग कृषि पारिस्थितिकी के लिए समस्याएँ उत्पन्न कर सकता है। इससे लाभकारी सूक्ष्मजीव प्रभावित होते हैं और कुछ रोगजनकों में फफूंदनाशकों के प्रति प्रतिरोध विकसित होने की संभावना बढ़ती है। इसी कारण वर्तमान समय में जैविक एवं पर्यावरण-अनुकूल रोग नियंत्रण पर विशेष जोर दिया जा रहा है। जैव-फफूंदनाशक इसी दिशा में एक महत्वपूर्ण साधन हैं। ये प्राकृतिक रूप से पाए जाने वाले लाभकारी सूक्ष्मजीवों पर आधारित होते हैं और रोगजनक जीवों को नियंत्रित करने में सहायता करते हैं। विशेष रूप से Trichoderma की विभिन्न प्रजातियों का उपयोग कृषि में जैविक रोग नियंत्रण के लिए व्यापक रूप से किया जाता है।

2. जैव-फफूंदनाशक क्या हैं?— जैव-फफूंदनाशक ऐसे जैविक उत्पाद हैं जिनमें लाभकारी सूक्ष्मजीव या उनके जैविक उत्पाद सक्रिय घटक के रूप में उपस्थित होते हैं और उनका उपयोग पौधों में रोग उत्पन्न करने वाले रोगजनकों के नियंत्रण के लिए किया जाता है। इनमें मुख्य रूप से लाभकारी कवक और जीवाणु शामिल होते हैं। ये रोगजनक को सीधे नष्ट करने के साथ-साथ पौधे की प्राकृतिक रोग-प्रतिरोधक क्षमता को भी बढ़ा सकते हैं।



प्रमुख जैव-नियंत्रक सूक्ष्मजीवों में निम्न शामिल हैं— * Trichoderma viride * Trichoderma harzianum * Trichoderma asperellum * Pseudomonas fluorescens * Bacillus subtilis * Bacillus amyloliquefaciens

इन सूक्ष्मजीवों की प्रभावशीलता फसल, रोगजनक, मृदा, तापमान, नमी तथा प्रयोग की विधि पर निर्भर करती है।

3. जैव-फफूंदनाशकों की आवश्यकता— आधुनिक कृषि में जैव-फफूंदनाशकों की आवश्यकता कई कारणों से बढ़ रही है।

3.1 रासायनिक फफूंदनाशकों पर निर्भरता कम करना— रोग नियंत्रण में लगातार रासायनिक फफूंदनाशकों के प्रयोग से कृषि प्रणाली में रसायनों पर निर्भरता बढ़ सकती है। जैव-फफूंदनाशक इस निर्भरता को कम करने में सहायक हो सकते हैं।

3.2 पर्यावरण संरक्षण— उचित रूप से उपयोग किए जाने वाले जैव-आधारित उत्पाद सामान्यतः पर्यावरण के लिए अधिक अनुकूल विकल्प प्रदान करते हैं और टिकाऊ कृषि व्यवस्था को बढ़ावा देते हैं।

3.3 मृदा स्वास्थ्य— कुछ लाभकारी सूक्ष्मजीव मृदा में स्थापित होकर पौधों के आसपास लाभकारी सूक्ष्मजीवी गतिविधियों को बढ़ावा देते हैं। इससे स्वस्थ जड़ क्षेत्र विकसित करने में सहायता मिल सकती है।

3.4 रोगजनकों में प्रतिरोध की समस्या— एक ही प्रकार के रासायनिक फफूंदनाशक के बार-बार प्रयोग से रोगजनकों में प्रतिरोध विकसित हो सकता है। जैव-नियंत्रक सूक्ष्मजीव कई अलग-अलग जैविक तंत्रों के माध्यम से रोगजनकों को प्रभावित कर सकते हैं।

4. प्रमुख जैव-फफूंदनाशक सूक्ष्मजीव

4.1 ट्राइकोडर्मा— Trichoderma जैविक रोग नियंत्रण में सबसे महत्वपूर्ण लाभकारी कवकों में से एक है। इसकी विभिन्न प्रजातियाँ मृदा एवं पौधों की जड़ क्षेत्र में पाई जाती हैं।

Trichoderma द्वारा रोग नियंत्रण के प्रमुख तंत्र हैं— रोगजनक के साथ स्थान एवं पोषक तत्वों के लिए प्रतिस्पर्धा * रोगजनक कवक पर परजीविता * एंटीमाइक्रोबियल पदार्थों का उत्पादन * रोगजनक की कोशिका भित्ति को प्रभावित करने वाले एंजाइमों का उत्पादन * पौधे की प्राकृतिक प्रतिरक्षा को सक्रिय करना * जड़ वृद्धि को प्रोत्साहित करना * इसका उपयोग बीज उपचार, मृदा उपचार तथा नर्सरी में किया जा सकता है।

4.2 प्स्यूडोमोनास— Pseudomonas fluorescens जैसे लाभकारी जीवाणु पौधों की जड़ के आसपास स्थापित होकर कई रोगजनकों के विरुद्ध जैविक नियंत्रण प्रदान कर सकते हैं। ये कुछ ऐसे पदार्थ उत्पन्न कर सकते हैं जो रोगजनक सूक्ष्मजीवों की वृद्धि को रोकते हैं। साथ ही पौधे की प्राकृतिक प्रतिरोधक क्षमता को सक्रिय करने में भी इनकी भूमिका हो सकती है।

4.3 बैसिलस— Bacillus subtilis तथा Bacillus amyloliquefaciens जैसे जीवाणु जैविक रोग नियंत्रण में महत्वपूर्ण हैं। इनसे उत्पन्न कुछ जैव सक्रिय पदार्थ रोगजनक सूक्ष्मजीवों की वृद्धि को बाधित कर सकते हैं। इनकी एक विशेषता यह है कि Bacillus की कुछ प्रजातियाँ प्रतिकूल परिस्थितियों में टिकाऊ बीजाणु बना सकती हैं, जिससे इनके कुछ व्यावसायिक उत्पादों का भंडारण एवं उपयोग अपेक्षाकृत सुविधाजनक हो सकता है।

5. जैव-फफूंदनाशकों की कार्यविधि— जैव-फफूंदनाशक केवल एक तंत्र से रोग नियंत्रण नहीं करते। अलग-अलग सूक्ष्मजीव विभिन्न तंत्रों के माध्यम से रोगजनकों को प्रभावित करते हैं।

5.1 प्रतिस्पर्धा— लाभकारी सूक्ष्मजीव जड़ क्षेत्र एवं अन्य पौध भागों पर स्थान और पोषक तत्वों के लिए रोगजनकों से प्रतिस्पर्धा करते हैं। यदि लाभकारी सूक्ष्मजीव तेजी से स्थापित हो जाते हैं तो रोगजनक के विकास के लिए उपलब्ध संसाधन कम हो सकते हैं।

5.2 माइक्रोपैरासिटिज्म— कुछ Trichoderma प्रजातियाँ रोगजनक कवकों के तंतुओं के आसपास बढ़कर उनका परजीवीकरण कर सकती हैं। इस प्रक्रिया को माइक्रोपैरासिटिज्म कहा जाता है।

इस दौरान एंजाइमों की सहायता से रोगजनक की कोशिका भित्ति को कमजोर किया जा सकता है।

5.3 एंटीबायोटिसिस— कुछ लाभकारी सूक्ष्मजीव ऐसे जैव सक्रिय पदार्थ बनाते हैं जो रोगजनक सूक्ष्मजीवों की वृद्धि को रोक सकते हैं। इस प्रकार लाभकारी सूक्ष्मजीव रोगजनक के विकास को दबाने में सहायता करते हैं।

Registered with the Registrar of Newspaper for India

R.N.I. Regd. No.: MPHIN/2006/16946

94251-01132



ISSN-2582-5976

Supported by:

Ksaan
Helpline
+91-7415538151

मध्य भारत

READ FOR ONLINE EDITION

Website: www.krishakbharti.in

E-mail: bhartikrishak75@gmail.com

कृषक भारती

हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली मासिक पत्रिका

वर्ष-21 अंक-5

ग्वालियर, अगस्त 2026

मूल्य 30 रुपए

कृषक समृद्धि का संकल्प, आत्मनिर्भर भारत का विकल्प



तकनीक से तरक्की
किसान की प्रगति



मजबूत किसान
मजबूत भारत



उन्नत खेती
अधिक उपज



जल संरक्षण
भविष्य सुरक्षित



आधुनिक तकनीक
किसान के साथ



बेहतर बाजार
उचित मूल्य

मिट्टी की खुशहाली किसान की समृद्धि



जल है तो कल है
हर बूंद की रक्षा,
हर खेत की सुरक्षा



महिला शक्ति
कृषि की नई पहचान,
सशक्त किसान, सशक्त देश



पशुपालन से समृद्धि
स्वस्थ पशु, बेहतर उत्पादन,
आत्मनिर्भर किसान



जलवायु परिवर्तन के प्रभाव में फसल उत्पादन एवं कृषि प्रबंधन की रणनीतियां

✎ **शिवम** वरिष्ठ अनुसंधान अध्येता (सीनियर रिसर्च फेलो),
डॉ. बी.आर.सी., ए.आर.एस., मंडोर, जोधपुर, राजस्थान

✎ **डॉ. मिथलेश कुमार** सह-प्राध्यापक (एसोसिएट
प्रोफेसर) एवं विभागाध्यक्ष, जी.पी.बी. (अनुवांशिकी एवं पादप
प्रजनन), डॉ. बी.आर.सी., ए.आर.एस., मंडोर, जोधपुर, राजस्थान

✎ **यशस्वी राठौड़** वरिष्ठ अनुसंधान अध्येता (सीनियर रिसर्च
फेलो), डॉ. बी.आर.सी., ए.आर.एस., मंडोर, जोधपुर, राजस्थान

✎ **स्नेहा राठौड़** पीएच.डी. शोधार्थी (सब्जी विज्ञान), कृषि
महाविद्यालय, मंडोर, जोधपुर, (राजस्थान)

प्रस्तावना- कृषि मानव सभ्यता की आधारभूत गतिविधियों में से एक है। भोजन, पशु चारा, रेशा, जैव ईंधन तथा अनेक औद्योगिक कच्चे माल की उपलब्धता कृषि पर निर्भर करती है। भारत जैसे कृषि प्रधान देश में कृषि का महत्व और भी अधिक है, क्योंकि बड़ी संख्या में किसान और ग्रामीण परिवार प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कृषि पर निर्भर हैं। लेकिन वर्तमान समय में जलवायु परिवर्तन कृषि उत्पादन के लिए एक गंभीर चुनौती बनकर सामने आया है।

पृथ्वी के औसत तापमान में वृद्धि, वर्षा के स्वरूप में परिवर्तन, अनियमित मानसून, लंबे समय तक सूखा, अचानक अत्यधिक वर्षा, बाढ़, लू, शीतलहर, पाला, चक्रवात तथा नए कीट एवं रोगों का प्रकोप कृषि उत्पादन को प्रभावित कर रहे हैं। जलवायु में होने वाले इन परिवर्तनों का प्रभाव फसल की बुवाई, अंकुरण, वृद्धि, फूल आने, दाना बनने, पकने और कटाई तक दिखाई दे सकता है। जलवायु परिवर्तन के कारण केवल फसल की उपज ही प्रभावित नहीं होती, बल्कि कृषि उत्पादन की लागत, जल एवं उर्वरक की आवश्यकता, कीट एवं रोग प्रबंधन, मृदा स्वास्थ्य और किसानों की आय पर भी प्रभाव पड़ता है। इसलिए वर्तमान कृषि व्यवस्था में ऐसी रणनीतियों को अपनाना आवश्यक है जो बदलती जलवायु के प्रतिकूल प्रभावों को कम कर सकें और कृषि उत्पादन को अधिक लचीला एवं टिकाऊ बना सकें।

जलवायु परिवर्तन का अर्थ- जलवायु परिवर्तन से आशय लंबे समय में तापमान, वर्षा, आर्द्रता, हवा और अन्य मौसम संबंधी परिस्थितियों के औसत स्वरूप में होने वाले महत्वपूर्ण बदलाव से है।

मौसम में परिवर्तन कुछ घंटों, दिनों या सप्ताहों के

स्तर पर हो सकता है, जबकि जलवायु परिवर्तन का संबंध लंबे समय की प्रवृत्तियों से होता है। वर्तमान समय में मानव गतिविधियों, विशेष रूप से जीवाश्म ईंधन के उपयोग, औद्योगिकीकरण, वनों की कटाई और भूमि उपयोग में बदलाव के कारण वातावरण में ग्रीनहाउस गैसों की मात्रा बढ़ी है, जिससे वैश्विक तापमान वृद्धि की समस्या गंभीर हुई है।

कृषि स्वयं भी जलवायु से गहराई से जुड़ी हुई है। तापमान, वर्षा, सौर विकिरण, आर्द्रता और मिट्टी की नमी फसल की वृद्धि और उत्पादकता को निर्धारित करने वाले प्रमुख कारक हैं। इसलिए जलवायु में परिवर्तन का कृषि पर सीधा प्रभाव पड़ता है।

जलवायु परिवर्तन का फसल उत्पादन पर प्रभाव

1. तापमान में वृद्धि

तापमान फसल की वृद्धि और विकास को नियंत्रित करने वाले प्रमुख कारकों में से एक है। प्रत्येक फसल की एक निश्चित तापमान सीमा होती है, जिसके भीतर



उसका विकास अच्छा होता है। तापमान इस सीमा से अधिक होने पर प्रकाश संश्लेषण, श्वसन, फूल आने और दाना बनने जैसी प्रक्रियाएँ प्रभावित हो सकती हैं।

गेहूँ जैसी रबी फसल में अधिक तापमान के कारण फसल जल्दी पक सकती है और दाना भरने की अवधि कम हो सकती है। इससे दाने का वजन और कुल उत्पादन प्रभावित होने की संभावना रहती है।

इसी प्रकार सब्जियों, फलों और दलहनी फसलों में भी अत्यधिक तापमान फूल एवं फल बनने की प्रक्रिया को प्रभावित कर सकता है।

2. वर्षा के स्वरूप में परिवर्तन

जलवायु परिवर्तन के कारण कई क्षेत्रों में वर्षा का वितरण अनियमित हो रहा है। कुल वर्षा की मात्रा समान रहने पर भी यदि वर्षा कम समय में अत्यधिक मात्रा में हो जाए या लंबे समय तक वर्षा न हो, तो फसल को

नुकसान हो सकता है।

समय पर वर्षा न होने से बुवाई प्रभावित होती है, जबकि अत्यधिक वर्षा से जलभराव, मिट्टी का कटाव और पोषक तत्वों का नुकसान हो सकता है।

3. सूखे की समस्या

कम वर्षा और लंबे समय तक वर्षा न होने की स्थिति में मृदा में नमी की कमी हो जाती है। इससे बीज अंकुरण, पौध वृद्धि, फूल एवं फल निर्माण तथा दाना भरने की प्रक्रिया प्रभावित होती है।

सूखे की स्थिति में फसल को सिंचाई की अधिक आवश्यकता होती है, जिससे सीमित जल संसाधनों पर दबाव बढ़ता है।

4. बाढ़ और जलभराव

अत्यधिक वर्षा से खेतों में जलभराव और बाढ़ की स्थिति उत्पन्न हो सकती है। जलभराव के कारण मिट्टी में ऑक्सीजन की कमी हो जाती है, जिससे पौधों की जड़ें प्रभावित होती हैं। सब्जियों और दलहनी फसलों में लंबे समय तक जलभराव से गंभीर नुकसान हो सकता है। बाढ़ के कारण मिट्टी की ऊपरी उपजाऊ परत का कटाव भी हो सकता है।

5. लू और अत्यधिक गर्मी

फसल के संवेदनशील विकास चरणों में अत्यधिक गर्मी विशेष रूप से नुकसानदायक होती है। फूल आने और दाना बनने के समय तापमान में अचानक वृद्धि होने से परागण और निषेचन प्रभावित हो सकता है।

सब्जी फसलों में अत्यधिक गर्मी से फूलों का झड़ना और फल का आकार कम होना देखा जा सकता है।

6. पाला और शीतलहर

रबी फसलों तथा बागवानी फसलों में अत्यधिक ठंड या पाला भी नुकसानदायक हो सकता है। पाले से पौधों की कोशिकाओं को क्षति पहुंचती है और कोमल पौधे झुलस सकते हैं।

विशेषकर आलू, सब्जियों तथा कुछ फलदार पौधों में पाले से आर्थिक नुकसान हो सकता है।

जलवायु परिवर्तन और कीट एवं रोग

जलवायु परिवर्तन का प्रभाव केवल पौधों पर ही नहीं बल्कि कीटों, रोगजनकों और उनके प्राकृतिक शत्रुओं पर भी पड़ता है।

तापमान और आर्द्रता में बदलाव के कारण कुछ कीटों का जीवन चक्र तेजी से पूरा हो सकता है और उनकी पीढ़ियों की संख्या बढ़ सकती है। कुछ कीट नए क्षेत्रों में भी फैल सकते हैं।



इसी प्रकार तापमान और आर्द्रता में परिवर्तन से फफूंद, जीवाणु और अन्य रोगजनकों की गतिविधि प्रभावित हो सकती है। परिणामस्वरूप कुछ रोगों का प्रकोप बढ़ सकता है जबकि कुछ क्षेत्रों में पुराने रोगों का स्वरूप बदल सकता है।

इसलिए जलवायु परिवर्तन की स्थिति में पारंपरिक कीट एवं रोग प्रबंधन के साथ-साथ समन्वित कीट प्रबंधन (IPM) और रोग प्रबंधन को मजबूत करना आवश्यक है।

जलवायु परिवर्तन के प्रभाव को कम

करने की कृषि प्रबंधन रणनीतियाँ

1. जलवायु अनुकूल किस्मों का चयन

बदलती जलवायु के अनुकूल किस्मों का विकास और उपयोग सबसे महत्वपूर्ण रणनीतियों में से एक है।

किसानों को क्षेत्र के अनुसार सूखा सहनशील, अधिक तापमान सहनशील, जलभराव सहनशील, कम अवधि वाली तथा रोग-कीट सहनशील किस्मों को प्राथमिकता देनी चाहिए। कम अवधि वाली किस्में कुछ परिस्थितियों में फसल को प्रतिकूल मौसम आने से पहले पकाने में सहायता कर सकती हैं।

2. फसल विविधीकरण

एक ही फसल पर अत्यधिक निर्भरता जलवायु जोखिम को बढ़ाती है। यदि मौसम प्रतिकूल हो जाए तो पूरी फसल प्रभावित हो सकती है। इसलिए अनाज, दलहन, तिलहन, सब्जियों और चारे वाली फसलों का उचित मिश्रण अपनाना लाभकारी हो सकता है।

फसल विविधीकरण से किसान की आय के स्रोत बढ़ते हैं और किसी एक फसल में नुकसान होने पर दूसरी फसल से आर्थिक क्षति को कुछ हद तक संतुलित किया जा सकता है।

3. फसल चक्र अपनाना

फसल चक्र मृदा स्वास्थ्य बनाए रखने और जलवायु जोखिम कम करने की महत्वपूर्ण रणनीति है। दलहनी फसलों को फसल चक्र में शामिल करने से मृदा में जैविक नाइट्रोजन स्थिरीकरण में सहायता मिलती है। इससे मृदा उर्वरता बनाए रखने और रासायनिक नाइट्रोजन की आवश्यकता को संतुलित करने में सहायता मिल सकती है।

4. जल संरक्षण एवं सूक्ष्म सिंचाई

जलवायु परिवर्तन के समय जल संसाधनों का कुशल उपयोग अत्यंत आवश्यक है। ड्रिप और स्प्रिंकलर जैसी सूक्ष्म सिंचाई प्रणालियाँ जल उपयोग दक्षता बढ़ाने में सहायक हो सकती हैं।

खेत में मेड़बंदी, वर्षा जल संचयन, खेत तालाब, जल संरक्षण संरचनाएँ और मल्लिचंग जैसी तकनीकों से वर्षा जल को संरक्षित किया जा सकता है।

5. मल्लिचंग का उपयोग

मल्लिचंग में मिट्टी की सतह को जैविक या अन्य उपयुक्त सामग्री से ढक दिया जाता है। इससे मिट्टी से पानी के वाष्पीकरण को कम करने, खरपतवार नियंत्रण तथा मिट्टी के तापमान को संतुलित रखने में सहायता मिल सकती है। फसल अवशेषों का मल्लिचंग के रूप में उपयोग भी मृदा में जैविक पदार्थ बढ़ाने में सहायक हो सकता है।

6. संरक्षण कृषि

संरक्षण कृषि का उद्देश्य मिट्टी को कम से कम पेशान करना, मिट्टी की सतह को अधिक समय तक ढका रखना और फसल विविधता बनाए रखना है।

शून्य जुताई, अवशेष प्रबंधन और उचित फसल चक्र संरक्षण कृषि के महत्वपूर्ण घटक हैं। ऐसी तकनीकें मृदा में नमी संरक्षण, कटाव कम करने और



मृदा स्वास्थ्य बनाए रखने में सहायता कर सकती हैं।

विशेष रूप से गेहूँ की खेती में उचित परिस्थितियों में शून्य जुताई अपनाने से समय, ईंधन और पानी की बचत की संभावना रहती है।

7. मृदा स्वास्थ्य प्रबंधन

स्वस्थ मिट्टी जलवायु जोखिमों का सामना करने में फसल की क्षमता को बढ़ा सकती है। जैविक पदार्थों की पर्याप्त मात्रा वाली मिट्टी में जल धारण क्षमता और मृदा संरचना बेहतर होती है।

गोबर की खाद, कम्पोस्ट, वर्मी कम्पोस्ट, हरी खाद और फसल अवशेषों का उचित उपयोग मृदा स्वास्थ्य सुधारने में सहायक हो सकता है।

इसके साथ ही मृदा परीक्षण के आधार पर संतुलित उर्वरक प्रबंधन अपनाना आवश्यक है।

8. संतुलित पोषक तत्व प्रबंधन

जलवायु परिवर्तन के समय फसल को संतुलित पोषण देना महत्वपूर्ण है। केवल नाइट्रोजन की अधिक मात्रा देने से पौधे की अत्यधिक शाकीय वृद्धि हो सकती है और कुछ परिस्थितियों में पौधे प्रतिकूल मौसम के प्रति अधिक संवेदनशील हो सकते हैं। नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटैश तथा आवश्यक सूक्ष्म पोषक तत्वों का संतुलित प्रयोग फसल की वृद्धि और गुणवत्ता में सहायता करता है। मृदा परीक्षण के आधार

पर उर्वरक की मात्रा निर्धारित करना अधिक प्रभावी रणनीति है।

9. बुवाई के समय में परिवर्तन

बदलते तापमान और वर्षा की परिस्थितियों के अनुसार बुवाई के समय में उचित बदलाव करना उपयोगी हो सकता है। यदि मौसम पूर्वानुमान से अत्यधिक तापमान या भारी वर्षा की संभावना हो तो कृषि विशेषज्ञों की सलाह के अनुसार बुवाई की तारीख में समायोजन किया जा सकता है। समय पर बुवाई करने से फसल के संवेदनशील विकास चरणों को अत्यधिक गर्मी या ठंड से बचाने में सहायता मिल सकती है।

10. मौसम आधारित कृषि सलाह

किसानों को मौसम की जानकारी के आधार पर कृषि निर्णय लेने चाहिए। मौसम पूर्वानुमान के आधार पर किसान सिंचाई, उर्वरक प्रयोग, कीटनाशी छिड़काव और कटाई का समय निर्धारित कर सकता है।

अचानक बारिश की संभावना होने पर अनावश्यक सिंचाई से बचा जा सकता है और भारी वर्षा से पहले कटाई योग्य फसल को सुरक्षित किया जा सकता है।

जलवायु-स्मार्ट कृषि की अवधारणा

जलवायु-स्मार्ट कृषि ऐसी कृषि प्रणाली है जिसका उद्देश्य बदलती जलवायु के बीच उत्पादन एवं किसान की आय को बनाए रखना

या बढ़ाना, जलवायु अनुकूलन क्षमता को मजबूत करना और जहाँ संभव हो कृषि से होने वाले ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन को कम करना है।

इसके प्रमुख आधार हैं—

उत्पादकता में सुधार
जलवायु परिवर्तन के प्रति अनुकूलन
प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण
कृषि जोखिम में कमी

संसाधनों का कुशल उपयोग

जलवायु-स्मार्ट कृषि में फसल, पशुपालन, कृषि वानिकी, जल प्रबंधन और आधुनिक तकनीकों का समन्वित उपयोग किया जा सकता है।

कृषि वानिकी की भूमिका

कृषि वानिकी में खेतों पर फसलों के साथ उपयुक्त वृक्षों का समन्वित उत्पादन किया जाता है। इससे किसान को लकड़ी, फल, चारा या अन्य उत्पादों से अतिरिक्त आय प्राप्त हो सकती है। वृक्षों की उपस्थिति मिट्टी संरक्षण, जैव विविधता और सूक्ष्म जलवायु सुधार में योगदान कर सकती है। उचित प्रजातियों और उचित दूरी का चयन करके कृषि वानिकी को विभिन्न कृषि प्रणालियों में अपनाया जा सकता है।



समेकित कृषि प्रणाली

जलवायु जोखिम को कम करने के लिए फसल उत्पादन के साथ पशुपालन, बागवानी, मत्स्य पालन, मुर्गी पालन या अन्य उपयुक्त गतिविधियों को जोड़ा जा सकता है। समेकित कृषि प्रणाली में एक इकाई से प्राप्त अवशेष दूसरी इकाई में उपयोग किए जा सकते हैं। उदाहरण के लिए फसल अवशेष पशुओं के चारे या खाद निर्माण में उपयोग किए जा सकते हैं और पशु अपशिष्ट का उपयोग जैविक खाद के रूप में किया जा सकता है। इससे संसाधनों का बेहतर उपयोग और किसान की आय में विविधता आती है।

समन्वित कीट प्रबंधन

जलवायु परिवर्तन के कारण कीटों की संख्या और वितरण में परिवर्तन हो सकता है। ऐसे में केवल रासायनिक कीटनाशकों पर निर्भर रहने के बजाय समन्वित कीट प्रबंधन अपनाना अधिक उपयुक्त है।

इसके अंतर्गत—

स्वस्थ एवं प्रतिरोधी किस्मों का उपयोग

खेत की स्वच्छता

फसल चक्र

उचित बुवाई समय

जैविक नियंत्रण

फेरोमोन एवं प्रकाश प्रपंच

आवश्यकता आधारित कीटनाशी प्रयोग

जैसी विधियों को एकीकृत किया जा सकता है।

इससे कीटों का प्रभावी प्रबंधन करने के साथ कीटनाशकों के अनावश्यक उपयोग को कम करने में सहायता मिलती है।

खरपतवार प्रबंधन

जलवायु परिवर्तन के कारण तापमान और नमी में बदलाव से खरपतवारों के वितरण एवं वृद्धि पर भी प्रभाव पड़ सकता है। समय पर निराई-गुड़ाई, मल्लिचंग, फसल चक्र, उचित फसल घनत्व और आवश्यकता आधारित खरपतवारनाशी प्रयोग को एकीकृत करके खरपतवार प्रबंधन किया जा सकता है। खरपतवारों का प्रारंभिक अवस्था में नियंत्रण विशेष रूप से महत्वपूर्ण है क्योंकि वे फसल के साथ पानी, पोषक तत्व, प्रकाश और स्थान के लिए प्रतिस्पर्धा करते हैं।

डिजिटल कृषि और जलवायु जोखिम प्रबंधन

आधुनिक डिजिटल तकनीकें किसानों को जलवायु जोखिम से निपटने में सहायता कर सकती हैं। मोबाइल आधारित कृषि सलाह, मौसम पूर्वानुमान, रिमोट सेंसिंग, ड्रोन, सेंसर और उपग्रह आधारित निगरानी के माध्यम से फसल की स्थिति की जानकारी प्राप्त की जा सकती है। प्रिंसीजन कृषि में खेत के विभिन्न हिस्सों की

वास्तविक स्थिति के अनुसार पानी, उर्वरक और अन्य इनपुट का उपयोग किया जा सकता है। इससे संसाधनों की बचत और उत्पादन दक्षता में सुधार की संभावना होती है।

कटाई के बाद प्रबंधन

जलवायु परिवर्तन का प्रभाव कटाई के बाद भी दिखाई दे सकता है। अधिक तापमान और आर्द्रता के कारण भंडारित अनाज में नमी, फफूंद और कीटों की



समस्या बढ़ सकती है। इसलिए उचित सुखाई, सुरक्षित भंडारण, नमी नियंत्रण और नियमित निरीक्षण आवश्यक है। कटाई का सही समय चुनना भी महत्वपूर्ण है ताकि खेत में मौसम संबंधी नुकसान से बचा जा सके।

किसानों के लिए प्रमुख व्यावहारिक रणनीतियाँ

बदलती जलवायु के बीच किसानों को निम्नलिखित बातों को अपनाने पर विशेष ध्यान देना चाहिए—

- * स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार जलवायु सहनशील किस्मों का चयन करें।
- * समय पर और उचित विधि से बुवाई करें।
- * मौसम आधारित कृषि सलाह का उपयोग करें।
- * वर्षा जल का संरक्षण करें।
- * ड्रिप या स्प्रींकलर जैसी जल-बचत तकनीकों को अपनाएं।
- * खेत में जैविक पदार्थों की मात्रा बढ़ाएं।
- * संतुलित उर्वरक प्रबंधन अपनाएं।
- * फसल चक्र और फसल विविधीकरण को बढ़ावा दें।
- * फसल अवशेष न जलाएं, बल्कि उनका उचित प्रबंधन करें।
- * समन्वित कीट एवं रोग प्रबंधन अपनाएं।
- * कृषि वानिकी और समेकित कृषि प्रणाली को स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार अपनाएं।
- * फसल बीमा जैसी जोखिम प्रबंधन व्यवस्था का उपयोग करें।
- * कटाई और भंडारण के दौरान मौसम की स्थिति को ध्यान में रखें।

* कृषि वैज्ञानिकों एवं कृषि विशेषज्ञों की सलाह के अनुसार तकनीक अपनाएं।

सरकार और कृषि संस्थानों की भूमिका

जलवायु परिवर्तन की चुनौती से निपटने के लिए केवल किसान स्तर पर प्रयास पर्याप्त नहीं हैं। सरकार, कृषि विश्वविद्यालय, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, कृषि विज्ञान केंद्र और अन्य संस्थानों को भी महत्वपूर्ण भूमिका निभानी होगी।

जलवायु सहनशील किस्मों का विकास, मौसम आधारित कृषि सलाह, जल संरक्षण तकनीकों का प्रसार, किसानों को प्रशिक्षण, कृषि यंत्रीकरण, फसल बीमा और आपदा प्रबंधन जैसी व्यवस्थाओं को मजबूत करना आवश्यक है।

स्थानीय स्तर पर जलवायु जोखिम का आकलन करके क्षेत्र विशेष की कृषि योजनाएँ तैयार करना भी उपयोगी हो सकता है।

निष्कर्ष— जलवायु परिवर्तन वर्तमान कृषि व्यवस्था के सामने एक गंभीर और बहुआयामी चुनौती है। बढ़ता तापमान, अनियमित वर्षा, सूखा, बाढ़, लू, पाला तथा कीट एवं रोगों में बदलाव फसल उत्पादन और किसान की आय को प्रभावित कर सकते हैं। इसलिए पारंपरिक कृषि पद्धतियों के साथ आधुनिक, वैज्ञानिक और जलवायु-अनुकूल कृषि तकनीकों को अपनाना समय की आवश्यकता है।

जलवायु सहनशील किस्मों का चयन, फसल विविधीकरण, फसल चक्र, जल संरक्षण, सूक्ष्म सिंचाई, संरक्षण कृषि, मृदा स्वास्थ्य प्रबंधन, संतुलित पोषण, समन्वित कीट प्रबंधन, कृषि वानिकी, मौसम आधारित कृषि सलाह और डिजिटल तकनीकों का उपयोग जलवायु जोखिम को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

भविष्य की कृषि का लक्ष्य केवल अधिक उत्पादन प्राप्त करना नहीं होना चाहिए, बल्कि कम संसाधनों में स्थिर उत्पादन, किसान की आय में वृद्धि, प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण और बदलती जलवायु के प्रति कृषि की सहनशीलता बढ़ाना होना चाहिए।

इस दिशा में "जलवायु-स्मार्ट कृषि" एक प्रभावी मार्ग प्रदान करती है। यदि किसान, वैज्ञानिक, कृषि संस्थान और नीति-निर्माता मिलकर क्षेत्र विशेष की आवश्यकताओं के अनुसार रणनीतियाँ अपनाएँ, तो जलवायु परिवर्तन की चुनौतियों के बावजूद कृषि उत्पादन को अधिक टिकाऊ, लाभकारी और सुरक्षित बनाया जा सकता है।

"बदलती जलवायु के साथ बदलती कृषि तकनीक ही भविष्य की सुरक्षित और टिकाऊ कृषि की आधारशिला है।"



❧ वसीम अकरम कार्यक्रम निदेशक

विधान ऑर्गेनाइजेशन, बी.एससी. (ऑनर्स)

कृषि, एम.एससी. एग्रोनॉमी, सोनभद्र, उत्तर प्रदेश

परिचय—भारतीय कृषि में लंबे समय से कुछ प्रमुख फसलों पर अत्यधिक निर्भरता रही है। कई क्षेत्रों में किसान लगातार एक ही फसल या सीमित फसल प्रणाली को अपनाते हैं। इससे समय के साथ मृदा के कुछ पोषक तत्वों का अधिक दोहन, भूजल पर दबाव, कीट एवं रोगों की समस्या तथा बाजार जोखिम बढ़ सकता है। ऐसी परिस्थितियों में फसल विविधीकरण टिकाऊ कृषि एवं किसानों की आय बढ़ाने की एक महत्वपूर्ण रणनीति के रूप में सामने आया है।

फसल विविधीकरण का अर्थ कृषि भूमि पर एक ही फसल पर निर्भर रहने के बजाय विभिन्न प्रकार की फसलों को अपनाना है। इसमें अनाज के साथ दलहन, तिलहन, सब्जियां, फल, मसाले, चारा फसलें तथा अन्य लाभकारी फसलों को फसल प्रणाली में शामिल किया जा सकता है।

फसल विविधीकरण केवल अधिक फसलें उगाने तक सीमित नहीं है। इसका उद्देश्य उपलब्ध भूमि, जल, श्रम, पूंजी और प्राकृतिक संसाधनों का बेहतर उपयोग करते हुए उत्पादन, आय, पोषण एवं कृषि की स्थिरता में सुधार करना है। उचित फसल चयन से मृदा स्वास्थ्य में सुधार, जल की बचत, कीट-रोग जोखिम में कमी और बाजार जोखिम को कम करने में सहायता मिल सकती है।

1. फसल विविधीकरण का अर्थ

किसी क्षेत्र में प्रचलित एकल फसल प्रणाली के स्थान पर दो या अधिक उपयुक्त फसलों को अलग-अलग मौसमों में या एक ही खेत में वैज्ञानिक तरीके से शामिल करना फसल विविधीकरण कहलाता है। उदाहरण के लिए धान-गेहूं प्रणाली में आवश्यकता एवं क्षेत्रीय परिस्थितियों के अनुसार दलहन, तिलहन, मक्का या अन्य फसलों को शामिल करना विविधीकरण का एक रूप हो सकता है।

2. फसल विविधीकरण की आवश्यकता

कृषि में विविधीकरण की आवश्यकता कई कारणों से बढ़ रही है—

भूजल स्तर में गिरावट। मृदा स्वास्थ्य में गिरावट।

जलवायु परिवर्तन। बाजार में कीमतों का उतार-चढ़ाव।

एक ही फसल पर आर्थिक निर्भरता। कीट एवं रोगों का बढ़ता जोखिम। कृषि आय को स्थिर करने की आवश्यकता। पोषण सुरक्षा की बढ़ती मांग।

3. टिकाऊ कृषि में भूमिका

टिकाऊ कृषि का उद्देश्य वर्तमान उत्पादन आवश्यकताओं को पूरा करते हुए प्राकृतिक संसाधनों को भविष्य के लिए सुरक्षित रखना है। फसल विविधीकरण इस उद्देश्य को पूरा करने में सहायक हो सकता है।

फसल विविधीकरण: टिकाऊ कृषि एवं किसानों की आय बढ़ाने की प्रभावी रणनीति

विभिन्न फसलों की अलग-अलग जड़ प्रणाली, पोषक तत्वों की आवश्यकता एवं जल मांग होती है। इसलिए विविध फसल प्रणाली संसाधनों के बेहतर उपयोग में योगदान दे सकती है।

4. मृदा स्वास्थ्य में सुधार

एक ही फसल लगातार उगाने से कुछ विशिष्ट पोषक तत्वों का अधिक उपयोग हो सकता है। फसल विविधीकरण से विभिन्न फसलों की अलग-अलग पोषण आवश्यकताओं के कारण पोषक तत्वों के उपयोग में संतुलन स्थापित करने में सहायता मिलती है। दलहनी फसलों को शामिल करना विशेष रूप से उपयोगी हो सकता है, क्योंकि वे जैविक नाइट्रोजन स्थिरीकरण में योगदान देती हैं।

5. दलहनी फसलों की भूमिका— चना, अरहर,

8. फसल चक्र और विविधीकरण

फसल चक्र फसल विविधीकरण का महत्वपूर्ण आधार है। इसमें अलग-अलग फसलों को निश्चित क्रम में उगाया जाता है।

उदाहरण के लिए— धान * गेहूं * मूंग

जैसी प्रणाली में तीसरी फसल के रूप में दलहन को शामिल करने से भूमि का अतिरिक्त उपयोग किया जा सकता है और फसल प्रणाली में विविधता आती है।

9. मिश्रित खेती

एक ही खेत में एक साथ दो या अधिक उपयुक्त फसलों को उगाना मिश्रित खेती या अंतरवर्ती फसल प्रणाली का हिस्सा हो सकता है। उदाहरण के लिए दलहन के साथ तिलहन या अनाज फसल का संयोजन कुछ क्षेत्रों में उपयोगी हो सकता है। उचित फसल संयोजन का चयन स्थानीय जलवायु, मृदा एवं बाजार के आधार पर किया जाना चाहिए।

10. फसल विविधीकरण एवं जल संरक्षण

अत्यधिक जल मांग वाली फसलों पर लगातार निर्भरता सिंचाई संसाधनों पर दबाव डाल सकती है। ऐसे क्षेत्रों में कम या मध्यम जल आवश्यकता वाली फसलों को शामिल करने से जल उपयोग में सुधार हो सकता है। इसके साथ ड्रिप, स्प्रिंकलर, मल्टिचंग तथा वैज्ञानिक सिंचाई प्रबंधन अपनाने से जल उपयोग दक्षता बढ़ाई जा सकती है।

11. भूजल संरक्षण

कुछ क्षेत्रों में धान जैसी अधिक जल मांग वाली फसलों की लगातार खेती भूजल संसाधनों पर दबाव डाल सकती है। वहां उपयुक्त कम पानी वाली फसलों को फसल प्रणाली में शामिल करने से सिंचाई जल की मांग कम करने में सहायता मिल सकती है।

12. कीट एवं रोग प्रबंधन

एक ही फसल को लगातार उगाने से कुछ विशिष्ट कीटों एवं रोगों के लिए अनुकूल परिस्थितियां बनी रह सकती हैं। फसल विविधीकरण एवं फसल चक्र से उनके जीवन चक्र में व्यवधान उत्पन्न करने में सहायता मिल सकती है। हालांकि केवल विविधीकरण को कीट नियंत्रण का पूर्ण उपाय नहीं माना जाना चाहिए। इसके साथ समेकित कीट प्रबंधन अपनाना आवश्यक है।

13. खरपतवार प्रबंधन

विभिन्न फसलों के अलग-अलग बुवाई समय, वृद्धि स्वरूप और प्रतिस्पर्धात्मक क्षमता के कारण फसल विविधीकरण कुछ खरपतवारों के प्रभुत्व को कम करने में सहायता कर सकता है। फसल चक्र खरपतवारों के लगातार एक जैसे जीवन चक्र को बाधित कर सकता है।

फसल विविधीकरण क्यों जरूरी



मूंग, उड़द, मसूर और मटर जैसी दलहनी फसलें विविधीकरण के लिए महत्वपूर्ण हैं।

इनके प्रमुख लाभ हैं— * नाइट्रोजन स्थिरीकरण में योगदान। * प्रोटीन का अच्छा स्रोत। * फसल प्रणाली में विविधता। * कुछ क्षेत्रों में कम पानी में उत्पादन की संभावना। * किसानों के लिए अतिरिक्त आय का स्रोत।

6. तिलहनी फसलों का समावेश

सरसों, मूंगफली, तिल, सोयाबीन और सूरजमुखी जैसी तिलहनी फसलों को उपयुक्त क्षेत्रों में शामिल किया जा सकता है। तिलहनी फसलों का महत्व खाद्य तेल की मांग तथा बाजार अवसरों के कारण भी बढ़ रहा है।

7. सब्जियों एवं बागवानी फसलों की भूमिका

उचित सिंचाई एवं बाजार सुविधा वाले क्षेत्रों में सब्जियों और फल फसलों को फसल प्रणाली में शामिल करने से प्रति इकाई क्षेत्र अधिक आर्थिक लाभ की संभावना हो सकती है। हालांकि बागवानी फसलों में उत्पादन लागत, श्रम, भंडारण और बाजार प्रबंधन पर विशेष ध्यान देना आवश्यक है।



14. किसान की आय में वृद्धि

फसल विविधीकरण से किसान केवल एक फसल की आय पर निर्भर नहीं रहता। यदि एक फसल की कीमत कम हो जाए तो दूसरी फसल से प्राप्त आय आर्थिक नुकसान को कुछ हद तक संतुलित कर सकती है। इस प्रकार विविधीकरण किसानों की आय में स्थिरता लाने की दिशा में उपयोगी रणनीति हो सकता है।

15. बाजार जोखिम में कमी

किसी एक फसल का उत्पादन अधिक होने पर बाजार में कीमत गिरने का जोखिम रहता है। विभिन्न फसलों को शामिल करने से किसान की बाजार निर्भरता विभाजित होती है। हालांकि विविधीकरण तभी लाभकारी होगा जब किसान को चुनी गई फसलों के लिए उचित बाजार, भंडारण और परिवहन सुविधा उपलब्ध हो।

16. पोषण सुरक्षा

फसल विविधीकरण केवल आर्थिक दृष्टि से ही महत्वपूर्ण नहीं है, बल्कि यह परिवार एवं समाज की पोषण सुरक्षा में भी योगदान देता है। अनाज के साथ दलहन, तिलहन, सब्जियों एवं फलों का उत्पादन भोजन में प्रोटीन, वसा, विटामिन एवं खनिज तत्वों की उपलब्धता बढ़ा सकता है।

17. जलवायु परिवर्तन के प्रति अनुकूलन

जलवायु परिवर्तन के कारण वर्षा, तापमान और मौसम की अवधि में अनिश्चितता बढ़ सकती है। यदि किसान केवल एक फसल पर निर्भर है तो प्रतिकूल मौसम से पूरी आय प्रभावित हो सकती है। विभिन्न फसलों को शामिल करने से कृषि प्रणाली की जोखिम सहनशीलता बढ़ सकती है।

18. जैव विविधता में योगदान

विभिन्न फसलों की खेती कृषि भूमि में जैव विविधता को बढ़ाती है। इससे खेत का पारिस्थितिक तंत्र अधिक विविध बन सकता है और कुछ परिस्थितियों में प्राकृतिक शत्रु एवं लाभकारी जीवों के संरक्षण में सहायता मिल सकती है।

19. कृषि वानिकी आधारित विविधीकरण

कृषि भूमि पर उपयुक्त वृक्षों के साथ फसल उत्पादन करना कृषि वानिकी का हिस्सा है। फलदार, चारा एवं लकड़ी देने वाले उपयुक्त वृक्षों को स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार फसल प्रणाली में शामिल किया जा सकता है। इससे किसान को फसल के अतिरिक्त दीर्घकालीन आय का स्रोत मिल सकता है।

20. पशुपालन के साथ फसल विविधीकरण

फसल उत्पादन को पशुपालन के साथ जोड़कर एकीकृत कृषि प्रणाली विकसित की जा सकती है। फसल अवशेष पशुओं के लिए चारे के रूप में उपयोग हो सकते हैं और पशुओं से प्राप्त गोबर को जैविक खाद के रूप में खेत में वापस लाया जा सकता है। इससे कृषि संसाधनों का पुनर्चक्रण बेहतर होता है।

21. मधुमक्खी पालन एवं अन्य सहायक गतिविधियां

फसल विविधीकरण के साथ मधुमक्खी पालन,

मशरूम उत्पादन, मुर्गी पालन, मत्स्य पालन या अन्य कृषि आधारित गतिविधियों को भी स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार अपनाया जा सकता है। इससे किसान की आय के स्रोत बढ़ सकते हैं।

22. मृदा परीक्षण की भूमिका

किस फसल को उगाना अधिक उपयुक्त होगा, यह निर्धारित करने में मृदा परीक्षण महत्वपूर्ण है। मृदा का श्वा, जैविक कार्बन, पोषक तत्व तथा अन्य गुणों की जानकारी के आधार पर फसल चयन बेहतर किया जा सकता है। इससे ऐसी फसल चुनने में सहायता मिलती है जो स्थानीय मृदा के अनुकूल हो।

23. जल उपलब्धता के आधार पर फसल चयन

फसल विविधीकरण में जल उपलब्धता सबसे महत्वपूर्ण कारकों में से एक है। सिंचित क्षेत्र में किसान

जल उपलब्धता का आकलन करें। स्थानीय जलवायु के अनुकूल फसल चुनें। बाजार की मांग देखें।

एकदम पूरी भूमि पर नई फसल न लगाकर छोटे क्षेत्र से शुरुआत करें।

कृषि विशेषज्ञों की सलाह लें।

फसल चक्र तैयार करें।

उत्पादन के साथ भंडारण एवं विपणन की योजना बनाएं।

27. सफल विविधीकरण की आधारभूत शर्तें

फसल विविधीकरण तभी सफल हो सकता है जब उत्पादन के साथ विपणन व्यवस्था भी मजबूत हो। किसान को बुवाई से पहले यह पता होना चाहिए कि तैयार उपज को कहाँ और किस कीमत पर बेचा जा सकता है। कृषक उत्पादक संगठन, सहकारी संस्थाएं, स्थानीय बाजार, प्रसंस्करण इकाइयां तथा प्रत्यक्ष विपणन व्यवस्था किसानों के लिए उपयोगी हो सकती हैं।

28. फसल विविधीकरण और किसान की दीर्घकालीन आय

विविधीकरण से आय का एक निश्चित स्तर हर वर्ष सुनिश्चित होना आवश्यक नहीं है, लेकिन अलग-अलग फसलों एवं कृषि गतिविधियों से आय के स्रोत बढ़ाए जा सकते हैं। इससे किसी एक फसल के खराब मौसम या कम बाजार मूल्य से होने वाले जोखिम को कम करने में सहायता मिल सकती है।

29. समेकित कृषि प्रणाली

फसल विविधीकरण को पशुपालन, मत्स्य पालन, मधुमक्खी पालन, कृषि वानिकी एवं जैविक संसाधन प्रबंधन के साथ जोड़कर अधिक समेकित कृषि प्रणाली विकसित की जा सकती है।

इससे खेत में उपलब्ध संसाधनों का पुनर्चक्रण होता है और कृषि प्रणाली अधिक आत्मनिर्भर बन सकती है।

30. निष्कर्ष-फसल विविधीकरण टिकाऊ कृषि,

प्राकृतिक संसाधन संरक्षण और किसानों की आय में स्थिरता लाने की प्रभावी रणनीति है। एक ही फसल पर निर्भर रहने के बजाय अनाज, दलहन, तिलहन, सब्जियों, फल, चारा फसलों तथा अन्य उपयुक्त कृषि गतिविधियों को स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार शामिल किया जा सकता है। फसल विविधीकरण से मृदा स्वास्थ्य, जल उपयोग दक्षता, जैव विविधता, पोषण सुरक्षा और कृषि जोखिम प्रबंधन में सकारात्मक योगदान मिल सकता है। हालांकि इसकी सफलता के लिए केवल फसल बदलना पर्याप्त नहीं है; गुणवत्तापूर्ण बीज, वैज्ञानिक उत्पादन तकनीक, बाजार सुविधा, भंडारण, प्रसंस्करण एवं उचित मूल्य की व्यवस्था भी आवश्यक है।

इसलिए किसानों को अपनी मृदा, जलवायु, जल उपलब्धता, बाजार और आर्थिक क्षमता को ध्यान में रखते हुए योजनाबद्ध तरीके से फसल विविधीकरण अपनाना चाहिए। इससे कृषि को अधिक टिकाऊ, लाभकारी और जलवायु-सहिष्णु बनाने में महत्वपूर्ण सहायता मिल सकती है।

फसल विविधीकरण



अधिक विकल्प अपना सकता है, जबकि वर्षा आधारित क्षेत्रों में सूखा सहनशील, कम अवधि वाली तथा स्थानीय परिस्थितियों के अनुकूल फसलों को प्राथमिकता देना अधिक उचित हो सकता है।

24. आधुनिक तकनीकों की भूमिका- फसल

विविधीकरण में आधुनिक कृषि तकनीकों का उपयोग भी महत्वपूर्ण है।

इनमें—

ड्रिप सिंचाई, स्पिंकलर, मौसम आधारित सलाह, मृदा परीक्षण, उन्नत बीज, मशीनरी, डिजिटल कृषि सेवाएं, सेंसर आधारित सिंचाई शामिल हैं।

25. फसल विविधीकरण में आने वाली चुनौतियां

फसल विविधीकरण के सामने कुछ प्रमुख चुनौतियां भी हैं— बाजार की अनिश्चितता। प्रसंस्करण एवं भंडारण की कमी। नई फसलों की तकनीकी जानकारी का अभाव। गुणवत्तापूर्ण बीज की उपलब्धता। सिंचाई की सीमित सुविधा। मशीनरी का अभाव। श्रम की समस्या। मूल्य में उतार-चढ़ाव।

इन समस्याओं के समाधान के लिए किसान प्रशिक्षण, बेहतर बाजार संपर्क, भंडारण सुविधाएं एवं प्रसंस्करण इकाइयों का विकास आवश्यक है।

26. किसानों के लिए व्यावहारिक रणनीति

किसान फसल विविधीकरण शुरू करने से पहले निम्न बातों पर विचार कर सकता है—

अपनी मृदा की जांच कराएं।



✍ जितेन्द्र चौधरी सहायक आचार्य
पशुधन उत्पादन प्रबंधन विभाग, लॉर्ड्स
विश्वविद्यालय, अलवर (राजस्थान)

✍ सुभाष बाजिया कृषि प्रसार कार्यकर्ता,
एम.एससी. (कृषि कीट विज्ञान), एमबीए
(कृषि व्यवसाय प्रबंधन) भारती विद्यापीठ
(अभिमत विश्वविद्यालय), पुणे

सारांश

बछड़ा किसी भी डेयरी फार्म के भविष्य का आधार होता है। स्वस्थ बछड़ा ही आगे चलकर स्वस्थ, उत्पादक एवं बेहतर प्रजनन क्षमता वाला वयस्क पशु बन सकता है। जन्म के बाद शुरुआती कुछ सप्ताह बछड़े के जीवन में अत्यंत महत्वपूर्ण होते हैं, क्योंकि इस अवधि में उसकी रोग प्रतिरोधक क्षमता पूरी तरह विकसित नहीं होती। नवजात बछड़े की उचित देखभाल, समय पर खीस पिलाना, नाभि की स्वच्छता, पर्याप्त एवं संतुलित पोषण, स्वच्छ पानी, उचित आवास, टीकाकरण, कृमि नियंत्रण तथा रोगों की समय पर पहचान उसके जीवित रहने और स्वस्थ विकास के लिए आवश्यक हैं। दस्त, निमोनिया, नाभि संक्रमण एवं परजीवी संक्रमण बछड़ों में सामान्य स्वास्थ्य समस्याएं हैं। वैज्ञानिक प्रबंधन द्वारा बछड़ा मृत्यु दर को कम करने, वृद्धि दर बढ़ाने तथा भविष्य में बेहतर दुग्ध उत्पादन एवं प्रजनन क्षमता वाले पशु तैयार करने में सहायता मिलती है। प्रस्तुत लेख में नवजात बछड़े से लेकर बढ़ती उम्र तक की वैज्ञानिक देखभाल एवं स्वास्थ्य प्रबंधन के विभिन्न पहलुओं का विस्तृत वर्णन किया गया है।

प्रमुख शब्द- बछड़ा, नवजात देखभाल, खीस, कोलोस्ट्रम, पोषण, टीकाकरण, दस्त, निमोनिया, कृमिनाशन, स्वास्थ्य प्रबंधन।

1. भूमिका

डेयरी पशुपालन में बछड़ों की देखभाल को अक्सर वयस्क पशुओं की तुलना में कम महत्व दिया जाता है, जबकि वास्तव में बछड़ा भविष्य के पशुधन की नींव होता है। यदि जन्म से ही बछड़े को उचित पोषण, स्वच्छ वातावरण और स्वास्थ्य सुरक्षा प्रदान की जाए तो उसके विकास, रोग प्रतिरोधक क्षमता, प्रजनन क्षमता और भविष्य की उत्पादकता में सुधार किया जा सकता है।

बछड़े के जीवन के शुरुआती दिन विशेष रूप से संवेदनशील होते हैं। जन्म के समय उसकी प्रतिरक्षा प्रणाली पूरी तरह विकसित नहीं होती और उसे बाहरी वातावरण से संक्रमण का खतरा रहता है। इसलिए जन्म के तुरंत बाद की

बछड़ों की वैज्ञानिक देखभाल एवं स्वास्थ्य प्रबंधन

देखभाल से लेकर दूध छुड़ाने तक वैज्ञानिक प्रबंधन अत्यंत आवश्यक है।

2. नवजात बछड़े का महत्व

एक स्वस्थ बछड़ा भविष्य में फार्म की उत्पादकता बढ़ाने में योगदान देता है। मादा बछड़े भविष्य की दुधारू गाय बन सकती हैं, जबकि श्रेष्ठ आनुवंशिक क्षमता वाले नर बछड़े प्रजनन कार्यक्रम में उपयोगी हो सकते हैं। बछड़े की खराब वृद्धि, बार-बार होने वाले रोग और पोषण की कमी उसके भविष्य के प्रदर्शन को प्रभावित कर सकते हैं। इसलिए बछड़े के स्वास्थ्य को पशुपालन की दीर्घकालीन निवेश रणनीति के रूप में देखना चाहिए।

3. जन्म के तुरंत बाद की देखभाल

बछड़े के जन्म के तुरंत बाद उसकी सांस, शरीर का तापमान, गतिविधि और सामान्य स्थिति की जांच करनी चाहिए। यदि बछड़े को सांस लेने में कठिनाई हो तो प्रशिक्षित व्यक्ति द्वारा तत्काल आवश्यक सहायता दी जानी चाहिए। बछड़े के शरीर को साफ और सूखा रखना महत्वपूर्ण है। ठंडे वातावरण में शरीर को सुखाकर उसे गर्म एवं सूखे स्थान पर रखना चाहिए।

4. नाभि की देखभाल

नवजात बछड़े की नाभि संक्रमण का संभावित मार्ग होती है। इसलिए नाभि को स्वच्छ रखना अत्यंत आवश्यक है। नाभि को उचित एंटीसेप्टिक से कीटाणुरहित करने की व्यवस्था पशु चिकित्सक या स्थानीय पशु स्वास्थ्य प्रोटोकॉल के अनुसार करनी चाहिए। नाभि में सूजन, गर्माहट, दुर्गंध, मवाद या दर्द दिखाई देने पर तुरंत पशु चिकित्सक से संपर्क करना चाहिए।

5. खीस का महत्व

जन्म के बाद मिलने वाला पहला दूध, जिसे खीस या कोलोस्ट्रम कहते हैं, बछड़े के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसमें प्रतिरक्षी तत्व, ऊर्जा, प्रोटीन, विटामिन एवं खनिज पर्याप्त मात्रा में होते हैं। बछड़े को जन्म के बाद यथाशीघ्र पर्याप्त मात्रा में अच्छी गुणवत्ता वाली खीस उपलब्ध कराना चाहिए। खीस देने में देरी होने पर बछड़े को पर्याप्त प्रतिरक्षा प्राप्त नहीं हो पाती और संक्रमण का जोखिम बढ़ सकता है।

6. खीस की गुणवत्ता

सिर्फ खीस उपलब्ध कराना पर्याप्त नहीं है, बल्कि उसकी गुणवत्ता भी महत्वपूर्ण है। स्वस्थ गाय से प्राप्त स्वच्छ और अच्छी गुणवत्ता वाली खीस का उपयोग करना चाहिए। खीस को साफ बर्तन में निकालना चाहिए और यदि तत्काल उपयोग

संभव न हो तो उचित परिस्थितियों में सुरक्षित रखने की व्यवस्था करनी चाहिए।

7. दूध पिलाने का प्रबंधन

बछड़े को दूध उसकी उम्र, शरीर के वजन और स्वास्थ्य स्थिति के अनुसार उचित मात्रा में देना चाहिए। दूध साफ बर्तन से निर्धारित समय पर पिलाया जाना चाहिए। दूध पिलाने के बर्तनों की नियमित सफाई आवश्यक है। दूषित बर्तन बछड़ों में दस्त एवं अन्य संक्रमणों का कारण बन सकते हैं।

8. स्वच्छ पानी की उपलब्धता

बछड़े को उचित उम्र से स्वच्छ एवं ताजा पानी उपलब्ध कराना चाहिए। पानी की उपलब्धता शरीर के सामान्य विकास और ठोस आहार के सेवन के लिए महत्वपूर्ण है। पानी के बर्तन को नियमित रूप से साफ करना चाहिए तथा उसमें गंदगी जमा नहीं होने देनी चाहिए।

9. कैल्फ स्टार्टर का महत्व

बछड़े की उम्र बढ़ने के साथ उसे अच्छी गुणवत्ता वाला कैल्फ स्टार्टर उपलब्ध कराया जाता है। यह रूमेन के विकास में सहायता करता है और बछड़े को धीरे-धीरे ठोस आहार के लिए तैयार करता है। कैल्फ स्टार्टर ताजा, साफ और उचित पोषक तत्वों वाला होना चाहिए। इसकी शुरुआत स्थानीय पशु पोषण विशेषज्ञ की सलाह के अनुसार की जा सकती है।

10. दूध छुड़ाना

दूध छुड़ाने का निर्णय केवल उम्र के आधार पर नहीं, बल्कि बछड़े के स्वास्थ्य, ठोस आहार सेवन और विकास के आधार पर किया जाना चाहिए। स्वस्थ बछड़े में जब ठोस आहार का सेवन पर्याप्त रूप से विकसित हो जाए और उसका स्वास्थ्य अच्छा हो, तब धीरे-धीरे दूध कम करके दूध छुड़ाने की प्रक्रिया अपनाई जा सकती है।

11. आवास प्रबंधन

बछड़े का आवास साफ, सूखा, हवादार और सुरक्षित होना चाहिए। फर्श पर नमी एवं गंदगी जमा नहीं होने देनी चाहिए। आवास में पर्याप्त वेंटिलेशन होना चाहिए, लेकिन बछड़े को सीधे ठंडी हवा के तेज झोंकों से बचाना चाहिए। गर्मियों में पर्याप्त छाया और वायु संचार की व्यवस्था आवश्यक है।

12. स्वच्छता का महत्व

बछड़ों में संक्रामक रोगों की रोकथाम के लिए स्वच्छता अत्यंत महत्वपूर्ण है। बछड़े के स्थान से गोबर एवं गंदगी नियमित रूप से हटानी चाहिए। दूध पिलाने के बर्तन, पानी के बर्तन और अन्य उपकरणों की नियमित सफाई करनी चाहिए। बीमार बछड़े के उपकरण स्वस्थ बछड़ों के साथ साझा नहीं करने चाहिए।



13. बछड़ों में सामान्य रोग

बछड़ों में कुछ रोग विशेष रूप से सामान्य हैं। इनमें दस्त, निमोनिया, नाभि संक्रमण, रक्त परजीवी संक्रमण और आंतरिक कृमि संक्रमण प्रमुख हैं। इन रोगों की समय पर पहचान और उचित उपचार से गंभीर नुकसान को कम किया जा सकता है।

14. दस्त की समस्या

बछड़ों में दस्त मृत्यु का एक प्रमुख कारण हो सकता है। इसके पीछे संक्रमण, दूषित दूध या पानी, खराब स्वच्छता, अचानक आहार परिवर्तन तथा अन्य कारण हो सकते हैं।

प्रमुख लक्षण

बार-बार पतला मल। कमजोरी। भूख में कमी। आंखों का धंसना। शरीर में पानी की कमी। गंभीर अवस्था में लेट जाना। दस्त होने पर सबसे महत्वपूर्ण बात शरीर में पानी एवं इलेक्ट्रोलाइट की कमी को रोकना है। पशु चिकित्सक की सलाह के अनुसार उचित द्रव एवं उपचार दिया जाना चाहिए।

15. निमोनिया

निमोनिया बछड़ों में श्वसन तंत्र का महत्वपूर्ण रोग है। खराब वेंटिलेशन, नमी, धूल, तापमान में अचानक परिवर्तन और संक्रमण इसके जोखिम को बढ़ा सकते हैं।

लक्षण- खांसी, नाक से स्राव, तेज या कठिन सांस, बुखार, कमजोरी और भूख में कमी दिखाई दे सकती है। ऐसे बछड़े को तुरंत अलग करके पशु चिकित्सक की जांच करानी चाहिए।

16. नाभि संक्रमण

यदि जन्म के बाद नाभि की उचित देखभाल नहीं की जाती तो उसमें संक्रमण हो सकता है। नाभि में सूजन, मवाद, दुर्गंध या दर्द दिखाई दे सकता है। नाभि संक्रमण को गंभीरता से लेना चाहिए क्योंकि संक्रमण शरीर के अन्य हिस्सों तक फैल सकता है।

17. कृमि नियंत्रण

बछड़ों में आंतरिक परजीवी वृद्धि एवं पोषण को प्रभावित कर सकते हैं। इससे वजन बढ़ने की दर कम हो सकती है और बछड़ा कमजोर हो सकता है। कृमिनाशक दवाओं का उपयोग उम्र, वजन, क्षेत्र में प्रचलित परजीवी और पशु चिकित्सक की सलाह के अनुसार किया जाना चाहिए। बिना आवश्यकता बार-बार कृमिनाशक देना उचित नहीं है।

18. बाह्य परजीवी नियंत्रण

जू, किलनी एवं अन्य बाह्य परजीवी बछड़ों के स्वास्थ्य को प्रभावित कर सकते हैं। इनके नियंत्रण के लिए पशु आवास की स्वच्छता तथा पशु चिकित्सक द्वारा अनुशंसित उपचार आवश्यक है।

19. टीकाकरण

बछड़ों में टीकाकरण का कार्यक्रम क्षेत्र, रोग की स्थिति, पशु की उम्र और सरकारी पशु स्वास्थ्य कार्यक्रमों के अनुसार निर्धारित किया जाता है।

पशुपालक को स्थानीय पशु चिकित्सा विभाग द्वारा सुझाए गए टीकाकरण कार्यक्रम का पालन करना चाहिए। प्रत्येक टीके की तारीख का रिकॉर्ड रखना उपयोगी होता है।

20. खनिज एवं विटामिन

बछड़े के उचित विकास के लिए खनिज एवं विटामिन आवश्यक हैं। कैल्शियम, फास्फोरस तथा अन्य आवश्यक सूक्ष्म पोषक तत्व हड्डियों एवं शरीर के सामान्य विकास में योगदान करते हैं। किसी भी खनिज या विटामिन सप्लीमेंट



का उपयोग पशु की आवश्यकता और विशेषज्ञ की सलाह के अनुसार किया जाना चाहिए।

21. बछड़े की वृद्धि की निगरानी

बछड़े के विकास का नियमित मूल्यांकन करना चाहिए। शरीर का वजन, ऊंचाई, शरीर की स्थिति, आहार सेवन और सामान्य व्यवहार की निगरानी से विकास में कमी का प्रारंभिक पता लगाया जा सकता है। यदि बछड़ा अपेक्षित गति से नहीं बढ़ रहा है तो उसके आहार, स्वास्थ्य और आवास की समीक्षा करनी चाहिए।

22. बीमार बछड़े का प्रबंधन

बीमार बछड़े को स्वस्थ बछड़ों से अलग रखना चाहिए। उसे स्वच्छ, सूखे और आरामदायक स्थान पर रखना चाहिए। पानी और आवश्यक पोषण उपलब्ध कराना चाहिए। दवा, एंटीबायोटिक या अन्य उपचार पशु चिकित्सक की सलाह के बिना नहीं करना चाहिए। विशेष रूप से एंटीबायोटिक का अनावश्यक उपयोग रोगाणुरोधी प्रतिरोध की समस्या को बढ़ा सकता है।

23. मौसम के अनुसार देखभाल

गर्मी में- गर्मियों में बछड़े को छायादार एवं हवादार स्थान देना चाहिए। स्वच्छ पानी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होना चाहिए और अत्यधिक गर्मी से बचाव करना चाहिए।

सर्दी में- सर्दियों में बछड़े को ठंडी हवा और नमी से बचाना चाहिए। बिछवन सूखा एवं साफ रखना चाहिए। नवजात बछड़ों में ठंडे तनाव की संभावना अधिक होती है।

वर्षा ऋतु में- बारिश के मौसम में नमी, कीचड़ और संक्रमण का खतरा बढ़ सकता है। इसलिए आवास को सूखा

रखने और कीट नियंत्रण पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

24. बछड़ों में तनाव कम करना

अनावश्यक पकड़ने, डराने या अत्यधिक शोर से बछड़ों में तनाव बढ़ सकता है। शांत वातावरण, उचित आवास और नियमित दिनचर्या उनके स्वास्थ्य एवं विकास के लिए बेहतर होती है।

25. जैव-सुरक्षा

नए पशुओं को सीधे बछड़ों के समूह में शामिल नहीं करना चाहिए। बीमार पशुओं को अलग रखना चाहिए। कर्मचारियों को हाथों की स्वच्छता और उपकरणों की सफाई का ध्यान रखना चाहिए।

फार्म पर बाहर से आने वाले लोगों एवं वाहनों की आवाजाही को भी नियंत्रित करना उपयोगी है।

26. रिकॉर्ड रखने का महत्व

प्रत्येक बछड़े के लिए जन्म तिथि, माता-पिता की पहचान, जन्म के समय की स्थिति, खीस सेवन, टीकाकरण, कृमिनाशन, रोग इतिहास, वजन और वृद्धि से संबंधित रिकॉर्ड रखना चाहिए। यह जानकारी भविष्य में पशु के प्रजनन और उत्पादन संबंधी निर्णय लेने में उपयोगी होती है।

27. वैज्ञानिक बछड़ा पालन के आर्थिक लाभ

वैज्ञानिक देखभाल से बछड़ा मृत्यु दर कम करने, वृद्धि दर सुधारने और भविष्य में पहली बार प्रजनन की उम्र को बेहतर तरीके से प्रबंधित करने में सहायता मिलती है। स्वस्थ मादा बछड़ा भविष्य में अच्छी दुग्ध उत्पादक गाय बन सकती है। इस प्रकार बछड़ा पालन पर किया गया खर्च वास्तव में भविष्य के उत्पादक पशुधन में निवेश है।

28. पशुपालक की भूमिका

बछड़ों के स्वास्थ्य प्रबंधन में पशुपालक की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। उसे प्रतिदिन बछड़े के व्यवहार, भूख, मल, सांस, शरीर की स्थिति और वृद्धि पर नजर रखनी चाहिए। किसी भी असामान्यता की स्थिति में तुरंत पशु चिकित्सक से संपर्क करना चाहिए।

29. निष्कर्ष

बछड़े की वैज्ञानिक देखभाल स्वस्थ और उत्पादक पशुधन की नींव है। जन्म के तुरंत बाद उचित देखभाल, समय पर और पर्याप्त खीस, नाभि की स्वच्छता, संतुलित पोषण, स्वच्छ पानी, उचित आवास, टीकाकरण, परजीवी नियंत्रण और नियमित स्वास्थ्य निरीक्षण बछड़े के बेहतर विकास के लिए आवश्यक हैं। दस्त और निमोनिया जैसे रोगों की समय पर पहचान एवं प्रबंधन से मृत्यु दर को कम किया जा सकता है। आधुनिक डेयरी फार्मिंग में बछड़े को भविष्य की उत्पादक संपत्ति मानकर उसके स्वास्थ्य एवं पोषण पर विशेष ध्यान देना चाहिए। वैज्ञानिक बछड़ा पालन अपनाकर पशुपालक स्वस्थ, मजबूत और अधिक उत्पादक पशुधन तैयार कर सकता है।



✍ **एजाज़ अहमद बी.एससी. (ऑनर्स)**
कृषि, एम.एससी. कृषि — मृदा विज्ञान एवं
कृषि रसायन विज्ञान, कृषि प्राविधिक सहायक
कृषि विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार

सारांश

मृदा कृषि उत्पादन का मूल आधार है। स्वस्थ एवं उर्वर मृदा में पौधों की वृद्धि के लिए आवश्यक पोषक तत्व, जल, वायु तथा सूक्ष्मजीवी गतिविधियां संतुलित रूप से उपलब्ध रहती हैं। लगातार एक ही फसल उगाने, रासायनिक उर्वरकों के असंतुलित उपयोग, जैविक पदार्थों की कमी, मृदा अपरदन, लवणता तथा अनुचित सिंचाई जैसी समस्याओं के कारण मृदा स्वास्थ्य में गिरावट आ रही है। मृदा स्वास्थ्य केवल उपलब्ध पोषक तत्वों तक सीमित नहीं है, बल्कि इसमें मृदा की भौतिक, रासायनिक और जैविक गुणवत्ता भी शामिल होती है। मृदा परीक्षण, संतुलित उर्वरक प्रयोग, जैविक खाद, हरी खाद, फसल चक्र, फसल अवशेष प्रबंधन, सूक्ष्म पोषक तत्वों का उचित उपयोग तथा समेकित पोषक तत्व प्रबंधन द्वारा मृदा की उर्वरता को लंबे समय तक बनाए रखा जा सकता है। प्रस्तुत लेख में मृदा स्वास्थ्य एवं उर्वरता के प्रमुख घटकों, समस्याओं, परीक्षण एवं सुधार की वैज्ञानिक विधियों तथा टिकाऊ फसल उत्पादन में इसकी भूमिका का विस्तृत वर्णन किया गया है।

प्रमुख शब्द- मृदा स्वास्थ्य, मृदा उर्वरता, मृदा परीक्षण, जैविक कार्बन, पोषक तत्व, उर्वरक प्रबंधन, फसल उत्पादन।

1. भूमिका

कृषि की सफलता का आधार अच्छी गुणवत्ता वाली मृदा है। पौधों को आवश्यक पोषक तत्व उपलब्ध कराने के साथ-साथ मृदा जड़ों को सहारा देती है, जल का भंडारण करती है और सूक्ष्मजीवों के लिए अनुकूल वातावरण प्रदान करती है। इसलिए मृदा को केवल पौधे उगाने वाला माध्यम नहीं, बल्कि एक जीवंत प्राकृतिक संसाधन माना जाना चाहिए।

कृषि भूमि पर बढ़ती जनसंख्या की खाद्य आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए लगातार उत्पादन लेना पड़ता है। यदि उत्पादन के साथ मृदा की उर्वरता की भरपाई नहीं की जाती, तो समय के साथ पोषक तत्वों की कमी, जैविक कार्बन में गिरावट, मृदा संरचना का खराब होना और अन्य समस्याएं उत्पन्न हो सकती हैं।

2. मृदा स्वास्थ्य का अर्थ

मृदा स्वास्थ्य से आशय मृदा की उस क्षमता से है जिसके द्वारा वह किसी पारिस्थितिकी तंत्र के भीतर पौधों की वृद्धि, जल की गुणवत्ता, जैव विविधता तथा अन्य

फसल उत्पादन में मृदा स्वास्थ्य एवं उर्वरता प्रबंधन का महत्व

महत्वपूर्ण कार्यों को लंबे समय तक बनाए रख सके।

स्वस्थ मृदा में—

अच्छी संरचना होती है।

पर्याप्त जल धारण क्षमता होती है।

पौधों के लिए आवश्यक पोषक तत्व उपलब्ध होते हैं।

लाभकारी सूक्ष्मजीव सक्रिय रहते हैं।

जैविक पदार्थ पर्याप्त मात्रा में होता है।

जल एवं वायु का उचित संतुलन रहता है।

प्रबंधन, संरचना और सूक्ष्मजीवी गतिविधियों का संरक्षण भी आवश्यक है।

5. मृदा स्वास्थ्य के प्रमुख घटक

5.1 भौतिक गुण

मृदा की बनावट, संरचना, घनत्व, छिद्रता, जल धारण क्षमता और जल निकास जैसे गुण पौधों की वृद्धि को प्रभावित करते हैं।

5.2 रासायनिक गुण

मृदा का pH, विद्युत चालकता, जैविक कार्बन तथा विभिन्न पोषक तत्वों की उपलब्धता इसके रासायनिक स्वास्थ्य को निर्धारित करती है।

5.3 जैविक गुण

मृदा में बैक्टीरिया, फफूंद, एक्टिनोमाइसीट्स, केंचुए और अन्य जीव पाए जाते हैं। ये जैविक पदार्थों के अपघटन, पोषक तत्वों के चक्रण तथा मृदा संरचना के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

6. मृदा स्वास्थ्य में जैविक कार्बन का महत्व

मृदा जैविक कार्बन मृदा स्वास्थ्य का एक महत्वपूर्ण संकेतक है। जैविक पदार्थ मृदा की जल धारण क्षमता, संरचना और सूक्ष्मजीवी गतिविधि में सुधार करता है।

जैविक कार्बन बढ़ाने के लिए—

गोबर की सड़ी खाद का प्रयोग,
कम्पोस्ट,
वर्मी कम्पोस्ट,
हरी खाद,
फसल अवशेषों को मृदा में मिलाना,
फसल चक्र,
संरक्षण कृषि
जैसी विधियां अपनाई जा सकती हैं।

7. मृदा स्वास्थ्य में गिरावट के प्रमुख कारण

मृदा स्वास्थ्य प्रभावित होने के प्रमुख कारण हैं—

असंतुलित रासायनिक उर्वरक प्रयोग।
जैविक खाद का कम उपयोग।
एक ही फसल की लगातार खेती।
अत्यधिक जुताई।
फसल अवशेषों को जलाना।



जड़ों के विकास के लिए उपयुक्त वातावरण मिलता है।

3. मृदा उर्वरता क्या है?

मृदा उर्वरता का अर्थ मृदा की वह क्षमता है जिसके द्वारा वह पौधों को उनकी वृद्धि एवं विकास के लिए आवश्यक पोषक तत्व उचित मात्रा और उपलब्ध रूप में प्रदान कर सके।

नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटैशियम के साथ-साथ सल्फर, जिंक, आयरन, बोरॉन, मैंगनीज, कॉपर और मोलिब्डेनम जैसे सूक्ष्म एवं द्वितीयक पोषक तत्व भी फसल उत्पादन में महत्वपूर्ण हैं।

4. मृदा स्वास्थ्य और मृदा उर्वरता में अंतर

मृदा उर्वरता मुख्य रूप से पोषक तत्वों की उपलब्धता से संबंधित है, जबकि मृदा स्वास्थ्य का दायरा अधिक व्यापक है। मृदा स्वास्थ्य में भौतिक, रासायनिक और जैविक गुणों के साथ-साथ मृदा की उत्पादन क्षमता और पर्यावरणीय कार्य भी शामिल होते हैं।

इसलिए केवल अधिक उर्वरक डालने से मृदा स्वस्थ नहीं बनती। संतुलित पोषण के साथ जैविक पदार्थ, जल



मृदा अपरदन।
अत्यधिक सिंचाई।
खराब जल निकास।
लवणता एवं क्षारीयता।
सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी।

8. मृदा परीक्षण का महत्व

मृदा परीक्षण वैज्ञानिक उर्वरक प्रबंधन का आधार है। बिना परीक्षण के लगातार अनुमान के आधार पर उर्वरक डालने से कुछ पोषक तत्व अधिक और कुछ कम हो सकते हैं।

मृदा परीक्षण से मृदा के श्ल, जैविक कार्बन, उपलब्ध नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटैशियम तथा आवश्यकतानुसार अन्य पोषक तत्वों की स्थिति का पता लगाया जा सकता है।

9. संतुलित उर्वरक प्रबंधन

फसल को केवल नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटैशियम की ही आवश्यकता नहीं होती। द्वितीयक एवं सूक्ष्म पोषक तत्व भी आवश्यक हैं।

इसलिए उर्वरकों का प्रयोग—

मृदा परीक्षण,
फसल की आवश्यकता,
पिछली फसल,
सिंचाई की उपलब्धता,
अपेक्षित उत्पादन
के आधार पर करना चाहिए।

10. जैविक खादों की भूमिका

गोबर की सड़ी खाद, कम्पोस्ट और वर्मी कम्पोस्ट मृदा में जैविक पदार्थ बढ़ाने के साथ-साथ पोषक तत्वों की उपलब्धता में योगदान देते हैं।

जैविक खाद का उपयोग मृदा की संरचना और सूक्ष्मजीवी गतिविधि को बेहतर बनाने में भी सहायक है।

11. हरी खाद

हरी खाद मृदा में जैविक पदार्थ और पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ाने की प्रभावी विधि है। ढ़ँचा जैसी फसलों को हरी खाद के रूप में उगाकर उचित अवस्था में मृदा में मिलाया जा सकता है।

इससे मृदा में जैविक पदार्थ बढ़ता है और नाइट्रोजन की आपूर्ति में सहायता मिलती है।

12. फसल चक्र का महत्व

लगातार एक ही फसल लेने से विशिष्ट पोषक तत्वों का अधिक दोहन हो सकता है और कुछ रोग-कीटों की समस्या बढ़ सकती है। फसल चक्र अपनाने से विभिन्न फसलों की पोषक तत्वों की आवश्यकताओं में संतुलन स्थापित किया जा सकता है।

दलहनी फसलों को फसल चक्र में शामिल करने से

जैविक नाइट्रोजन स्थिरीकरण में भी सहायता मिलती है।

13. फसल अवशेष प्रबंधन

फसल कटाई के बाद बचे अवशेषों को जलाने के बजाय उचित विधि से प्रबंधित करना चाहिए। अवशेषों को काटकर मृदा में मिलाना, कम्पोस्ट बनाना या मलच के रूप में उपयोग करना मृदा स्वास्थ्य के लिए लाभकारी हो सकता है।

फसल अवशेष मृदा में जैविक कार्बन बढ़ाने में योगदान करते हैं।

14. सूक्ष्म पोषक तत्वों का प्रबंधन

जिंक, आयरन, बोरॉन, मैंगनीज और अन्य सूक्ष्म पोषक तत्व कम मात्रा में आवश्यक होते हैं, लेकिन इनकी कमी से फसल उत्पादन एवं गुणवत्ता प्रभावित हो सकती है। सूक्ष्म पोषक तत्वों का प्रयोग मृदा परीक्षण एवं फसल की आवश्यकता के आधार पर करना चाहिए।

15. मृदा pH का महत्व

मृदा का pH पोषक तत्वों की उपलब्धता को प्रभावित करता है। अत्यधिक अम्लीय या क्षारीय मृदा में कुछ



पोषक तत्व पौधों को पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध नहीं हो पाते। अम्लीय मृदा में आवश्यकता के अनुसार चूना तथा क्षारीय/सोडिक मृदा में सुधारात्मक उपाय अपनाए जा सकते हैं। इनका प्रयोग मृदा परीक्षण एवं विशेषज्ञ की सलाह के अनुसार करना चाहिए।

16. जल प्रबंधन

अत्यधिक सिंचाई से पोषक तत्वों का रिसाव, जलभराव और कुछ क्षेत्रों में लवणता जैसी समस्याएं बढ़ सकती हैं। वहीं कम पानी से फसल की वृद्धि प्रभावित होती है। फसल की आवश्यकता और मृदा की स्थिति के अनुसार सिंचाई करना चाहिए। ड्रिप, स्प्रींकलर तथा अन्य दक्ष सिंचाई प्रणालियां पानी बचाने में सहायक हो सकती हैं।

17. संरक्षण कृषि

न्यूनतम जुताई, मृदा आवरण बनाए रखना और फसल विविधता संरक्षण कृषि के प्रमुख सिद्धांत हैं। इससे मृदा अपरदन कम करने, जैविक पदार्थ बनाए रखने और

जल संरक्षण में सहायता मिल सकती है।

18. मृदा अपरदन की रोकथाम

जल एवं वायु द्वारा मृदा की ऊपरी उपजाऊ परत का हटना मृदा अपरदन कहलाता है। इसके नियंत्रण के लिए—

मेड़बंदी,
समोच्च खेती,
घास पट्टी,
मल्लिचंग,
आवरण फसल,
वृक्षारोपण
जैसी विधियां उपयोगी हैं।

19. एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन

एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन में रासायनिक उर्वरकों के साथ जैविक एवं जैव उर्वरकों का संतुलित उपयोग किया जाता है। इसका उद्देश्य फसल की पोषक आवश्यकताओं को पूरा करने के साथ मृदा की दीर्घकालीन उर्वरता बनाए रखना है।

20. जैव उर्वरकों की भूमिका

राइजोबियम, एजोटोबैक्टर, एजोस्फिरिलम, फास्फेट घुलनशील सूक्ष्मजीव तथा अन्य उपयोगी जैव उर्वरक पोषक तत्वों की उपलब्धता में सहायता कर सकते हैं।

इनका प्रयोग उपयुक्त फसल, मृदा एवं अनुशंसित विधि के अनुसार करना चाहिए।

21. मृदा स्वास्थ्य कार्ड एवं वैज्ञानिक प्रबंधन

मृदा परीक्षण के आधार पर तैयार मृदा स्वास्थ्य संबंधी जानकारी किसानों को उर्वरक प्रबंधन के लिए वैज्ञानिक आधार प्रदान करती है। इससे किसान अनावश्यक उर्वरक खर्च को कम करने और आवश्यक पोषक तत्वों की पूर्ति करने की दिशा में बेहतर निर्णय ले सकता है।

22. निष्कर्ष

मृदा स्वास्थ्य और उर्वरता का संरक्षण टिकाऊ कृषि उत्पादन के लिए अनिवार्य है। स्वस्थ मृदा ही लंबे समय तक अच्छी फसल, बेहतर जल उपयोग और पोषक तत्वों की प्रभावी उपलब्धता सुनिश्चित कर सकती है। मृदा परीक्षण आधारित उर्वरक प्रबंधन, जैविक खाद, हरी खाद, फसल चक्र, फसल अवशेष प्रबंधन, जैव उर्वरक, संतुलित रासायनिक उर्वरक और उचित जल प्रबंधन को एकीकृत रूप से अपनाना चाहिए। किसानों को मृदा को केवल उत्पादन का साधन नहीं बल्कि एक जीवंत प्राकृतिक संसाधन मानकर उसका संरक्षण करना चाहिए। इससे उत्पादन लागत कम करने, उत्पादकता बनाए रखने और कृषि को दीर्घकाल तक टिकाऊ बनाने में सहायता मिलेगी।

संदर्भ हेतु—भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (ICAR), कृषि एवं किसान कल्याण विभाग, भारत सरकार तथा मृदा स्वास्थ्य एवं उर्वरक प्रबंधन संबंधी कृषि विश्वविद्यालयों की अनुशंसाएं।



जलवायु परिवर्तन के प्रभाव में फसल उत्पादन एवं कृषि प्रबंधन की रणनीतियाँ

✍ **मनीष यादव** पीएच.डी. (शस्य विज्ञान)
कृषि महाविद्यालय, उम्मेदराज-कोटा, राजस्थान
कृषि विश्वविद्यालय, कोटा, (राजस्थान)

✍ **किरण मीणा** पीएच.डी. शोधार्थी,
कृषि विज्ञान (एग्रोनॉमी) कृषि
विश्वविद्यालय, कोटा (राजस्थान)

सारांश: जलवायु परिवर्तन वर्तमान समय में कृषि एवं खाद्य सुरक्षा के लिए एक गंभीर चुनौती बनकर उभर रहा है। कृषि उत्पादन सीधे तौर पर तापमान, वर्षा, आर्द्रता, सौर विकिरण, हवा तथा अन्य मौसमीय परिस्थितियों पर निर्भर करता है। तापमान में वृद्धि, मानसूनी वर्षा में अनियमितता, लंबे समय तक सूखा, अचानक अत्यधिक वर्षा, बाढ़, जलभराव, लू, पाला तथा ओलावृष्टि जैसी घटनाएं फसल की वृद्धि, विकास, उत्पादकता और गुणवत्ता को प्रभावित कर रही हैं। इसके साथ ही बदलती जलवायु के कारण कीट एवं रोगों की जीवन-चक्र, प्रजनन क्षमता तथा वितरण क्षेत्र में भी परिवर्तन देखा जा सकता है। ऐसी परिस्थितियों में पारंपरिक कृषि पद्धतियों के साथ-साथ जलवायु-स्मार्ट कृषि, संरक्षण कृषि, फसल विविधीकरण, जलवायु-सहिष्णु किस्मों, मृदा स्वास्थ्य प्रबंधन, कुशल सिंचाई, संतुलित पोषक तत्व प्रबंधन, एकीकृत कीट प्रबंधन तथा मौसम आधारित कृषि सलाह को अपनाना आवश्यक है। प्रस्तुत लेख में जलवायु परिवर्तन का फसल उत्पादन पर प्रभाव, कृषि क्षेत्र की प्रमुख चुनौतियों तथा किसानों के लिए वैज्ञानिक एवं व्यावहारिक कृषि प्रबंधन रणनीतियों का विस्तृत विवेचन किया गया है।

मुख्य शब्द: जलवायु परिवर्तन, फसल उत्पादन, जलवायु-स्मार्ट कृषि, मृदा स्वास्थ्य, जल प्रबंधन, फसल विविधीकरण, संरक्षण कृषि, कीट प्रबंधन, कृषि अनुकूलन।

1. प्रस्तावना: कृषि मानव जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं—भोजन, चारा, रेशा तथा अनेक औद्योगिक कच्चे पदार्थों—की पूर्ति करने वाला प्रमुख क्षेत्र है। भारत जैसे कृषि प्रधान देश में करोड़ों लोगों की आजीविका प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कृषि पर निर्भर है। कृषि की उत्पादकता और स्थिरता मुख्य रूप से प्राकृतिक संसाधनों तथा मौसम की परिस्थितियों पर निर्भर करती है। इसलिए जलवायु में होने वाला कोई भी महत्वपूर्ण परिवर्तन कृषि व्यवस्था को प्रभावित कर सकता है। वर्तमान समय में पृथ्वी के औसत तापमान में वृद्धि, वर्षा के स्वरूप में बदलाव तथा चरम मौसमीय घटनाओं की बढ़ती अनिश्चितता ने कृषि के सामने नई चुनौतियाँ उत्पन्न की हैं। किसी वर्ष सामान्य से कम वर्षा होने पर सूखे की स्थिति उत्पन्न हो सकती है, जबकि थोड़े समय में अत्यधिक वर्षा होने से खेतों में जलभराव एवं बाढ़ की समस्या पैदा हो सकती है। इसी प्रकार तापमान में अचानक वृद्धि फसलों के फूल आने और दाना भरने की अवस्थाओं को प्रभावित कर सकती है। जलवायु परिवर्तन का प्रभाव केवल फसल उत्पादन तक सीमित नहीं है। यह मृदा की नमी,

भूजल, कीट एवं रोग, खरपतवार, कृषि लागत, श्रम की उपलब्धता, पशुधन तथा किसान की आय को भी प्रभावित कर सकता है। इसलिए कृषि को जलवायु परिवर्तन के अनुरूप ढालना आज की महत्वपूर्ण आवश्यकता है।

कृषि क्षेत्र को ऐसी उत्पादन प्रणाली की ओर ले जाना आवश्यक है जो प्रतिकूल जलवायु परिस्थितियों में भी उत्पादन बनाए रख सके, प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण करे और किसान की आय को स्थिर रखने में सहायता करे। इसी उद्देश्य से जलवायु-स्मार्ट कृषि एवं जलवायु अनुकूलन आधारित कृषि प्रबंधन का महत्व तेजी से बढ़ रहा है।

2. जलवायु परिवर्तन का अर्थ— जलवायु परिवर्तन से आशय लंबे समय में किसी क्षेत्र या पृथ्वी की जलवायु के औसत स्वरूप में होने वाले महत्वपूर्ण बदलाव से है। इसमें तापमान, वर्षा, आर्द्रता, हवा, मौसमी अवधि तथा चरम



मौसमीय घटनाओं की आवृत्ति एवं तीव्रता में परिवर्तन शामिल हो सकते हैं। मौसम और जलवायु में अंतर समझना आवश्यक है। मौसम किसी स्थान पर कुछ घंटों या दिनों की वायुमंडलीय स्थिति को दर्शाता है, जबकि जलवायु लंबे समय की औसत मौसमीय परिस्थितियों का स्वरूप है। कृषि के संदर्भ में जलवायु परिवर्तन का महत्व इसलिए अधिक है क्योंकि प्रत्येक फसल की वृद्धि के लिए तापमान, पानी और अन्य पर्यावरणीय कारकों की एक उपयुक्त सीमा होती है। इस सीमा में परिवर्तन होने पर फसल की उत्पादकता प्रभावित हो सकती है।

3. जलवायु परिवर्तन और फसल उत्पादन का संबंध फसल के जीवन चक्र में कई महत्वपूर्ण अवस्थाएं होती हैं, जैसे— बीज अंकुरण * पौध स्थापना * वानस्पतिक वृद्धि * पुष्पन * परागण * दाना/फल निर्माण * पकना।

इन सभी अवस्थाओं पर तापमान एवं जल उपलब्धता का प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के लिए, यदि किसी फसल में फूल आने के समय अत्यधिक तापमान हो जाए तो परागण एवं फल/दाना बनने की प्रक्रिया प्रभावित हो सकती है। इसी प्रकार यदि दाना भरने के समय पौधे को पर्याप्त पानी न मिले तो दाने का आकार एवं वजन कम हो सकता है। इस प्रकार जलवायु परिवर्तन फसल की वृद्धि अवधि, जैवभार, उपज, गुणवत्ता और उत्पादन लागत को प्रभावित कर सकता है।

4. फसल उत्पादन पर बढ़ते तापमान का प्रभाव

बढ़ता तापमान जलवायु परिवर्तन की प्रमुख चिंताओं में से एक है। प्रत्येक फसल की एक न्यूनतम, उपयुक्त और अधिकतम तापमान सीमा होती है।

तापमान में वृद्धि होने पर— पौधों की श्वसन दर बढ़ सकती है। प्रकाश संश्लेषण प्रभावित हो सकता है। वाष्पोत्सर्जन बढ़ सकता है। मिट्टी की नमी तेजी से कम हो सकती है। फसल की परिपक्वता अवधि घट सकती है। फूल एवं फल बनने की प्रक्रिया प्रभावित हो सकती है। दाना भरने की अवधि कम हो सकती है। विशेष रूप से गेहूँ जैसी रबी फसलों में अंतिम अवस्था का अधिक तापमान उत्पादन को प्रभावित कर सकता है। इसी प्रकार सब्जियों एवं फलदार फसलों में अत्यधिक तापमान से फूल एवं फल की गुणवत्ता प्रभावित हो सकती है।

5. वर्षा में अनियमितता का प्रभाव— भारत की कृषि का एक बड़ा हिस्सा वर्षा पर निर्भर करता है। मानसून का समय, मात्रा और वितरण फसल उत्पादन के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है।

वर्षा में निम्न प्रकार के परिवर्तन कृषि को प्रभावित कर सकते हैं—

मानसून के आगमन में देरी, मानसून का जल्दी समाप्त होना, लंबे समय तक वर्षा का अभाव, कम अवधि में अत्यधिक वर्षा, वर्षा का असमान वितरण, असामयिक वर्षा। यदि बुवाई के समय पर्याप्त वर्षा न हो तो किसान को बुवाई में देरी करनी पड़ सकती है। दूसरी ओर बुवाई के तुरंत बाद अत्यधिक वर्षा होने पर बीज एवं पौधों को नुकसान हो सकता है।

6. सूखे की समस्या— सूखा कृषि उत्पादन के लिए सबसे गंभीर जलवायु जोखिमों में से एक है। लंबे समय तक वर्षा की कमी होने पर मिट्टी में उपलब्ध नमी कम हो जाती है।

सूखे का प्रभाव— बीज अंकुरण में कमी, पौध वृद्धि में रुकावट, पत्तियों का मुरझाना, प्रकाश संश्लेषण में कमी, फूल एवं फल निर्माण में कमी, दाना भरने में कमी, उत्पादन में गिरावट के रूप में दिखाई दे सकता है। सूखे की स्थिति में किसान को ऐसी फसलों एवं किस्मों का चयन करना चाहिए जिन्हें कम पानी में उगाया जा सके।

7. बाढ़ एवं जलभराव का प्रभाव— दूसरी ओर अत्यधिक वर्षा से बाढ़ और जलभराव की स्थिति उत्पन्न हो सकती है। जलभराव में मिट्टी के वायु स्थान पानी से भर जाते हैं और जड़ों को पर्याप्त ऑक्सीजन नहीं मिल पाती।

इससे—

जड़ों की वृद्धि प्रभावित होती है, पोषक तत्वों का अवशोषण कम हो सकता है, जड़ सड़न की समस्या बढ़ सकती है, पौधे पीले पड़ सकते हैं, रोगों का प्रकोप बढ़ सकता है। इसलिए वर्षा आधारित कृषि क्षेत्रों में उचित जल निकास व्यवस्था अत्यंत आवश्यक है।

8. लू, पाला और चरम मौसमीय घटनाएं— जलवायु परिवर्तन के कारण चरम मौसमीय घटनाओं की अनिश्चितता



कृषि जोखिम को बढ़ा सकती है।

लू- अत्यधिक तापमान की अवधि में पौधों में जल तनाव बढ़ जाता है। इससे फूल, फल और दाना निर्माण प्रभावित हो सकता है।

पाला- रबी फसलों एवं सब्जियों में पाला कोशिकाओं को नुकसान पहुंचा सकता है।

ओलावृष्टि- ओलावृष्टि से पौधों की पत्तियां, शाखाएं, फल एवं बालियां क्षतिग्रस्त हो सकती हैं।

तेज हवा एवं चक्रवात- तेज हवा से फसल गिर सकती है तथा फलदार पौधों और खड़ी फसलों को नुकसान हो सकता है। इन घटनाओं के लिए पूर्व चेतावनी एवं जोखिम प्रबंधन आवश्यक है।

9. जलवायु परिवर्तन का कीट एवं रोगों पर प्रभाव
जलवायु परिवर्तन केवल फसल को प्रत्यक्ष रूप से ही प्रभावित नहीं करता बल्कि कीट एवं रोगों के व्यवहार में भी परिवर्तन ला सकता है।

तापमान, आर्द्रता और वर्षा में परिवर्तन से कुछ कीटों की— प्रजनन क्षमता, जीवन चक्र, पीढ़ियों की संख्या, सक्रियता, भौगोलिक वितरण प्रभावित हो सकते हैं। इसी प्रकार अनुकूल तापमान एवं आर्द्रता में कुछ रोगों का संक्रमण बढ़ सकता है। इसलिए बदलती जलवायु में फसल की नियमित निगरानी तथा एकीकृत कीट एवं रोग प्रबंधन अत्यंत आवश्यक है।

10. जलवायु-सहिष्णु फसल किस्मों का चयन
जलवायु परिवर्तन से निपटने के लिए उपयुक्त किस्मों का चयन सबसे प्रभावी उपायों में से एक है। किसानों को स्थानीय कृषि-जलवायु परिस्थितियों के अनुसार निम्न गुणों वाली किस्मों को प्राथमिकता देनी चाहिए—

सूखा सहनशीलता, ताप सहनशीलता, जलभराव सहनशीलता, लवणता सहनशीलता, रोग एवं कीट प्रतिरोध, कम अवधि में पकने की क्षमता, बेहतर जल उपयोग दक्षता। कम अवधि वाली किस्में विशेष रूप से उन परिस्थितियों में उपयोगी हो सकती हैं जहां फसल अवधि के दौरान जल उपलब्धता सीमित हो।

11. फसल विविधीकरण की रणनीति- किसी एक फसल पर अत्यधिक निर्भरता किसान के जोखिम को बढ़ा सकती है। इसलिए फसल विविधीकरण जलवायु अनुकूलन का महत्वपूर्ण उपाय है।

किसान अपने क्षेत्र की परिस्थितियों के अनुसार अनाज के साथ— दलहन, तिलहन, सब्जियां, फल, चारा फसलों को शामिल कर सकता है। फसल विविधीकरण से किसान को एक से अधिक स्रोतों से आय प्राप्त करने का अवसर मिलता है और किसी एक फसल की विफलता का प्रभाव कम हो सकता है।

12. फसल चक्र का महत्व- एक ही फसल को लगातार आने से मिट्टी में पोषक तत्वों का असंतुलन तथा कुछ कीट एवं रोगों की समस्या बढ़ सकती है।

फसल चक्र में अलग-अलग फसलों को क्रम से उगाया जाता है। इसमें दलहनी फसलों को शामिल करने से मृदा की उर्वरता प्रबंधन में सहायता मिल सकती है।

फसल चक्र के लाभ— मृदा स्वास्थ्य में सुधार, कीट

एवं रोग चक्र में व्यवधान, खरपतवार नियंत्रण में सहायता, पोषक तत्वों के बेहतर उपयोग, उत्पादन जोखिम में कमी।

13. जल संरक्षण एवं कुशल सिंचाई- जलवायु परिवर्तन के दौर में पानी सबसे महत्वपूर्ण कृषि संसाधनों में से एक है। इसलिए प्रति बूंद अधिक उत्पादन की अवधारणा को बढ़ावा देना आवश्यक है।

ड्रिप सिंचाई- ड्रिप सिंचाई में पानी को पौधे के जड़ क्षेत्र के पास नियंत्रित मात्रा में पहुंचाया जाता है।

स्प्रिंकलर सिंचाई- स्प्रिंकलर द्वारा पानी वर्षा की तरह वितरित किया जाता है और कई फसलों में इसका उपयोग किया जा सकता है।

वर्षा जल संचयन- खेत तालाब, मेड़बंदी और अन्य जल संरक्षण संरचनाओं द्वारा वर्षा जल को संग्रहित किया जा सकता है।

सिंचाई का समय- फसल की अवस्था, मिट्टी की नमी



और मौसम पूर्वानुमान के आधार पर सिंचाई करने से पानी की बचत हो सकती है।

14. मल्लिचंग द्वारा नमी संरक्षण

मल्लिचंग में मिट्टी की सतह को जैविक या अन्य उपयुक्त सामग्री से ढका जाता है। फसल अवशेषों का उपयोग मल्लिचंग के रूप में करने से— वाष्पीकरण कम हो सकता है, मिट्टी की नमी बनी रह सकती है, मिट्टी का तापमान नियंत्रित हो सकता है, खरपतवारों की वृद्धि कम हो सकती है, मृदा कटाव कम हो सकता है। जल संकट वाले क्षेत्रों में मल्लिचंग एक उपयोगी तकनीक है।

15. संरक्षण कृषि की भूमिका- संरक्षण कृषि जलवायु अनुकूल कृषि व्यवस्था का महत्वपूर्ण हिस्सा है। इसके प्रमुख सिद्धांत हैं— मृदा की न्यूनतम जुताई एवं कम से कम व्यवधान, मिट्टी की सतह पर पर्याप्त आवरण, फसल विविधीकरण। फसल अवशेषों को खेत में रखने से मिट्टी की नमी संरक्षित हो सकती है और मृदा कटाव कम हो सकता है। संरक्षण कृषि लंबे समय में मृदा स्वास्थ्य को बनाए रखने में सहायक हो सकती है।

16. मृदा स्वास्थ्य प्रबंधन- स्वस्थ मिट्टी जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। अच्छी संरचना वाली मिट्टी अधिक पानी धारण करने में सक्षम होती है।

मृदा स्वास्थ्य बनाए रखने के लिए— नियमित मृदा परीक्षण, जैविक खाद, कम्पोस्ट, वर्मी कम्पोस्ट, हरी खाद, फसल अवशेष, उचित फसल चक्र को अपनाया जा सकता है। मृदा में जैविक पदार्थ बढ़ने से मिट्टी की संरचना, जल धारण क्षमता तथा जैविक गतिविधियों में सुधार हो सकता

है।

17. संतुलित पोषक तत्व प्रबंधन- फसल को केवल नाइट्रोजन की आवश्यकता नहीं होती। नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटैश के साथ-साथ सल्फर और सूक्ष्म पोषक तत्व भी फसल के लिए आवश्यक हैं।

मृदा परीक्षण आधारित उर्वरक प्रबंधन अपनाया चाहिए। उर्वरकों का उपयोग— सही स्रोत + सही मात्रा + सही समय + सही स्थान के सिद्धांत पर किया जाना चाहिए। संतुलित पोषण से पौधों की वृद्धि एवं संसाधन उपयोग दक्षता में सुधार हो सकता है।

18. एकीकृत कीट प्रबंधन- बदलती जलवायु में कीटों के व्यवहार में परिवर्तन की संभावना को देखते हुए नियमित खेत निगरानी आवश्यक है।

एकीकृत कीट प्रबंधन में— स्वस्थ बीज, प्रतिरोधी किस्म, फसल चक्र, समय पर बुवाई, खेत की निगरानी, फेरोमोन ट्रैप, प्रकाश प्रपंच, चिपचिपे प्रपंच, जैविक नियंत्रण, आवश्यकता आधारित रासायनिक नियंत्रण का समन्वित उपयोग किया जाता है। कीटनाशकों का उपयोग आर्थिक क्षति स्तर तथा अनुशंसित मात्रा के अनुसार करना चाहिए।

19. खरपतवार प्रबंधन- तापमान और वर्षा में परिवर्तन से खरपतवारों की वृद्धि एवं वितरण भी प्रभावित हो सकता है।

खरपतवार नियंत्रण के लिए— समय पर निराई, उचित फसल घनत्व, फसल चक्र, मल्लिचंग, यांत्रिक नियंत्रण, आवश्यकता आधारित खरपतवारनाशी का उपयोग किया जा सकता है। एक ही खरपतवारनाशी पर लगातार निर्भरता से बचना चाहिए तथा अनुशंसित तकनीकी सलाह का पालन करना चाहिए।

20. मौसम आधारित कृषि प्रबंधन- कृषि निर्णयों में मौसम पूर्वानुमान का उपयोग जलवायु जोखिम को कम करने में सहायक हो सकता है।

किसान मौसम की जानकारी के आधार पर— बुवाई का समय, सिंचाई, उर्वरक उपयोग, कीटनाशक छिड़काव, कटाई, फसल संरक्षण की योजना बना सकता है। उदाहरण के लिए यदि अगले कुछ दिनों में भारी वर्षा की संभावना हो तो किसान सिंचाई को स्थगित कर सकता है और कटाई योग्य फसल को समय से काटने की योजना बना सकता है।

21. कृषि में डिजिटल तकनीकों की भूमिका- आधुनिक डिजिटल तकनीकें जलवायु परिवर्तन से निपटने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं।

रिमोट सेंसिंग- उपग्रह चित्रों के माध्यम से फसल की स्थिति एवं क्षेत्रीय परिस्थितियों का आकलन किया जा सकता है।

ड्रोन- ड्रोन द्वारा खेत की निगरानी, पौधों की स्थिति का आकलन तथा आवश्यकता आधारित कृषि कार्यों में सहायता मिल सकती है।

सेंसर तकनीक- मृदा नमी सेंसर के माध्यम से सिंचाई के निर्णय को अधिक सटीक बनाया जा सकता है।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता- AI आधारित प्रणालियां मौसम,



मृदा एवं फसल संबंधी डेटा के विश्लेषण में उपयोगी हो सकती हैं।

22. कृषि वानिकी की भूमिका- कृषि वानिकी में खेतों में फसलों के साथ उपयुक्त वृक्षों का समावेश किया जाता है। यह जलवायु अनुकूलन की उपयोगी रणनीति हो सकती है।

वृक्ष— मृदा कटाव कम कर सकते हैं, हवा की गति कम कर सकते हैं, जैव विविधता को बढ़ावा दे सकते हैं, अतिरिक्त आय का स्रोत बन सकते हैं। हालांकि वृक्षों की प्रजाति एवं दूरी का चयन स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार करना आवश्यक है ताकि फसल के साथ अनावश्यक प्रतिस्पर्धा न हो।

23. एकीकृत कृषि प्रणाली- कृषि को पशुपालन, मत्स्य पालन, मधुमक्खी पालन, कुक्कुट पालन तथा कृषि वानिकी जैसी गतिविधियों के साथ जोड़ना किसान की आय में विविधता ला सकता है। उदाहरण के लिए फसल अवशेषों का उपयोग पशु चारे के रूप में तथा पशु अपशिष्ट का उपयोग जैविक खाद बनाने में किया जा सकता है। इस प्रकार एक गतिविधि का अपशिष्ट दूसरी गतिविधि के लिए संसाधन बन जाता है और कृषि प्रणाली अधिक टिकाऊ बनती है।

24. जलवायु-स्मार्ट कृषि- जलवायु-स्मार्ट कृषि का उद्देश्य कृषि उत्पादकता एवं किसान की अनुकूलन क्षमता बढ़ाना तथा जहां संभव हो कृषि से जुड़े पर्यावरणीय दबाव को कम करना है।

इसमें निम्न उपायों को शामिल किया जा सकता है—

जलवायु-सहिष्णु किस्में, जल संरक्षण, संरक्षण कृषि, फसल विविधीकरण, संतुलित पोषण, एकीकृत कीट प्रबंधन, मौसम आधारित कृषि सलाह, कृषि वानिकी, आधुनिक डिजिटल तकनीक। यह एक ऐसी समग्र दृष्टिकोण वाली कृषि प्रणाली है जो बदलती जलवायु में उत्पादन की स्थिरता को बढ़ाने पर बल देती है।

25. फसल कटाई एवं कटाई-पश्चात प्रबंधन- जलवायु परिवर्तन से होने वाले नुकसान को केवल खेत स्तर पर ही नहीं बल्कि कटाई के बाद भी कम करना आवश्यक है। असमय वर्षा से कटाई के समय फसल की गुणवत्ता प्रभावित हो सकती है। इसलिए मौसम पूर्वानुमान को ध्यान में रखते हुए कटाई की योजना बनानी चाहिए।

कटाई के बाद— उचित सुखाना, सुरक्षित भंडारण, नमी का उचित स्तर, भंडारण कीटों से सुरक्षा, साफ एवं हवादार भंडार का प्रबंधन आवश्यक है।

26. कृषि बीमा एवं जोखिम प्रबंधन- जलवायु परिवर्तन से जुड़े जोखिमों को पूरी तरह समाप्त करना संभव नहीं है। इसलिए वित्तीय जोखिम प्रबंधन भी आवश्यक है। फसल बीमा, किसान उत्पादक संगठन, सामूहिक कृषि गतिविधियां तथा विविध आय स्रोत किसानों को प्रतिकूल परिस्थितियों में आर्थिक सुरक्षा प्रदान करने में सहायक हो सकते हैं। किसानों को अपने क्षेत्र में उपलब्ध फसल बीमा एवं सरकारी योजनाओं की पात्रता तथा नियमों की जानकारी लेकर उनका उपयोग करना चाहिए।

27. छोटे एवं सीमांत किसानों के लिए रणनीतियाँ छोटे किसानों के पास संसाधन सीमित होते हैं, इसलिए

उनके लिए कम लागत वाली जलवायु अनुकूल तकनीकें विशेष रूप से उपयोगी हैं।

वे—

सूखा सहनशील फसलें, फसल विविधीकरण, फसल अवशेष प्रबंधन, जैविक खाद, वर्षा जल संचयन, सामुदायिक सिंचाई, मौसम आधारित सलाह, किसान समूहों के माध्यम से मशीनरी उपयोग को अपनाकर जोखिम कम कर सकते हैं।

28. किसानों के लिए व्यावहारिक कार्ययोजना- जलवायु परिवर्तन की स्थिति में किसान निम्न क्रम को अपनाकर बेहतर कृषि प्रबंधन कर सकते हैं—

मृदा परीक्षण * स्थानीय जलवायु का आकलन * उपयुक्त किस्म का चयन * गुणवत्तापूर्ण बीज * बीज उपचार * समय पर बुवाई * संतुलित पोषण * जल संरक्षण * नियमित फसल निगरानी * कीट एवं रोग प्रबंधन * मौसम आधारित निर्णय * समय पर कटाई * सुरक्षित भंडारण।

इस प्रकार फसल उत्पादन की पूरी प्रक्रिया को एक समग्र प्रणाली के रूप में प्रबंधित किया जाना चाहिए।

29. कृषि वैज्ञानिकों एवं कृषि विस्तार सेवाओं की भूमिका- जलवायु परिवर्तन से निपटने में किसानों के साथ कृषि वैज्ञानिकों और विस्तार कार्यकर्ताओं की भूमिका महत्वपूर्ण है।

कृषि विश्वविद्यालय एवं अनुसंधान संस्थानों को— जलवायु-सहिष्णु किस्में विकसित करने, स्थानीय कृषि प्रणालियों का अध्ययन करने, कम पानी वाली तकनीकें विकसित करने, मौसम आधारित कृषि सलाह तैयार करने, जैविक एवं जैव आधारित तकनीकों को बढ़ावा देने पर ध्यान देना चाहिए।

कृषि विस्तार सेवाओं के माध्यम से किसानों तक सरल भाषा में वैज्ञानिक जानकारी पहुंचाना भी आवश्यक है।

30. सरकार की भूमिका

जलवायु परिवर्तन एक व्यापक समस्या है, इसलिए किसानों को तकनीकी एवं आर्थिक सहायता उपलब्ध कराने के लिए सरकारी प्रयास आवश्यक हैं।

सरकार एवं संबंधित संस्थाओं द्वारा—

सिंचाई सुविधाओं का विस्तार, जल संरक्षण संरचनाओं को बढ़ावा, जलवायु-सहिष्णु बीजों की उपलब्धता, फसल बीमा, कृषि प्रशिक्षण, मौसम आधारित सलाह, कृषि यंत्रीकरण, मृदा स्वास्थ्य परीक्षण

जैसे क्षेत्रों पर ध्यान देना आवश्यक है।

31. जलवायु परिवर्तन के अनुकूल भविष्य की कृषि

भविष्य की कृषि को तीन प्रमुख लक्ष्यों के बीच संतुलन स्थापित करना होगा— उत्पादन + किसान की आय + प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण।

केवल अधिक उत्पादन प्राप्त करना पर्याप्त नहीं होगा। यदि उत्पादन बढ़ाने के लिए भूजल का अत्यधिक दोहन, मृदा का क्षरण या कृषि आदानों का अनावश्यक उपयोग किया जाता है तो लंबे समय में कृषि की उत्पादन क्षमता प्रभावित हो सकती है।

इसलिए भविष्य की कृषि को संसाधन दक्ष, तकनीक आधारित, विविधीकृत और जलवायु-सहिष्णु बनाना

आवश्यक है।

32. प्रमुख रणनीतियों का संक्षिप्त सार

जलवायु समस्या

प्रमुख कृषि प्रबंधन रणनीति

बढ़ता तापमान

ताप-सहिष्णु किस्में, समय पर बुवाई, नमी संरक्षण

सूखा

सूखा सहनशील फसलें, मल्लिचंग, वर्षा जल संचयन

अत्यधिक वर्षा

जल निकास, उचित खेत प्रबंधन

जल संकट

ड्रिप/स्प्रिंकलर, सिंचाई का उचित समय

कीट प्रकोप

एकीकृत कीट प्रबंधन

रोगों में वृद्धि

प्रतिरोधी किस्में एवं निगरानी

मृदा क्षरण

संरक्षण कृषि एवं जैविक पदार्थ

उत्पादन जोखिम

फसल विविधीकरण एवं फसल चक्र

मौसमीय अनिश्चितता

मौसम आधारित कृषि सलाह

आय में अस्थिरता

एकीकृत कृषि प्रणाली एवं आय विविधीकरण

33. निष्कर्ष

जलवायु परिवर्तन कृषि क्षेत्र के लिए वर्तमान और भविष्य दोनों की गंभीर चुनौती है। तापमान में वृद्धि, वर्षा की अनिश्चितता, सूखा, बाढ़, जलभराव तथा चरम मौसमीय घटनाएं फसल उत्पादन की स्थिरता को प्रभावित कर सकती हैं। इसके साथ बदलते कीट एवं रोग प्रकोप तथा जल संसाधनों पर बढ़ता दबाव किसानों की समस्याओं को और जटिल बना रहा है।

इन चुनौतियों का समाधान केवल किसी एक तकनीक से संभव नहीं है। इसके लिए समन्वित एवं जलवायु-स्मार्ट कृषि प्रबंधन की आवश्यकता है। जलवायु-सहिष्णु किस्मों का चयन, फसल विविधीकरण, संरक्षण कृषि, मृदा स्वास्थ्य प्रबंधन, वर्षा जल संचयन, सूक्ष्म सिंचाई, संतुलित पोषक तत्व प्रबंधन, एकीकृत कीट एवं रोग प्रबंधन तथा मौसम आधारित कृषि सलाह को एक साथ अपनाना अधिक प्रभावी रणनीति हो सकती है।

किसानों को स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार कृषि तकनीकों का चयन करना चाहिए। साथ ही कृषि वैज्ञानिकों, कृषि विश्वविद्यालयों, कृषि विस्तार सेवाओं, सरकार और निजी क्षेत्र के बीच बेहतर समन्वय आवश्यक है।

अंततः यह कहा जा सकता है कि जलवायु परिवर्तन के दौर में कृषि का लक्ष्य केवल अधिक उत्पादन प्राप्त करना नहीं, बल्कि प्रतिकूल परिस्थितियों में भी स्थिर उत्पादन, बेहतर किसान आय और प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण सुनिश्चित करना होना चाहिए। वैज्ञानिक तकनीकों और स्थानीय ज्ञान के समन्वय से भारतीय कृषि को अधिक लचीला, टिकाऊ एवं जलवायु-सहिष्णु बनाया जा सकता है।



डॉ. संगीता सुरेश होलमुखे

कृषि प्रसार शिक्षा विभाग, कृषि विज्ञान संकाय, जी.एच.
रायसोनी विश्वविद्यालय, साईखेड़ा, जिला- पाण्डुरा (म.प्र.)

सारांश

कृषि उत्पादन में रोग एवं कीट प्रमुख जैविक कारकों में शामिल हैं, जो फसलों की वृद्धि, विकास, गुणवत्ता तथा उत्पादकता को गंभीर रूप से प्रभावित करते हैं। अनेक परिस्थितियों में फसल की कुल संभावित उपज का एक महत्वपूर्ण भाग रोग एवं कीटों के कारण नष्ट हो जाता है। रासायनिक कीटनाशकों एवं रोगनाशकों के लगातार और असंतुलित उपयोग से उत्पादन लागत बढ़ने के साथ-साथ पर्यावरण, लाभकारी जीवों तथा मानव स्वास्थ्य पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। ऐसी स्थिति में रोग एवं कीट प्रतिरोधी फसल किस्मों का विकास एक प्रभावी, आर्थिक एवं पर्यावरण-अनुकूल रणनीति है।

रोग एवं कीट प्रतिरोधी किस्मों का विकास आनुवंशिक विविधता, चयन, संकरण, बैकक्रॉसिंग, जर्मप्लाज्म संरक्षण, मार्कर-सहायित चयन, जीनोमिक चयन तथा आधुनिक जीन-संपादन तकनीकों पर आधारित है। प्रतिरोधी जीनों की पहचान कर उन्हें उच्च उत्पादक एवं अनुकूलित किस्मों में स्थानांतरित किया जाता है। आधुनिक जैव प्रौद्योगिकी ने इस प्रक्रिया को अधिक सटीक और तेज बनाने की संभावनाएँ बढ़ाई हैं। हालांकि रोग एवं कीटों की बदलती आबादी, नए जैवप्रकारों का उद्भव तथा प्रतिरोध के टूटने जैसी चुनौतियाँ बनी हुई हैं। इसलिए टिकाऊ कृषि के लिए प्रतिरोधी किस्मों को एकीकृत कीट एवं रोग प्रबंधन के साथ अपनाना आवश्यक है।

मुख्य शब्द- रोग प्रतिरोध, कीट प्रतिरोध, पादप प्रजनन, प्रतिरोधी किस्म, आनुवंशिक विविधता, मार्कर-सहायित चयन, जीन संपादन, एकीकृत कीट प्रबंधन।

1. प्रस्तावना

भारत की कृषि विविध जलवायु एवं विभिन्न फसल प्रणालियों पर आधारित है। धान, गेहूँ, मक्का, दलहन, तिलहन, कपास, गन्ना, सब्जियाँ एवं फल जैसी फसलें अनेक प्रकार के रोगों और कीटों से प्रभावित होती हैं। पौधों में रोग मुख्यतः कवक, जीवाणु, विषाणु, फाइटोप्लाज्मा तथा अन्य रोगजनक जीवों के कारण होते हैं, जबकि कीट फसल के विभिन्न भागों को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से नुकसान पहुँचाते हैं।

रोग एवं कीटों के नियंत्रण के लिए रासायनिक, जैविक, यांत्रिक एवं सांस्कृतिक उपाय अपनाए जाते हैं। इनमें आनुवंशिक प्रतिरोध सबसे अधिक टिकाऊ उपायों में से एक माना जाता है, क्योंकि प्रतिरोधी किस्मों में

रोग एवं कीट प्रतिरोधी फसल किस्मों का विकास

पौधे की अपनी आनुवंशिक क्षमता रोग या कीट के प्रभाव को कम करती है।

यदि किसी फसल में आनुवंशिक रूप से प्रतिरोधी किस्म उपलब्ध हो तो किसान को बार-बार महंगे रासायनिक उपचार पर निर्भरता कम हो सकती है। इससे उत्पादन लागत कम करने, पर्यावरणीय जोखिम घटाने तथा उत्पादन की स्थिरता बढ़ाने में सहायता मिल सकती है।

2. रोग एवं कीट प्रतिरोध की अवधारणा

रोग प्रतिरोध का अर्थ पौधे की वह आनुवंशिक क्षमता है जिसके कारण वह किसी रोगजनक के

प्रतिरोधी किस्मों में जैविक तनाव की स्थिति में सामान्य किस्मों की तुलना में अधिक स्थिर उत्पादन दे सकती हैं।

3.2 कीटनाशक उपयोग में कमी

यदि फसल में पर्याप्त आनुवंशिक प्रतिरोध मौजूद है तो कुछ परिस्थितियों में रासायनिक नियंत्रण की आवश्यकता कम हो सकती है।

3.3 उत्पादन लागत में कमी

कीटनाशक एवं रोगनाशक खरीद तथा उनके प्रयोग पर होने वाला खर्च कम किया जा सकता है।

3.4 पर्यावरण संरक्षण

रासायनिक पदार्थों के अत्यधिक उपयोग में कमी से मिट्टी, जल एवं गैर-लक्षित जीवों पर संभावित प्रभाव कम किया जा सकता है।

3.5 मानव एवं पशु सुरक्षा

कीटनाशक अवशेषों एवं अनावश्यक रासायनिक संपर्क को कम करने में प्रतिरोधी किस्मों सहायक हो सकती हैं।

4. रोग प्रतिरोध के प्रमुख प्रकार

पौधों में रोग प्रतिरोध कई प्रकार का हो सकता है।

4.1 ऊर्ध्ववाधर प्रतिरोध

यह सामान्यतः विशिष्ट रोगजनक जाति या जैवप्रकार के विरुद्ध प्रभावी हो सकता है। इसका नियंत्रण अक्सर एक या कुछ प्रमुख जीनों से जुड़ा होता है।

4.2 क्षैतिज प्रतिरोध

यह कई रोगजनक जातियों के विरुद्ध अपेक्षाकृत व्यापक एवं आंशिक प्रतिरोध प्रदान कर सकता है। यह अक्सर अनेक जीनों के संयुक्त प्रभाव से संबंधित होता है।

4.3 वयस्क पौधा प्रतिरोध

कुछ फसलों में पौधा प्रारंभिक अवस्था में संवेदनशील लेकिन वयस्क अवस्था में अपेक्षाकृत अधिक प्रतिरोधी हो सकता है।

4.4 क्षेत्र-विशिष्ट प्रतिरोध

किसी विशेष क्षेत्र के रोगजनक समुदाय के अनुसार प्रतिरोध का स्तर अलग-अलग हो सकता है।

5. कीट प्रतिरोध के प्रमुख तंत्र

पौधों में कीट प्रतिरोध को मुख्यतः तीन श्रेणियों में समझा जाता है।

5.1 एंटीबायोटिस

पौधे के गुण कीट के भोजन, वृद्धि, विकास या



फसलों की सुरक्षा

संक्रमण या उसके कारण होने वाली क्षति को कम कर सकता है। इसी प्रकार कीट प्रतिरोध पौधे की वह आनुवंशिक क्षमता है जिसके कारण कीट की वृद्धि, भोजन, प्रजनन या पौधे को होने वाली क्षति सीमित हो जाती है।

प्रतिरोध और सहनशीलता में अंतर समझना भी आवश्यक है।

प्रतिरोध

प्रतिरोधी पौधा कीट या रोगजनक की स्थापना, वृद्धि या संक्रमण को रोकने अथवा कम करने में सक्षम होता है।

सहनशीलता

सहनशील पौधा कीट या रोग की उपस्थिति के बावजूद अपेक्षाकृत अच्छी वृद्धि एवं उपज बनाए रख सकता है।

इस प्रकार प्रतिरोध एवं सहनशीलता दोनों फसल सुधार कार्यक्रम में उपयोगी गुण हैं।

3. रोग एवं कीट प्रतिरोध का महत्व

रोग एवं कीट प्रतिरोधी किस्मों के विकास के अनेक लाभ हैं।

3.1 उत्पादन में स्थिरता



प्रजनन को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करते हैं।

5.2 एंटीक्सेनोसिस

पौधे के भौतिक या रासायनिक गुण कीट को पौधे पर आने, बैठने या अंडे देने से हतोत्साहित करते हैं।

5.3 सहनशीलता

कीट द्वारा क्षति होने के बावजूद पौधा अपनी वृद्धि एवं उपज को अपेक्षाकृत बनाए रखता है।

इन तीनों तंत्रों का उपयोग प्रजनन कार्यक्रम में किया जा सकता है।

6. प्रतिरोधी स्रोतों की पहचान

रोग एवं कीट प्रतिरोधी किस्म विकसित करने का पहला चरण प्रतिरोधी आनुवंशिक स्रोतों की पहचान करना है।

इसके लिए निम्न स्रोत उपयोगी हो सकते हैं—

- स्थानीय किस्में
- पारंपरिक किस्में
- जंगली संबंधी प्रजातियाँ
- उन्नत प्रजनन सामग्री
- विदेशी जर्मप्लाज्म
- जीन बैंक
- पूर्व विकसित प्रतिरोधी रेखाएँ

इन स्रोतों का स्क्रीनिंग परीक्षण करके प्रतिरोधी पौधों की पहचान की जाती है।

7. जर्मप्लाज्म का महत्व

जर्मप्लाज्म किसी फसल की आनुवंशिक विविधता का महत्वपूर्ण भंडार है। पारंपरिक एवं स्थानीय किस्मों में कई ऐसे जीन हो सकते हैं जो आधुनिक उच्च उत्पादक किस्मों में उपलब्ध नहीं होते।

इसलिए रोग एवं कीट प्रतिरोध के लिए जर्मप्लाज्म का संरक्षण अत्यंत आवश्यक है।

जीन बैंक भविष्य के प्रजनन कार्यक्रमों के लिए प्रतिरोधी जीनों का महत्वपूर्ण स्रोत होते हैं।

8. पारंपरिक पादप प्रजनन द्वारा प्रतिरोधी किस्मों का विकास

पारंपरिक प्रजनन में प्रतिरोधी जनक को उच्च उत्पादक या अच्छी गुणवत्ता वाले जनक के साथ संकरण कराया जाता है।

सामान्य प्रक्रिया इस प्रकार हो सकती है—

प्रतिरोधी स्रोत * श्रेष्ठ जनक से संकरण * संतति उत्पादन * स्क्रीनिंग * चयन * पुनः चयन/बैकक्रॉस * परीक्षण * उन्नत रेखा * किस्म

इस प्रक्रिया में कई पीढ़ियाँ लग सकती हैं।

9. बैकक्रॉस प्रजनन

यदि किसी लोकप्रिय किस्म में केवल रोग या कीट प्रतिरोध का गुण जोड़ना हो तो बैकक्रॉसिंग उपयोगी तकनीक है। इसमें प्रतिरोधी जनक को दाता जनक के रूप में और लोकप्रिय किस्म को पुनरावर्ती जनक के रूप में उपयोग किया जाता है। प्रत्येक पीढ़ी में वांछित प्रतिरोधी पौधों का चयन किया जाता है और उन्हें पुनः लोकप्रिय किस्म के साथ संकरण कराया जाता है।

इससे मूल लोकप्रिय किस्म के अधिकांश वांछनीय गुणों को बनाए रखते हुए प्रतिरोधी गुण जोड़ने में

सहायता मिलती है।

10. मार्कर-सहायित चयन

आधुनिक पादप प्रजनन में मार्कर-सहायित चयन (Marker-Assisted Selection) अत्यंत उपयोगी तकनीक है।

यदि किसी रोग या कीट प्रतिरोधी जीन के साथ जुड़ा आणविक मार्कर उपलब्ध हो, तो पौधों की प्रारंभिक अवस्था में ही यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उनमें संबंधित जीन मौजूद है या नहीं।



इसके लाभ—

- चयन प्रक्रिया तेज होती है।
- छोटे पौधों में चयन संभव होता है।
- पर्यावरणीय प्रभाव कम होता है।
- एक से अधिक जीनों के चयन में सहायता मिलती है।

बैकक्रॉसिंग अधिक प्रभावी हो सकती है।

11. जीन पिरामिडिंग

एक ही पौधे में कई प्रतिरोधी जीनों को एक साथ संयोजित करने की प्रक्रिया को जीन पिरामिडिंग (Gene Pyramiding) कहा जाता है।

यदि किसी रोगजनक के विरुद्ध एक जीन का प्रतिरोध समय के साथ कमजोर हो सकता है, तो कई प्रतिरोधी जीनों को एक साथ संयोजित करने से प्रतिरोध को अधिक टिकाऊ बनाने की संभावना बढ़ती है।

यह रणनीति विशेष रूप से ऐसे रोगों के प्रबंधन में उपयोगी हो सकती है जिनमें रोगजनक तेजी से आनुवंशिक परिवर्तन करता है।

12. जीनोमिक चयन

जीनोमिक चयन में बड़ी संख्या में आनुवंशिक मार्करों की सहायता से किसी प्रजनन सामग्री के संभावित प्रदर्शन का अनुमान लगाया जाता है।

इस तकनीक से जटिल एवं बहु-जीन नियंत्रित गुणों के चयन में सहायता मिल सकती है।

भविष्य में रोग एवं कीट प्रतिरोध के साथ-साथ उच्च उत्पादकता, गुणवत्ता और तनाव सहनशीलता को एक ही प्रजनन कार्यक्रम में संयोजित करने में जीनोमिक चयन उपयोगी हो सकता है।

13. जीन संपादन की भूमिका

CRISPR जैसी जीन-संपादन तकनीकें आधुनिक पादप प्रजनन में नई संभावनाएँ प्रस्तुत करती हैं। इनके माध्यम से पौधे के विशिष्ट जीन में लक्षित परिवर्तन किए जा सकते हैं।

रोग एवं कीट प्रतिरोध के संदर्भ में संभावित उपयोगों में—

संवेदनशीलता प्रदान करने वाले जीनों में परिवर्तन पौधे की प्राकृतिक रक्षा प्रणाली को मजबूत करना प्रतिरोध से जुड़े जीनों में सुधार विशिष्ट गुणों का लक्षित संशोधन शामिल हो सकते हैं।

हालाँकि जीन-संपादन तकनीक का उपयोग करते समय जैव-सुरक्षा, नियामक आवश्यकताओं एवं पर्यावरणीय प्रभावों का वैज्ञानिक मूल्यांकन आवश्यक है।

14. जैव प्रौद्योगिकी आधारित रोग एवं कीट प्रतिरोध

कृषि जैव प्रौद्योगिकी ने प्रतिरोधी फसल विकास के लिए अनेक नए अवसर प्रदान किए हैं।

इसमें प्रमुख तकनीकें हैं—

आणविक मार्कर

DNA आधारित चयन

जीन क्लोनिंग

जीनोमिक्स

ट्रांसजेनिक तकनीक

जीनोमिक चयन

जीन संपादन

उच्च-थ्रूपुट फेनोटाइपिंग

इन तकनीकों से पारंपरिक प्रजनन की तुलना में कुछ विशेष गुणों की पहचान एवं चयन अधिक सटीक रूप से किया जा सकता है।

15. फसल उदाहरण

15.1 गेहूँ

गेहूँ में रतुआ, करनाल बंट एवं अन्य रोगों के विरुद्ध प्रतिरोधी जीनों की पहचान एवं उपयोग किया गया है। रोग प्रतिरोधी किस्में उत्पादन की स्थिरता बढ़ाने में सहायक हो सकती हैं।

15.2 धान

धान में ब्लास्ट एवं बैक्टीरियल ब्लाइट जैसे प्रमुख रोगों के विरुद्ध प्रतिरोधी जीनों की पहचान की गई है। इनके उपयोग से रोग प्रबंधन को अधिक प्रभावी बनाया जा सकता है।

15.3 कपास

कपास में कीट प्रतिरोध कृषि उत्पादन में अत्यंत महत्वपूर्ण है। विभिन्न प्रजनन एवं जैव प्रौद्योगिकी रणनीतियों के माध्यम से कीट क्षति कम करने का प्रयास किया गया है।

15.4 मक्का

मक्का में तना छेदक, फॉल आर्मीवर्म तथा अन्य कीटों के विरुद्ध प्रतिरोध या सहनशीलता विकसित करने पर प्रजनन कार्यक्रमों में जोर दिया जाता है।

15.5 दलहन

चना, अरहर एवं अन्य दलहनी फसलों में कीट एवं रोग प्रतिरोध उच्च एवं स्थिर उत्पादन के लिए महत्वपूर्ण है।

16. रोग एवं कीट प्रतिरोधी किस्मों का एकीकृत प्रबंधन में योगदान



प्रतिरोधी किस्में एकीकृत कीट प्रबंधन (टुक्कर) एवं एकीकृत रोग प्रबंधन का महत्वपूर्ण घटक हैं।

इनके साथ निम्न उपायों को जोड़ा जा सकता है—

स्वस्थ बीज का उपयोग

फसल चक्र

समय पर बुवाई

खेत की स्वच्छता

संतुलित पोषण

जैविक नियंत्रण

फेरोमोन ट्रैप

प्रकाश प्रपंच

आवश्यकतानुसार रासायनिक नियंत्रण

नियमित निगरानी

इस प्रकार प्रतिरोधी किस्म अकेली तकनीक न होकर समन्वित प्रबंधन प्रणाली का हिस्सा होनी चाहिए।

17. प्रतिरोधी किस्मों के आर्थिक लाभ

प्रतिरोधी किस्मों से किसानों को प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष आर्थिक लाभ मिल सकता है।

यदि रोग या कीट की समस्या गंभीर हो तो प्रतिरोधी किस्म—

फसल नुकसान कम कर सकती है।

कीटनाशक खर्च कम कर सकती है।

उत्पादन की स्थिरता बढ़ा सकती है।

बाजार योग्य उपज बढ़ा सकती है।

उत्पादन जोखिम कम कर सकती है।

इसका सबसे बड़ा लाभ उन क्षेत्रों में हो सकता है जहाँ किसी विशेष रोग या कीट का नियमित एवं गंभीर प्रकोप होता है।

18. प्रतिरोधी किस्मों की सीमाएँ

रोग एवं कीट प्रतिरोधी किस्में अत्यंत उपयोगी हैं, लेकिन वे पूर्ण समाधान नहीं हैं।

प्रमुख सीमाएँ

प्रतिरोध समय के साथ कमजोर हो सकता है।

रोगजनक या कीट की नई जैविक आबादी विकसित हो सकती है।

एक क्षेत्र में प्रभावी प्रतिरोध दूसरे क्षेत्र में समान रूप से प्रभावी नहीं हो सकता। कुछ प्रतिरोधी स्रोतों में उत्पादन या गुणवत्ता संबंधी कमजोरियाँ हो सकती हैं। प्रतिरोध कई जीनों द्वारा नियंत्रित होने पर चयन कठिन हो सकता है। प्रतिरोधी किस्मों को भी उचित कृषि प्रबंधन की आवश्यकता होती है।

19. प्रतिरोध टूटने की समस्या

किसी रोग या कीट के विरुद्ध एक ही प्रतिरोधी जीन का लंबे समय तक व्यापक उपयोग चयन दबाव उत्पन्न कर सकता है। समय के साथ रोगजनक या कीट की ऐसी आबादी विकसित हो सकती है जो उस प्रतिरोध को पार करने में सक्षम हो।

इसे प्रतिरोध का टूटना (Resistance Breakdown) कहा जाता है।

इसे रोकने के लिए—

विभिन्न प्रतिरोधी जीनों का संयोजन

विभिन्न किस्मों का उपयोग

जीन पिरामिडिंग

फसल चक्र

एकीकृत प्रबंधन

रोग एवं कीट आबादी की निगरानी

जैसी रणनीतियाँ अपनाई जा सकती हैं।

20. जलवायु परिवर्तन और रोग एवं कीट प्रतिरोध

जलवायु परिवर्तन के कारण तापमान, आर्द्रता और वर्षा के स्वरूप में परिवर्तन हो रहा है। इससे कई कीटों एवं रोगजनकों के वितरण, जीवन चक्र तथा प्रकोप की तीव्रता में परिवर्तन हो सकता है।

इसलिए भविष्य की प्रतिरोधी किस्मों में केवल वर्तमान रोग एवं कीटों के प्रति प्रतिरोध पर्याप्त नहीं होगा। बदलती जलवायु के अनुरूप बहु-तनाव सहनशीलता विकसित करना आवश्यक होगा।

उदाहरण के लिए ऐसी किस्मों की आवश्यकता हो सकती है जो एक साथ—

उच्च तापमान + सूखा + प्रमुख रोग + प्रमुख कीट का सामना कर सकें।

21. रोग एवं कीट प्रतिरोध तथा खाद्य सुरक्षा

खाद्य सुरक्षा के लिए केवल पर्याप्त उत्पादन ही नहीं बल्कि उत्पादन की स्थिरता भी आवश्यक है। यदि किसी रोग या कीट के कारण किसी वर्ष फसल उत्पादन में भारी कमी आती है, तो खाद्य उपलब्धता एवं किसान आय दोनों प्रभावित हो सकते हैं।

प्रतिरोधी किस्में जैविक तनाव के कारण होने वाले नुकसान को कम करके उत्पादन को अधिक स्थिर बनाने में योगदान दे सकती हैं।

इस प्रकार रोग एवं कीट प्रतिरोधी फसल किस्में भविष्य की खाद्य सुरक्षा रणनीति का महत्वपूर्ण हिस्सा हैं।

22. किसान स्तर पर प्रतिरोधी किस्मों का उपयोग

किसानों को अपने क्षेत्र के लिए अनुशंसित प्रतिरोधी या सहनशील किस्मों का चयन करना चाहिए।

बीज चयन के समय निम्न बातों पर ध्यान देना चाहिए—

स्थानीय क्षेत्र में प्रमुख रोग एवं कीट

किस्म की अनुशंसित कृषि-जलवायु

उत्पादन क्षमता

अवधि

बाजार मांग

बीज की गुणवत्ता

उपलब्धता

रोग एवं कीट प्रतिरोध की प्रमाणित जानकारी

सिर्फ प्रतिरोधी किस्म अपनाने के बजाय नियमित फसल निगरानी और उचित IPM अपनाना अधिक प्रभावी होता है।

23. भविष्य की दिशा

भविष्य में रोग एवं कीट प्रतिरोधी किस्मों के

विकास में पारंपरिक प्रजनन और आधुनिक जैव प्रौद्योगिकी का एकीकरण महत्वपूर्ण होगा।

विशेष रूप से निम्न क्षेत्रों में प्रगति की संभावना है—

23.1 जीनोमिक्स आधारित प्रजनन

बड़े पैमाने पर आनुवंशिक जानकारी का उपयोग करके प्रतिरोधी जीन एवं त्क्कर की पहचान की जा सकेगी।

23.2 कृत्रिम बुद्धिमत्ता

AI आधारित मॉडल पौधों के फेनोटाइप, रोग लक्षण एवं आनुवंशिक जानकारी का विश्लेषण करके चयन में सहायता कर सकते हैं।

23.3 उच्च-थ्रूपुट फेनोटाइपिंग

कैमरा, सेंसर एवं डिजिटल तकनीकों से बड़ी संख्या में पौधों का तेजी से मूल्यांकन किया जा सकता है।

23.4 जीन संपादन

लक्षित जीन परिवर्तन द्वारा प्रतिरोधी पौध सामग्री विकसित करने की संभावनाएँ बढ़ेंगी।

23.5 बहु-रोग एवं बहु-कीट प्रतिरोध

भविष्य की किस्मों में एक से अधिक प्रमुख रोग एवं कीटों के विरुद्ध प्रतिरोध संयोजित करने पर अधिक जोर होगा।

24. निष्कर्ष

रोग एवं कीट प्रतिरोधी फसल किस्मों का विकास आधुनिक कृषि में उत्पादन की स्थिरता, लागत में कमी और पर्यावरण संरक्षण की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। प्रतिरोधी किस्में पौधे की आनुवंशिक क्षमता का उपयोग करके रोग एवं कीटों से होने वाले नुकसान को कम करती हैं तथा रासायनिक नियंत्रण पर निर्भरता घटाने में सहायता कर सकती हैं।

प्रतिरोधी किस्मों के विकास में जर्मप्लाज्म, पारंपरिक पादप प्रजनन, संकरण, बैकक्रॉसिंग, आणविक मार्कर, मार्कर-सहायित चयन, जीनोमिक चयन और जीन संपादन जैसी तकनीकों की महत्वपूर्ण भूमिका है। विशेष रूप से जीन पिरामिडिंग तथा बहु-गुण प्रतिरोध भविष्य के टिकाऊ फसल सुधार कार्यक्रमों में महत्वपूर्ण हो सकते हैं।

फिर भी किसी एक प्रतिरोधी जीन पर अत्यधिक निर्भरता उचित नहीं है, क्योंकि रोगजनक एवं कीट समय के साथ प्रतिरोध को पार करने की क्षमता विकसित कर सकते हैं। इसलिए प्रतिरोधी किस्मों को फसल चक्र, जैविक नियंत्रण, संतुलित पोषण, खेत स्वच्छता, नियमित निगरानी और आवश्यकतानुसार रासायनिक नियंत्रण के साथ जोड़ना चाहिए।

अंततः रोग एवं कीट प्रतिरोधी किस्मों का विकास कृषि उत्पादकता, किसान आय, खाद्य सुरक्षा और पर्यावरणीय स्थिरता के लिए एक प्रभावी रणनीति है। पारंपरिक ज्ञान और आधुनिक जैव प्रौद्योगिकी के समन्वय से ऐसी फसल किस्में विकसित की जा सकती हैं जो भविष्य की जलवायु, जैविक तनाव और बढ़ती खाद्य मांग की चुनौतियों का अधिक प्रभावी ढंग से सामना कर सकें।



✍ देवरानी गुप्ता Ph.D. (Agronomy)

कृषि प्राविधिक सहायक, कृषि विभाग,
उत्तर प्रदेश सरकार

फसल अवशेष प्रबंधन एवं पराली से जैविक खाद बनाने की वैज्ञानिक विधियाँ

सारांश- भारत में कृषि उत्पादन बढ़ने के साथ फसल अवशेषों की मात्रा भी निरंतर बढ़ रही है। धान, गेहूँ, मक्का, गन्ना, कपास तथा अन्य फसलों की कटाई के बाद खेत में बड़ी मात्रा में अवशेष बचते हैं। विशेष रूप से धान की पराली का उचित प्रबंधन न होने पर किसान अक्सर उसे खेत में जला देते हैं। इससे वायु प्रदूषण, मृदा जैविक पदार्थ की हानि, लाभकारी सूक्ष्मजीवों की कमी तथा पोषक तत्वों के नुकसान जैसी समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। दूसरी ओर, यदि फसल अवशेषों का वैज्ञानिक ढंग से प्रबंधन किया जाए तो इन्हें जैविक खाद, कम्पोस्ट, वर्मी-कम्पोस्ट, मलच तथा अन्य उपयोगी कृषि संसाधनों में परिवर्तित किया जा सकता है।

फसल अवशेषों में कार्बन, नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटैश तथा अन्य पोषक तत्व उपस्थित होते हैं। उचित अपघटन के बाद ये पोषक तत्व पुनः मृदा में लौटाए जा सकते हैं। फसल अवशेषों से कम्पोस्ट एवं जैविक खाद बनाने से मृदा की संरचना, जलधारण क्षमता, जैविक कार्बन तथा सूक्ष्मजीवी गतिविधि में सुधार हो सकता है। इस प्रकार अवशेष प्रबंधन न केवल पर्यावरण संरक्षण का साधन है बल्कि मृदा स्वास्थ्य और टिकाऊ कृषि का महत्वपूर्ण आधार भी है।

मुख्य शब्द- फसल अवशेष, पराली, कम्पोस्ट, जैविक खाद, वर्मी-कम्पोस्ट, मृदा स्वास्थ्य, जैविक कार्बन, टिकाऊ कृषि।

1. प्रस्तावना- भारत एक कृषि प्रधान देश है और यहाँ विभिन्न agro-climatic परिस्थितियों में अनेक फसलों की खेती की जाती है। फसल उत्पादन के साथ-साथ खेतों में तनों, पत्तियों, भूसे, जड़ों, बालियों और अन्य जैविक पदार्थों के रूप में बड़ी मात्रा में फसल अवशेष उत्पन्न होते हैं। इन अवशेषों का कुछ हिस्सा पशु चारे, बिछावन, ईंधन तथा अन्य कार्यों में उपयोग हो जाता है, जबकि बड़ी मात्रा खेत में ही रह जाती है। विशेष रूप से धान की कटाई के बाद बचने वाली पराली का प्रबंधन एक महत्वपूर्ण कृषि एवं पर्यावरणीय चुनौती है। कम समय में अगली फसल की बुवाई करने की आवश्यकता के कारण कुछ किसान पराली को जलाने का विकल्प चुनते हैं। पराली जलाने से तत्काल खेत साफ हो जाता है, लेकिन इसके दीर्घकालिक नुकसान काफी अधिक हैं। फसल अवशेष वास्तव में कृषि के लिए कचरा नहीं बल्कि मूल्यवान जैविक संसाधन हैं। वैज्ञानिक प्रबंधन के माध्यम से इन्हें जैविक खाद में परिवर्तित करके मृदा में वापस मिलाया जा सकता है। इससे पोषक तत्वों का पुनर्चक्रण होता है और रासायनिक उर्वरकों पर निर्भरता को कुछ हद तक कम करने में सहायता मिल सकती है।

2. फसल अवशेष क्या हैं? फसल की कटाई और मड़ाई के बाद खेत या कृषि प्रसंस्करण स्थल पर बचा जैविक पदार्थ फसल अवशेष कहलाता है।

इनमें मुख्य रूप से शामिल हैं— तना, पत्तियाँ, जड़ें, भूसा, बालियाँ, फली एवं छिलके, मक्का के डंठल, गन्ने की पत्तियाँ एवं पत्तीय अवशेष

कपास के पौधों के अवशेष, सब्जियों एवं अन्य फसलों के जैविक अवशेष, फसल अवशेषों की मात्रा फसल की प्रजाति, किस्म, उपज, कटाई पद्धति तथा कृषि प्रणाली पर निर्भर करती है।

3. फसल अवशेषों का महत्व



फसल अवशेषों में कार्बनिक पदार्थ तथा विभिन्न पोषक तत्व पाए जाते हैं। इनमें उपस्थित कार्बन मृदा के जैविक कार्बन का महत्वपूर्ण स्रोत बन सकता है।

अवशेषों को खेत में उचित तरीके से वापस मिलाने या कम्पोस्ट बनाकर उपयोग करने से— मृदा में जैविक पदार्थ बढ़ता है। मृदा की संरचना में सुधार होता है। जलधारण क्षमता बढ़ सकती है। पोषक तत्वों का पुनर्चक्रण होता है। मृदा सूक्ष्मजीवों की गतिविधि बढ़ सकती है। मृदा अपरदन कम करने में सहायता मिलती है। जैविक कार्बन का संरक्षण होता है। किसानों की उत्पादन लागत को कम करने में सहायता मिल सकती है। इसलिए फसल अवशेषों को जलाने के बजाय उनका वैज्ञानिक उपयोग अधिक लाभकारी है।

4. पराली जलाने से होने वाली समस्याएँ- पराली जलाने से कुछ समय के लिए खेत साफ हो जाता है, लेकिन इसके अनेक नकारात्मक प्रभाव होते हैं।

4.1 वायु प्रदूषण- पराली जलाने से धुआँ, सूक्ष्म कण तथा विभिन्न गैसीय प्रदूषक वातावरण में पहुँचते हैं। बड़े क्षेत्र में सामूहिक रूप से पराली जलाने पर क्षेत्रीय वायु गुणवत्ता प्रभावित हो सकती है।

4.2 मृदा जैविक पदार्थ की हानि- फसल अवशेषों में मौजूद जैविक पदार्थ जलकर नष्ट हो जाता है। इससे मृदा में कार्बनिक पदार्थ लौटने का एक महत्वपूर्ण स्रोत समाप्त हो जाता है।

4.3 पोषक तत्वों का नुकसान- अवशेषों को जलाने से उनमें मौजूद कई पोषक तत्वों का एक हिस्सा गैसों एवं धुएँ के रूप में वातावरण में चला जाता है। इससे पोषक तत्वों का प्राकृतिक पुनर्चक्रण बाधित होता है।

4.4 लाभकारी जीवों पर प्रभाव- आग की तीव्र गर्मी खेत की ऊपरी सतह में मौजूद कुछ लाभकारी सूक्ष्मजीवों, केंचुओं और अन्य जीवों को प्रभावित कर सकती है।

4.5 मिट्टी की भौतिक स्थिति पर प्रभाव- बार-बार अवशेष जलाने से मृदा की सतह और उसमें मौजूद जैविक पदार्थ प्रभावित हो सकते हैं। दीर्घकाल में यह मृदा स्वास्थ्य

के लिए उचित नहीं माना जाता।

5. फसल अवशेष प्रबंधन के प्रमुख तरीके- फसल अवशेषों का प्रबंधन कई तरीकों से किया जा सकता है।

प्रमुख विधियाँ

खेत में अवशेषों को बनाए रखना, अवशेषों को मृदा में मिलाना, मल्लिचिंग, कम्पोस्ट बनाना, वर्मी-कम्पोस्ट तैयार करना, पशु चारे के रूप में उपयोग, बायोगैस उत्पादन, मशरूम उत्पादन में उपयोग औद्योगिक उपयोग, बायोचार निर्माण इनमें से उपलब्ध संसाधनों और स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार उपयुक्त विधि का चयन किया जा सकता है।

6. पराली से जैविक खाद बनाने का

महत्व- पराली में कार्बन की मात्रा अपेक्षाकृत अधिक होती है और उसका घट्टा अनुपात कई अन्य जैविक पदार्थों की तुलना में अधिक हो सकता है। इसलिए इसे सीधे बड़ी मात्रा में मिट्टी में मिलाने पर सूक्ष्मजीव अपघटन के दौरान उपलब्ध नाइट्रोजन का कुछ हिस्सा अस्थायी रूप से immobilize कर सकते हैं।

कम्पोस्टिंग के दौरान सूक्ष्मजीव पराली को धीरे-धीरे विघटित करते हैं। इस प्रक्रिया में जटिल कार्बनिक पदार्थ सरल एवं अपेक्षाकृत स्थिर पदार्थों में परिवर्तित होते हैं। तैयार कम्पोस्ट को खेत में डालने से कार्बनिक पदार्थ और पोषक तत्व मृदा में वापस पहुँचते हैं।

7. पराली से कम्पोस्ट बनाने की वैज्ञानिक विधि- पराली से कम्पोस्ट बनाना अपेक्षाकृत सरल और कम लागत वाली तकनीक है।

चरण 1- पराली का संग्रह- धान, गेहूँ या अन्य फसल की कटाई के बाद उपलब्ध पराली को एकत्र किया जाता है। यदि संभव हो तो पराली को छोटे टुकड़ों में काटना उपयोगी रहता है। छोटे टुकड़े होने पर सूक्ष्मजीवों के लिए सतह क्षेत्र बढ़ता है और अपघटन अपेक्षाकृत तेजी से हो सकता है।

चरण 2- उचित स्थान का चयन- कम्पोस्ट बनाने के लिए छायादार या अर्ध-छायादार स्थान चुना जा सकता है, जहाँ पानी का जमाव न हो और अतिरिक्त नमी निकलने की व्यवस्था हो।

चरण 3-सामग्री की परत बनाना- पराली की एक परत बिछाकर उसके ऊपर गोबर या अन्य आसानी से विघटित होने वाले जैविक पदार्थ की परत डाली जा सकती है। आवश्यकता के अनुसार अन्य जैविक पदार्थ भी मिलाए जा सकते हैं। इस प्रकार परत-दर-परत ढेर बनाया जाता है।

चरण 4- नमी बनाए रखना- कम्पोस्टिंग में पर्याप्त नमी आवश्यक होती है। ढेर को बहुत अधिक सूखने नहीं देना चाहिए और अत्यधिक पानी भरने से भी बचना चाहिए।

चरण 5- सूक्ष्मजीवी अपघटन- सूक्ष्मजीव जैविक पदार्थ को तोड़ना शुरू करते हैं। इस दौरान तापमान बढ़ सकता



है। पर्याप्त वायु उपलब्ध कराने के लिए समय-समय पर ढेर को पलटना उपयोगी होता है।

चरण 6- कम्पोस्ट का पकना—कुछ समय बाद पराली का मूल स्वरूप काफी हद तक समाप्त हो जाता है और पदार्थ गहरे रंग का, भुरभुरा तथा अपेक्षाकृत स्थिर हो जाता है। यह तैयार कम्पोस्ट का संकेत है।

8. जैविक अपघटक सूक्ष्मजीवों का उपयोग—पाराली के अपघटन को तेज करने के लिए उपयुक्त decomposer microorganisms का उपयोग किया जा सकता है। ये सूक्ष्मजीव फसल अवशेषों में उपस्थित सेल्यूलोज, हेमिसेल्यूलोज तथा अन्य कार्बनिक पदार्थों के विघटन में सहायता करते हैं। कुछ जैविक अपघटक उत्पादों में उपयोगी सूक्ष्मजीवों के मिश्रण होते हैं। इनके प्रयोग में हमेशा संबंधित उत्पाद के लेबल, अनुशंसित मात्रा और तकनीकी निर्देशों का पालन करना चाहिए। जैविक अपघटक का प्रयोग उचित नमी, तापमान और वायुसंचार की स्थिति में अधिक प्रभावी हो सकता है।

9. वर्मी-कम्पोस्ट द्वारा पराली का उपयोग—वर्मी-कम्पोस्टिंग एक ऐसी जैविक प्रक्रिया है जिसमें केंचुओं और सूक्ष्मजीवों की सहायता से जैविक पदार्थों को उच्च गुणवत्ता वाले कम्पोस्ट में परिवर्तित किया जाता है। पराली को सीधे बड़ी मात्रा में केंचुओं को देने के बजाय पहले उसे आंशिक रूप से विघटित करना उचित होता है। इसके बाद उपयुक्त जैविक पदार्थों के साथ इसे वर्मी-बेड में उपयोग किया जा सकता है। वर्मी-कम्पोस्ट की सामान्य प्रक्रिया पराली को छोटे टुकड़ों में काटें। उसे कुछ समय तक पूर्व-विघटन के लिए रखें। आंशिक रूप से विघटित पदार्थ को गोबर/अन्य जैविक पदार्थों के साथ मिलाएं। उपयुक्त नमी बनाए रखें। स्वस्थ केंचुओं को वर्मी-बेड में डालें। सीधी तेज धूप एवं अत्यधिक पानी से बचाएं। पर्याप्त समय बाद तैयार वर्मी-कम्पोस्ट को अलग करें। तैयार वर्मी-कम्पोस्ट का उपयोग खेत, बागवानी एवं नर्सरी में किया जा सकता है।

10. खेत में फसल अवशेषों को मिलाने की विधि
फसल अवशेषों को खेत में ही मिलाना भी एक प्रभावी विकल्प है। इसके लिए उपयुक्त कृषि यंत्रों का प्रयोग किया जा सकता है। धान की पराली के संदर्भ में हैपी सीडर, सुपर सीडर, स्ट्रॉ मैनेजमेंट सिस्टम जैसे यांत्रिक विकल्पों का उपयोग क्षेत्रीय परिस्थितियों और उपलब्धता के अनुसार किया जा सकता है।

खेत में अवशेष बनाए रखने से मृदा की सतह ढकी रहती है, जिससे—

वाष्पीकरण कम हो सकता है, मृदा तापमान में उतार-चढ़ाव कम हो सकता है, मृदा अपरदन कम हो सकता है, जैविक पदार्थ की मात्रा बढ़ सकती है।

11. मल्टिचिंग के रूप में पराली का उपयोग—पाराली को काटकर मल्टिच के रूप में उपयोग किया जा सकता है। विशेष रूप से सब्जियों, बागवानी तथा कुछ फसलों में जैविक मल्टिच उपयोगी हो सकता है।

मल्टिच की परत मृदा की सतह को ढकती है और इससे— मृदा की नमी संरक्षण, खरपतवारों का दमन, तापमान नियंत्रण, मृदा अपरदन में कमी जैसे लाभ प्राप्त हो सकते हैं।

12. फसल अवशेष और मृदा जैविक कार्बन—मृदा में जैविक कार्बन मृदा स्वास्थ्य का महत्वपूर्ण घटक है। फसल अवशेषों को जलाने के बजाय मिट्टी में वापस लौटाने से कार्बनिक पदार्थ के पुनर्चक्रण में योगदान मिलता है।

मृदा जैविक कार्बन— मृदा संरचना, जलधारण क्षमता, सूक्ष्मजीवी गतिविधि, पोषक तत्व चक्रण को प्रभावित करता है। इसलिए फसल अवशेष प्रबंधन को मृदा कार्बन प्रबंधन का महत्वपूर्ण हिस्सा माना जा सकता है।

13. फसल अवशेष और पोषक तत्व प्रबंधन—फसल अवशेषों में विभिन्न पोषक तत्व होते हैं। जब अवशेषों का अपघटन होता है तो पोषक तत्व धीरे-धीरे उपलब्ध रूप में परिवर्तित हो सकते हैं। हालांकि, सभी पोषक तत्वों की उपलब्धता एक समान गति से नहीं होती। इसलिए फसल अवशेषों के उपयोग के साथ फसल की आवश्यकता के अनुसार रासायनिक एवं जैविक उर्वरकों का संतुलित उपयोग करना चाहिए।

फसल अवशेष प्रबंधन + मृदा परीक्षण + संतुलित उर्वरक उपयोग = बेहतर पोषक तत्व प्रबंधन

14. पराली प्रबंधन में सावधानियाँ—पाराली से जैविक खाद बनाते समय कुछ महत्वपूर्ण बातों का ध्यान रखना चाहिए—

बहुत अधिक गीली सामग्री का उपयोग न करें। ढेर में पर्याप्त वायुसंचार बनाए रखें। समय-समय पर कम्पोस्ट को पलटें। अत्यधिक सूखने पर उचित मात्रा में पानी दें। प्लास्टिक, धातु एवं अन्य गैर-जैविक पदार्थों को अलग करें। रोगग्रस्त अवशेषों का उपयोग सावधानीपूर्वक करें। कम्पोस्ट पूरी तरह तैयार होने के बाद ही खेत में उपयोग करें। जैविक अपघटक उत्पादों का प्रयोग निर्धारित निर्देशों के अनुसार करें।

15. किसानों के लिए आर्थिक लाभ

फसल अवशेषों का वैज्ञानिक उपयोग किसान के लिए आर्थिक रूप से भी लाभकारी हो सकता है। यदि किसान पराली को जलाने के बजाय कम्पोस्ट बनाता है तो उसे खेत के लिए जैविक पदार्थ प्राप्त होता है। इससे बाहर से जैविक खाद खरीदने की आवश्यकता कुछ हद तक कम हो सकती है। इसके अतिरिक्त, वर्मी-कम्पोस्ट, जैविक खाद, पशु चारा, मशरूम उत्पादन या अन्य उपयोगों के माध्यम से फसल अवशेष अतिरिक्त आय का स्रोत बन सकते हैं। इस प्रकार कचरे को संसाधन में बदलना ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूत करने की दिशा में महत्वपूर्ण कदम है।

16. सतत कृषि में फसल अवशेष प्रबंधन की भूमिका— सतत कृषि का उद्देश्य प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण करते हुए लंबे समय तक उत्पादकता बनाए रखना है। फसल अवशेषों का वैज्ञानिक प्रबंधन इस उद्देश्य को प्राप्त करने में महत्वपूर्ण योगदान देता है।

इसके माध्यम से— अवशेष * जैविक पदार्थ * कम्पोस्ट * मृदा में वापसी * पोषक तत्व पुनर्चक्रण * मृदा स्वास्थ्य में सुधार * टिकाऊ उत्पादन का चक्र विकसित किया जा सकता है। यह कृषि प्रणाली में बाहरी संसाधनों पर निर्भरता को कम करने और प्राकृतिक संसाधनों के बेहतर उपयोग में सहायता कर सकता है।

17. फसल अवशेष प्रबंधन की एकीकृत रणनीति— किसी एक विधि पर निर्भर रहने के बजाय स्थानीय

परिस्थितियों के अनुसार कई विधियों का संयोजन अधिक प्रभावी हो सकता है।

खेत स्तर पर एकीकृत मॉडल—कटाई * अवशेषों का उचित संग्रह/श्रेडिंग * खेत में अवशेष प्रबंधन या कम्पोस्टिंग * जैविक अपघटन * तैयार कम्पोस्ट/मल्टिच * मृदा में वापसी इसके साथ फसल चक्र, संतुलित पोषक तत्व प्रबंधन और संरक्षण कृषि को जोड़ने से बेहतर परिणाम प्राप्त किए जा सकते हैं।

18. भविष्य की संभावनाएँ— फसल अवशेष प्रबंधन में आधुनिक तकनीकों की भूमिका तेजी से बढ़ रही है। कृषि यंत्रों की सहायता से खेत में अवशेषों का प्रबंधन करना आसान हो रहा है। जैविक अपघटक, कम्पोस्टिंग तकनीक, वर्मी-कम्पोस्ट, बायोचार तथा जैव-ऊर्जा जैसे विकल्प किसानों को पराली के वैकल्पिक उपयोग उपलब्ध करा रहे हैं। भविष्य में स्थानीय स्तर पर फसल अवशेष आधारित कम्पोस्ट इकाइयाँ, सामुदायिक मशीनरी बैंक तथा किसान उत्पादक संगठनों के माध्यम से अवशेषों के सामूहिक प्रबंधन को बढ़ावा दिया जा सकता है।

19. किसानों के लिए उपयोगी सुझाव

किसानों को निम्न बातों को अपनाना चाहिए—

पाराली को खेत में न जलाएं। कटाई के बाद अवशेषों को उचित तरीके से प्रबंधित करें। उपलब्धता के अनुसार अवशेषों को मिट्टी में मिलाएं। जैविक अपघटक का वैज्ञानिक उपयोग करें। पराली से कम्पोस्ट तैयार करें। आंशिक रूप से विघटित पराली से वर्मी-कम्पोस्ट तैयार करें। खेत में जैविक मल्टिच के रूप में उपयोग करें। पशुपालन से जुड़ी प्रणालियों में उपयुक्त अवशेषों का चारा/बिछावन के रूप में उपयोग करें। फसल अवशेषों को मूल्यवर्धित उत्पादों में बदलने की संभावनाएँ तलाशें।

मृदा परीक्षण के आधार पर पोषक तत्व प्रबंधन करें।

20. निष्कर्ष— फसल अवशेष और पराली कृषि के लिए बोज़ नहीं बल्कि एक महत्वपूर्ण जैविक संसाधन हैं। इनके उचित प्रबंधन से पर्यावरण संरक्षण, मृदा स्वास्थ्य सुधार, पोषक तत्व पुनर्चक्रण और कृषि की टिकाऊ उत्पादकता में महत्वपूर्ण योगदान दिया जा सकता है। पराली जलाने से होने वाले वायु प्रदूषण और मृदा स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभावों को देखते हुए किसानों को वैकल्पिक एवं वैज्ञानिक अवशेष प्रबंधन तकनीकों को अपनाना चाहिए। पराली को छोटे टुकड़ों में काटकर खेत में मिलाना, मल्टिच के रूप में उपयोग करना, कम्पोस्ट तथा वर्मी-कम्पोस्ट बनाना, जैविक अपघटक का उपयोग करना और उपलब्ध परिस्थितियों के अनुसार अन्य मूल्यवर्धित उपयोग अपनाना उपयोगी विकल्प हैं। फसल अवशेषों के कम्पोस्टिंग द्वारा कार्बनिक पदार्थ और पोषक तत्वों को पुनः मृदा में लौटाया जा सकता है। इससे मृदा की संरचना, जलधारण क्षमता और जैविक गतिविधियों में सुधार के साथ-साथ मृदा स्वास्थ्य को बनाए रखने में सहायता मिलती है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि किसानों को पराली जलाने के बजाय "पाराली से खाद, खेत की सेहत आबाद" की सोच अपनाने के लिए प्रोत्साहित किया जाए। वैज्ञानिक फसल अवशेष प्रबंधन को फसल उत्पादन प्रणाली का नियमित हिस्सा बनाकर कृषि को अधिक पर्यावरण-अनुकूल, आर्थिक और टिकाऊ बनाया जा सकता है।



परागण करने वाले कीटों का कृषि उत्पादन एवं जैव विविधता में महत्व

सुधांशु बालियान Ph.D. Research
Scholar, Department of Entomology,
College of Agriculture, GBPUAT,
Pantnagar, Uttarakhand 263145

डॉ. प्रमोद मल्ल Professor,
Department of Entomology, College of
Agriculture, GBPUAT, Pantnagar,
Uttarakhand 263145

सारांश-कृषि उत्पादन में परागण करने वाले कीटों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। पृथ्वी पर पाई जाने वाली अनेक पुष्पीय वनस्पतियों में लैंगिक प्रजनन एवं बीज निर्माण के लिए परागण आवश्यक प्रक्रिया है। परागणों का पुंकेसर से वर्तिकाग्र तक स्थानांतरण विभिन्न माध्यमों से होता है, जिनमें कीटों का योगदान सबसे महत्वपूर्ण माना जाता है। मधुमक्खियाँ, भौंरा, तितलियाँ, पतंगे, कुछ मक्खियाँ, भृंग तथा अन्य कीट विभिन्न फसलों और जंगली पौधों के परागण में योगदान देते हैं। विशेष रूप से फल, सब्जी, तिलहन तथा बीज वाली फसलों में प्रभावी परागण सीधे तौर पर उपज, फल-सेट, बीज संख्या, फल के आकार और गुणवत्ता को प्रभावित कर सकता है।

परागण करने वाले कीट केवल कृषि उत्पादन बढ़ाने तक सीमित नहीं हैं, बल्कि वे प्राकृतिक पारिस्थितिकी तंत्र में पौधों के प्रजनन, जैव विविधता के संरक्षण तथा खाद्य श्रृंखला की स्थिरता में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। आधुनिक कृषि में कीटनाशकों का अनियंत्रित प्रयोग, प्राकृतिक आवासों का विनाश, कृषि भूमि का एकरूपीकरण, जलवायु परिवर्तन, फूलों की उपलब्धता में कमी तथा विभिन्न रोग एवं परजीवी परागण कीटों की आबादी के लिए चुनौती बन रहे हैं। इसलिए परागणकर्ता संरक्षण को कृषि प्रबंधन का अभिन्न हिस्सा बनाना आवश्यक है। खेतों में फूलदार पौधों की पट्टियाँ, प्राकृतिक आवासों का संरक्षण, कीटनाशकों का विवेकपूर्ण एवं आवश्यकता-आधारित उपयोग, मधुमक्खी पालन और किसान जागरूकता जैसे उपाय अपनाकर परागणकर्ता कीटों की संख्या और विविधता को बढ़ाया जा सकता है। टिकाऊ कृषि एवं खाद्य सुरक्षा की दृष्टि से परागणकर्ता संरक्षण भविष्य की कृषि रणनीति का महत्वपूर्ण आधार है।

मुख्य शब्द- परागण, परागणकर्ता कीट, मधुमक्खी, भौंरा, तितली, कृषि उत्पादन, जैव विविधता, टिकाऊ कृषि।

1. प्रस्तावना-कृषि उत्पादन केवल मिट्टी, पानी, उर्वरक और बीज पर निर्भर नहीं करता, बल्कि अनेक जैविक प्रक्रियाएँ भी फसल उत्पादन में महत्वपूर्ण योगदान देती हैं। इनमें परागण एक प्रमुख प्राकृतिक प्रक्रिया है। परागण के माध्यम से पौधों में निषेचन और बीज निर्माण की प्रक्रिया आगे बढ़ती है। अनेक पौधों में परागण हवा, पानी या अन्य माध्यमों से हो सकता है, लेकिन बड़ी संख्या में पुष्पीय पौधों में जीव-जंतु, विशेषकर कीट, परागण के

प्रमुख माध्यम होते हैं। जब कोई मधुमक्खी, भौंरा या तितली फूलों पर रस एवं पराग एकत्र करने के लिए जाती है, तो परागण उसके शरीर के विभिन्न भागों पर चिपक जाते हैं। जब वही कीट किसी दूसरे फूल पर जाता है, तो ये परागण वर्तिकाग्र पर पहुंच जाते हैं। इस प्रकार परागण की प्रक्रिया पूरी होती है।

कृषि की दृष्टि से इसका महत्व इसलिए बढ़ जाता है क्योंकि अनेक फल, सब्जी, तिलहन और बीज वाली फसलों में पर्याप्त एवं प्रभावी परागण होने पर फल एवं बीज उत्पादन बेहतर होता है। उदाहरण के लिए सरसों, सूरजमुखी, कद्दूवर्गीय सब्जियाँ, सेब, नाशपाती, आड़ू, बेर, आम की कुछ परिस्थितियाँ, स्ट्रॉबेरी तथा अनेक अन्य फसलों में परागणकर्ता कीट महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। आज कृषि में उत्पादन बढ़ाने की आवश्यकता के साथ-साथ जैव विविधता एवं पर्यावरण संरक्षण भी महत्वपूर्ण हो गया है। ऐसे में परागणकर्ता कीट कृषि और प्राकृतिक पारिस्थितिकी तंत्र के बीच एक महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में कार्य करते हैं।



2. परागण की अवधारणा-परागण का अर्थ है परागणों का पुंकेसर के परागकोष से वर्तिकाग्र तक स्थानांतरण। इसके बाद अनुकूल परिस्थितियों में परागण अंकुरित होते हैं और निषेचन की प्रक्रिया आगे बढ़ती है।

परागण मुख्यतः दो प्रकार का होता है—

2.1 स्वपरागण-जब एक ही फूल या उसी पौधे के फूलों के बीच परागणों का स्थानांतरण होता है, तो इसे स्वपरागण कहा जाता है। गेहूँ, चावल और मटर जैसी कुछ फसलों में स्वपरागण महत्वपूर्ण है।

2.2 परपरागण-जब परागण एक पौधे के फूल से उसी प्रजाति के दूसरे पौधे के फूल तक पहुंचते हैं, तो इसे परपरागण कहा जाता है। परपरागण से आनुवंशिक विविधता बढ़ती है और इसमें कीटों की भूमिका विशेष रूप से महत्वपूर्ण हो सकती है।

3. परागण करने वाले प्रमुख कीट-परागणकर्ता कीटों में कई प्रकार के कीट शामिल हैं। इनमें प्रमुख हैं—

3.1 मधुमक्खियाँ-मधुमक्खियाँ सबसे महत्वपूर्ण परागणकर्ता कीटों में से एक हैं। मधुमक्खियाँ फूलों से मकरंद और परागण एकत्र करती हैं। फूलों पर उनकी बार-बार आवाजाही के कारण बड़ी मात्रा में परागण एक फूल से दूसरे फूल तक पहुंचते हैं। शहद मधुमक्खी, भारतीय मधुमक्खी, रॉक बी और छोटी मधुमक्खी जैसी विभिन्न मधुमक्खियाँ कृषि एवं प्राकृतिक वनस्पतियों के परागण में योगदान देती हैं। मधुमक्खियों का महत्व केवल परागण तक सीमित नहीं है। मधुमक्खी पालन से शहद, मोम तथा अन्य मधुमक्खी उत्पाद भी प्राप्त होते हैं, जिससे किसानों की अतिरिक्त आय का स्रोत विकसित हो सकता है।

3.2 भौंरे-भौंरे बड़े आकार के और प्रभावी परागणकर्ता हैं। इनके शरीर पर घने बाल होते हैं, जिन पर परागण आसानी से चिपक जाते हैं। कई भौंरे कम तापमान या अपेक्षाकृत प्रतिकूल

मौसम में भी सक्रिय रह सकते हैं।

टमाटर जैसी कुछ फसलों में भौंरों की विशेष उपयोगिता देखी जाती है, क्योंकि इनके द्वारा किए जाने वाले कंपन आधारित परागण से फूलों से परागण निकलने में सहायता मिल सकती है।

3.3 तितलियाँ- तितलियाँ फूलों के मकरंद पर निर्भर करती हैं। इनके द्वारा एक फूल से दूसरे फूल तक जाने से परागणों का स्थानांतरण हो सकता है। तितलियाँ विशेष रूप से खुले और चमकीले फूलों की ओर आकर्षित होती हैं।

तितलियों की विविधता किसी क्षेत्र में पौधों एवं आवास की पारिस्थितिक स्थिति का संकेत भी दे सकती है।

3.4 पतंगे- कुछ पतंगे रात्रि में सक्रिय रहते हैं और रात में खिलने वाले फूलों के परागण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। इसलिए परागणकर्ता संरक्षण में केवल दिन में सक्रिय कीटों पर ध्यान देना पर्याप्त नहीं है।

3.5 फूल मक्खियाँ- फूल मक्खियाँ या Syrphid flies कई फूलों पर आती हैं और मकरंद एवं पराग का सेवन करती हैं। इनके वयस्क परागण में योगदान दे सकते हैं। कुछ फूल मक्खियों की लार्वा अवस्था माहू जैसे कीटों को खाकर प्राकृतिक कीट नियंत्रण में भी योगदान देती है।

3.6 भृंग-कुछ भृंग फूलों पर जाकर परागण और अन्य पुष्पीय भागों को खाते हैं। इनके द्वारा भी पराग का स्थानांतरण हो सकता है। कुछ पौधों के लिए भृंग महत्वपूर्ण परागणकर्ता होते हैं।

4. कृषि उत्पादन में परागणकर्ता कीटों का महत्व

4.1 फल बनने में योगदान- प्रभावी परागण के बिना अनेक फसलों में पर्याप्त फल-सेट नहीं हो पाता। परागण के बाद निषेचन की प्रक्रिया आगे बढ़ती है और फल का विकास शुरू होता है।

यदि फूलों पर पर्याप्त परागण न हो तो— फल-सेट कम हो सकता है, फल गिर सकते हैं, फल का आकार असमान हो सकता है, बीजों की संख्या कम हो सकती है, उत्पादन एवं गुणवत्ता प्रभावित हो सकती है। इसलिए फल उत्पादन में परागणकर्ता कीटों का संरक्षण आवश्यक है।

4.2 तिलहनी फसलों में भूमिका-सरसों, सूरजमुखी, तिल आदि फसलों में परागण की प्रक्रिया फसल की उत्पादकता को प्रभावित कर सकती है। विशेष रूप से सरसों में मधुमक्खियों की सक्रियता फूलों के बीच पराग स्थानांतरण को बढ़ा सकती है। मधुमक्खियों की उपस्थिति से कुछ परिस्थितियों में बीज संख्या, फलियों की संख्या तथा बीज उत्पादन में सकारात्मक प्रभाव देखा जा सकता है।

4.3 सब्जी उत्पादन में महत्व-कद्दूवर्गीय फसलों जैसे-खीरा, कद्दू, लौकी, तोरई, केला, तरबूज, खरबूजा में कीट परागण महत्वपूर्ण हो सकता है। इन फसलों में नर और मादा फूल अलग-अलग होते हैं। इसलिए परागणों का नर फूल से मादा फूल तक स्थानांतरण आवश्यक होता है। मधुमक्खियाँ इस प्रक्रिया में महत्वपूर्ण योगदान देती हैं।

4.4 बीज उत्पादन में भूमिका-कई फसलों के गुणवत्तापूर्ण बीज उत्पादन में प्रभावी परागण आवश्यक होता है। विशेष रूप



से संकर बीज उत्पादन में नियंत्रित एवं प्रभावी परागण अत्यंत महत्वपूर्ण है। परागणकर्ता कीटों की गतिविधि को ध्यान में रखकर बीज उत्पादन कार्यक्रमों में उचित प्रबंधन रणनीति अपनाई जाती है।

4.5 फल की गुणवत्ता—परागण केवल फल बनने को ही प्रभावित नहीं करता, बल्कि कई फसलों में फल के आकार, बीज विकास और समरूपता पर भी प्रभाव डाल सकता है। पर्याप्त परागण से अधिक समान आकार एवं बेहतर गुणवत्ता वाले फल प्राप्त होने की संभावना बढ़ती है।

5. जैव विविधता में परागणकर्ता कीटों का महत्व—परागणकर्ता कीट प्राकृतिक पारिस्थितिकी तंत्र के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। जंगली पौधों की अनेक प्रजातियाँ अपने प्रजनन के लिए कीटों पर निर्भर रहती हैं।

5.1 पौधों की प्रजातियों का संरक्षण—यदि परागणकर्ता उपलब्ध रहते हैं तो पौधों में सफल परागण एवं बीज निर्माण की संभावना बढ़ती है। इससे प्राकृतिक वनस्पतियों का पुनरुत्पादन बना रहता है।

5.2 आनुवंशिक विविधता—परपरागण से पौधों की आबादी में आनुवंशिक विविधता बनी रहती है। आनुवंशिक विविधता पौधों की बदलती पर्यावरणीय परिस्थितियों के प्रति अनुकूलन क्षमता के लिए महत्वपूर्ण है।

5.3 खाद्य श्रृंखला का संरक्षण—कीट स्वयं भी कई पक्षियों, उभयचरों, सरीसृपों और अन्य जीवों के भोजन का हिस्सा होते हैं। इसलिए परागणकर्ता कीटों की आबादी में कमी का प्रभाव खाद्य जाल के अन्य स्तरों पर भी पड़ सकता है।

6. परागणकर्ता कीटों के सामने प्रमुख खतरे—आज विभिन्न मानवीय एवं पर्यावरणीय कारणों से परागणकर्ता कीटों के प्राकृतिक आवास और भोजन स्रोत प्रभावित हो रहे हैं।

6.1 कीटनाशकों का अनियंत्रित प्रयोग—परागणकर्ता कीटों के लिए सबसे महत्वपूर्ण चिंताओं में से एक कीटनाशकों का अनुचित प्रयोग है। विशेष रूप से फूलों पर सक्रिय मधुमक्खियों के समय व्यापक-स्पेक्ट्रम कीटनाशकों का प्रयोग इनके लिए जोखिम पैदा कर सकता है। इसलिए फूल आने के समय कीटनाशक उपयोग में विशेष सावधानी आवश्यक है।

6.2 प्राकृतिक आवासों का विनाश—वन, घासभूमि, झाड़ियाँ और प्राकृतिक वनस्पति परागणकर्ताओं को भोजन, आश्रय और प्रजनन स्थल उपलब्ध कराते हैं। इन आवासों के नष्ट होने से परागणकर्ता कीटों की विविधता और संख्या प्रभावित हो सकती है।

6.3 कृषि भूमि का एकरूपीकरण—एक ही फसल का बड़े क्षेत्र में लगातार उत्पादन करने से पूरे वर्ष फूलों की विविधता और निरंतरता कम हो सकती है। इससे परागणकर्ता कीटों के लिए भोजन की उपलब्धता सीमित हो सकती है।

6.4 जलवायु परिवर्तन—तापमान, वर्षा और मौसम की अवधि में परिवर्तन फूल आने के समय तथा कीटों की सक्रियता को प्रभावित कर सकते हैं। यदि पौधे में फूल आने और परागणकर्ता की सक्रियता के समय में असंगति उत्पन्न हो जाए, तो परागण की प्रक्रिया प्रभावित हो सकती है।

6.5 रोग एवं परजीवी—मधुमक्खियों और अन्य परागणकर्ता कीटों को विभिन्न रोगों एवं परजीवियों का सामना करना पड़ सकता है। मधुमक्खी कॉलोनी में रोग एवं परजीवी संक्रमण उसकी कार्यक्षमता को प्रभावित कर सकते हैं।

7. परागणकर्ता संरक्षण के उपाय

7.1 फूलदार पौधों का संरक्षण—खेतों की मेड़ों, खाली स्थानों तथा आसपास के क्षेत्रों में विभिन्न फूलदार पौधों को संरक्षित किया जा सकता है। इससे परागणकर्ताओं को अतिरिक्त भोजन स्रोत मिलते हैं।

7.2 फूलों की निरंतर उपलब्धता—ऐसी पौध प्रजातियों का चयन किया जा सकता है जिनमें अलग-अलग समय पर फूल आते हों। इससे परागणकर्ताओं को लंबे समय तक मकरंद और पराग उपलब्ध कराया जा सकता है।

7.3 कीटनाशकों का विवेकपूर्ण उपयोग—कीटनाशकों का प्रयोग केवल आवश्यकता होने पर किया जाना चाहिए। फूल आने के दौरान छिड़काव से बचना या उपयुक्त समय का चयन करना परागणकर्ता संरक्षण में महत्वपूर्ण हो सकता है। कीटनाशक का चयन करते समय उसकी गैर-लक्षित जीवों पर संभावित विषाक्तता और लेबल पर दिए निर्देशों को ध्यान में रखना चाहिए।

7.4 एकीकृत कीट प्रबंधन—एकीकृत कीट प्रबंधन (IPM) अपनाने से रासायनिक कीटनाशकों पर निर्भरता कम की जा सकती है। इसमें निगरानी, जैविक नियंत्रण, सांस्कृतिक नियंत्रण, यांत्रिक नियंत्रण तथा आवश्यकता-आधारित रासायनिक नियंत्रण शामिल हैं।

7.5 मधुमक्खी पालन को बढ़ावा—कृषि क्षेत्र के आसपास वैज्ञानिक मधुमक्खी पालन को बढ़ावा देने से परागण सेवा और अतिरिक्त आय दोनों प्राप्त हो सकते हैं। फसल के फूल आने के समय मधुमक्खी कॉलोनियों का उचित प्रबंधन प्रभावी परागण में सहायक हो सकता है।

8. किसान और परागणकर्ता कीट—किसानों को यह समझना आवश्यक है कि खेत में दिखाई देने वाला प्रत्येक कीट हानिकारक नहीं होता। कुछ कीट फसल को नुकसान पहुंचाने के बजाय महत्वपूर्ण पारिस्थितिक सेवाएँ प्रदान करते हैं। इसलिए किसी भी कीट को देखकर तुरंत कीटनाशक का प्रयोग करना उचित नहीं है। कीट की सही पहचान, उसकी आर्थिक स्थिति और प्राकृतिक शत्रुओं तथा परागणकर्ताओं की उपस्थिति का मूल्यांकन किया जाना चाहिए।

किसानों को प्रशिक्षण देकर यह बताया जाना चाहिए कि— कौन से कीट परागणकर्ता हैं, कौन से कीट हानिकारक हैं, कौन से कीट प्राकृतिक शत्रु हैं, किस समय कीटनाशक का प्रयोग नहीं करना चाहिए, और किस परिस्थिति में रासायनिक नियंत्रण आवश्यक है।

9. टिकाऊ कृषि में परागणकर्ता संरक्षण—टिकाऊ कृषि का उद्देश्य केवल वर्तमान उत्पादन बढ़ाना नहीं है, बल्कि प्राकृतिक संसाधनों और जैव विविधता को सुरक्षित रखते हुए लंबे समय तक उत्पादन बनाए रखना है। परागणकर्ता संरक्षण इस लक्ष्य को प्राप्त करने में सहायता करता है। खेत में विविध फसलें, फूलदार पौधे, प्राकृतिक वनस्पति, जैविक नियंत्रण एजेंट और सीमित रासायनिक हस्तक्षेप कृषि पारिस्थितिकी तंत्र को अधिक संतुलित बना सकते हैं। फसल विविधीकरण + फूलदार पौधों का संरक्षण + IPM + मधुमक्खी पालन + प्राकृतिक आवास संरक्षण = परागणकर्ता अनुकूल टिकाऊ कृषि

10. आधुनिक कृषि में परागण सेवाओं का प्रबंधन—आधुनिक कृषि में परागण को केवल प्राकृतिक प्रक्रिया मानकर छोड़ने के बजाय इसे एक महत्वपूर्ण ecosystem service के रूप में समझना आवश्यक है।

बड़े पैमाने पर फल एवं सब्जी उत्पादन, संरक्षित खेती तथा

बीज उत्पादन में परागण प्रबंधन का महत्व बढ़ रहा है। संरक्षित खेती में प्राकृतिक परागणकर्ता सीमित हो सकते हैं, इसलिए उपयुक्त परिस्थितियों में प्रबंधित परागणकर्ता, जैसे भौरे या मधुमक्खियाँ, उपयोगी हो सकते हैं। हालांकि प्रत्येक फसल एवं उत्पादन प्रणाली के लिए अलग-अलग परागण आवश्यकताएँ होती हैं। इसलिए फसल की प्रजाति, फूलों की संरचना, तापमान, आर्द्रता और परागणकर्ता की सक्रियता को ध्यान में रखकर प्रबंधन करना चाहिए।

11. परागणकर्ता अनुकूल कृषि के लिए व्यावहारिक रणनीति

किसान निम्न रणनीति अपना सकते हैं—

खेत स्तर पर, खेत की मेड़ों पर फूलदार पौधों को संरक्षित करें। अनावश्यक खरपतवारनाशी एवं कीटनाशक प्रयोग से बचें। फूल आने के समय कीटनाशक छिड़काव से बचने का प्रयास करें। कीट निगरानी नियमित रूप से करें। IPM को अपनाएं। प्राकृतिक शत्रुओं और परागणकर्ताओं की पहचान करें। मधुमक्खी पालन को कृषि प्रणाली से जोड़ें। जल स्रोतों एवं आश्रय स्थलों का संरक्षण करें। फसल विविधीकरण अपनाएं। स्थानीय कृषि विशेषज्ञों की सलाह के अनुसार कीटनाशक का प्रयोग करें।

12. परागणकर्ता संरक्षण में जैव विविधता की भूमिका—जितनी अधिक पौध विविधता होगी, उतने अधिक प्रकार के परागणकर्ता कीटों को भोजन और आवास मिल सकते हैं। विविध कृषि परिदृश्य में अलग-अलग समय पर फूल उपलब्ध होने से परागणकर्ताओं की आबादी को वर्ष के अधिक समय तक भोजन मिल सकता है। फूलदार मेड़, खेत की सीमाओं पर वनस्पति, छोटे जैव-विविधता क्षेत्र, बागों में विविध पौधे तथा प्राकृतिक आवासों का संरक्षण परागणकर्ता अनुकूल कृषि परिदृश्य तैयार करने में उपयोगी हो सकते हैं।

13. भविष्य की संभावनाएँ—भविष्य की कृषि में परागणकर्ता संरक्षण का महत्व और बढ़ने की संभावना है। बढ़ती खाद्य मांग, जलवायु परिवर्तन और जैव विविधता में कमी के बीच कृषि उत्पादन को अधिक पारिस्थितिक रूप से संतुलित बनाना आवश्यक होगा। डिजिटल कृषि एवं आधुनिक निगरानी तकनीकों का उपयोग करके फूलों की अवस्था, कीट गतिविधि और फसल की स्थिति का बेहतर आकलन किया जा सकता है। मधुमक्खी पालन को फसल उत्पादन के साथ जोड़ना किसानों की आय बढ़ाने का माध्यम भी बन सकता है। कृषि अनुसंधान में ऐसे फसल एवं प्रबंधन मॉडल विकसित किए जाने चाहिए जो उच्च उत्पादन के साथ परागणकर्ताओं के लिए भी सुरक्षित हों।

14. निष्कर्ष—परागण करने वाले कीट कृषि उत्पादन और जैव विविधता दोनों के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण प्राकृतिक संसाधन हैं। मधुमक्खियाँ, भौरे, तितलियाँ, पतंगें, फूल मक्खियाँ और अन्य कीट अनेक पौधों में परागण की प्रक्रिया को सफल बनाने में योगदान देते हैं। इनके द्वारा होने वाला प्रभावी परागण फल-सेट, बीज निर्माण, उपज तथा कुछ फसलों की गुणवत्ता को प्रभावित कर सकता है। दूसरी ओर, प्राकृतिक वनस्पतियों के संरक्षण और पौधों के प्रजनन में परागणकर्ता कीटों की भूमिका जैव विविधता को बनाए रखने में महत्वपूर्ण है। कीटनाशकों का अनियंत्रित प्रयोग, आवास विनाश, कृषि विविधता में कमी और जलवायु परिवर्तन इनके लिए प्रमुख चुनौतियाँ हैं।



आलू की वैज्ञानिक खेती एवं गुणवत्तापूर्ण उत्पादन की आधुनिक तकनीकें

डॉ. ओम प्रकाश रोलानिया शोधार्थी, श्री कर्ण नरेंद्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर, जयपुर

डॉ. बाबू लाल फगोडिया विषय विशेषज्ञ (पादप संरक्षण) कृषि विज्ञान केंद्र, दिल्ली

सारांश-आलू (*Solanum tuberosum* L.) भारत की प्रमुख कंद फसलों में से एक है और खाद्य एवं पोषण सुरक्षा के साथ-साथ किसानों की आय में भी महत्वपूर्ण योगदान देता है। इसकी खेती विभिन्न कृषि-जलवायु परिस्थितियों में की जाती है। आलू में कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, विटामिन B, पोटेसियम तथा अन्य पोषक तत्व पाए जाते हैं। इसके अलावा आलू चिप्स, फ्रेंच फ्राइज, स्टार्च तथा

अन्य प्रसंस्कृत उत्पादों के लिए महत्वपूर्ण कच्चा माल है। वैज्ञानिक खेती के अंतर्गत स्वस्थ एवं प्रमाणित बीज कंदों का चयन, उपयुक्त किस्म, मृदा परीक्षण, उचित भूमि तैयारी, संतुलित पोषक तत्व प्रबंधन, सही सिंचाई, उचित मेड़ एवं पौध दूरी, खरपतवार नियंत्रण, समेकित कीट एवं रोग प्रबंधन तथा वैज्ञानिक खुदाई एवं भंडारण महत्वपूर्ण हैं। वर्तमान समय में गुणवत्ता बीज उत्पादन, सूक्ष्म सिंचाई, मल्टिंग, यंत्रीकृत खुदाई, शीत भंडारण तथा ग्रेडिंग जैसी तकनीकों से उत्पादन एवं गुणवत्ता में सुधार किया जा सकता है। प्रस्तुत लेख में आलू की वैज्ञानिक खेती की प्रमुख तकनीकों, उत्पादन संबंधी समस्याओं तथा गुणवत्तापूर्ण उपज प्राप्त करने के उपायों का विस्तृत वर्णन किया गया है।

मुख्य शब्द: आलू, वैज्ञानिक खेती, बीज कंद, मृदा प्रबंधन, सिंचाई, पोषक तत्व, झुलसा रोग, बीज गुणवत्ता, भंडारण।

1. प्रस्तावना: आलू विश्व की महत्वपूर्ण खाद्य फसलों में शामिल है। भारत में भी यह एक प्रमुख सब्जी एवं कंद फसल के रूप में उगाया जाता है। आलू की विशेषता यह है कि इसकी फसल अपेक्षाकृत कम अवधि में तैयार हो जाती है और उचित प्रबंधन के साथ प्रति इकाई क्षेत्र अच्छी उपज प्राप्त की जा सकती है।

आलू का उपयोग घरों में सब्जी के रूप में करने के अलावा विभिन्न खाद्य प्रसंस्करण उद्योगों में किया जाता है। चिप्स, फ्रेंच फ्राइज, स्टार्च, फ्लेक्स तथा अन्य उत्पादों की बढ़ती मांग ने आलू को व्यावसायिक दृष्टि से महत्वपूर्ण बना दिया है। आलू की उपज एवं गुणवत्ता मुख्यतः बीज की गुणवत्ता, किस्म, तापमान, मिट्टी, पोषण, सिंचाई, रोग एवं कीट प्रबंधन तथा खुदाई के समय पर निर्भर करती है। विशेष रूप से उच्च गुणवत्ता वाले बीज कंदों का उपयोग आलू की सफल खेती की आधारशिला है।

2. आलू का आर्थिक एवं पोषण संबंधी महत्व

आलू में मुख्य रूप से स्टार्च के रूप में कार्बोहाइड्रेट पाया जाता है। इसके अलावा इसमें प्रोटीन, विटामिन B, पोटेसियम तथा अन्य पोषक तत्व भी होते हैं।

आलू का उपयोग— ताजी सब्जी, चिप्स, फ्रेंच फ्राइज, आलू फ्लेक्स, स्टार्च, प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थ के रूप में किया जाता है।

प्रसंस्करण उद्योग की आवश्यकताओं के अनुसार विभिन्न किस्मों का चयन किया जाता है। इस कारण आलू उत्पादन में टेबल पर्पज और प्रोसेसिंग पर्पज के बीच अंतर को समझना महत्वपूर्ण है।

3. जलवायु

आलू मुख्यतः ठंडी मौसम की फसल है। इसके कंद निर्माण के लिए अपेक्षाकृत ठंडा वातावरण अनुकूल रहता है।

अत्यधिक तापमान होने पर—

पौधों की वृद्धि प्रभावित हो सकती है। कंद बनने की प्रक्रिया प्रभावित हो सकती है। कंद का आकार एवं गुणवत्ता कम हो सकती है। कुछ शारीरिक विकार बढ़ सकते हैं।

इसलिए आलू की बुवाई/रोपाई का समय क्षेत्रीय तापमान के अनुसार निर्धारित करना चाहिए।

4. भूमि एवं मृदा का चयन: आलू के लिए भुरभुरी, उपजाऊ तथा अच्छी जल निकास वाली दोमट या बलुई दोमट मिट्टी उपयुक्त मानी जाती है। कंदों को मिट्टी के अंदर विकसित होने के लिए पर्याप्त जगह एवं भुरभुरी मिट्टी चाहिए। अत्यधिक कठोर मिट्टी कंदों के विकास एवं आकार को प्रभावित कर सकती है।

मृदा परीक्षण: बुवाई से पहले मिट्टी की जांच कराना वैज्ञानिक उत्पादन का महत्वपूर्ण हिस्सा है। इससे उपलब्ध पोषक तत्वों की स्थिति पता चलती है और उसी के आधार पर उर्वरक प्रबंधन किया जा सकता है।

5. भूमि की तैयारी: आलू के खेत की तैयारी अच्छी तरह करनी चाहिए। मिट्टी को पर्याप्त रूप से भुरभुरा बनाया जाना आवश्यक है।

भूमि तैयारी के दौरान—

खेत की उचित जुताई करें।
मिट्टी को भुरभुरा बनाएं।
अच्छी तरह सड़ी जैविक खाद का उपयोग करें।
खेत में जल निकास की उचित व्यवस्था करें।
उपयुक्त मेड़ एवं क्यारियां बनाएं।

खेत में बड़े ढेले रहने पर कंदों का आकार एवं आकारिकी प्रभावित हो सकती है।

6. उन्नत किस्म का चयन

आलू की किस्म का चयन उत्पादन के उद्देश्य के अनुसार करना चाहिए।

किस्म चयन करते समय—

उत्पादन क्षमता,
रोग प्रतिरोध या सहनशीलता,
कंद का आकार,
कंद का रंग, बाजार की मांग, भंडारण क्षमता, प्रसंस्करण की उपयुक्तता को ध्यान में रखना चाहिए।

टेबल आलू तथा चिप्स/फ्रेंच फ्राइज के लिए उपयुक्त किस्मों के गुण अलग-अलग हो सकते हैं।

7. गुणवत्तापूर्ण बीज कंद का महत्व— आलू में बीज के रूप में वास्तविक बीज की जगह सामान्यतः कंदों का प्रयोग किया जाता है। इसलिए बीज कंद की गुणवत्ता अत्यंत महत्वपूर्ण है।

स्वस्थ बीज कंद—

रोगों से मुक्त, अच्छी अंकुरण क्षमता वाले,
उचित आकार के,
आनुवंशिक रूप से शुद्ध,
उचित भंडारण से प्राप्त होने चाहिए।

रोगग्रस्त या कमजोर बीज कंदों से खेत में रोग तेजी से फैल सकते हैं तथा उत्पादन कम हो सकता है।

8. बीज कंद की तैयारी

बीज कंदों को रोपण से पहले अच्छी तरह छांटना चाहिए। सड़े, क्षतिग्रस्त एवं रोगग्रस्त कंदों को अलग कर देना चाहिए।

कुछ उत्पादन प्रणालियों में अंकुरित बीज कंद उपयोगी होते हैं। उचित अंकुरण से खेत में पौध स्थापना अधिक समान हो सकती है।

बीज कंदों की तैयारी करते समय स्थानीय अनुशंसाओं का पालन करना चाहिए।

9. बीज दर एवं कंद आकार

आलू की बीज दर किस्म, कंद के आकार तथा रोपण दूरी पर निर्भर करती है। बहुत छोटे या बहुत बड़े कंदों के उपयोग से उत्पादन प्रभावित हो सकता है।

बीज कंद का चयन करते समय एक समान आकार के स्वस्थ कंदों को प्राथमिकता देना उपयोगी होता है।

10. रोपण की उचित दूरी

आलू में पौध एवं कतार की उचित दूरी कंदों के आकार और संख्या को प्रभावित करती है।

बहुत अधिक घनी बुवाई से—

पौधों में प्रतिस्पर्धा बढ़ सकती है।
रोगों के लिए अनुकूल वातावरण बन सकता है।
वहीं बहुत अधिक दूरी से भूमि का पूरा उपयोग नहीं हो पाता।



इसलिए किस्म एवं उत्पादन प्रणाली के अनुसार अनुशंसित दूरी अपनानी चाहिए।

11. संतुलित पोषक तत्व प्रबंधन

आलू की अच्छी उपज के लिए संतुलित पोषण आवश्यक है। नाइट्रोजन, फास्फोरस एवं पोटैश के अलावा कैल्शियम, मैग्नीशियम, सल्फर तथा सूक्ष्म पोषक तत्व भी पौधों की वृद्धि में महत्वपूर्ण हैं।

नाइट्रोजन

पौधों की वानस्पतिक वृद्धि के लिए आवश्यक है, लेकिन अत्यधिक नाइट्रोजन से पौधे अत्यधिक पतदार हो सकते हैं और कंद विकास प्रभावित हो सकता है।

फास्फोरस

जड़ विकास एवं प्रारंभिक पौध वृद्धि के लिए महत्वपूर्ण है।

पोटैश

कंद विकास एवं गुणवत्ता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। उर्वरक की मात्रा हमेशा मृदा परीक्षण एवं क्षेत्रीय अनुशंसा के आधार पर निर्धारित करनी चाहिए।

12. जैविक खाद एवं मृदा स्वास्थ्य

अच्छी तरह सड़ी हुई गोबर की खाद या कम्पोस्ट का उचित उपयोग मृदा में जैविक पदार्थ बढ़ाने में सहायता कर सकता है।

जैविक पदार्थ से—

मिट्टी की संरचना, जल धारण क्षमता, सूक्ष्मजीवी गतिविधि, पोषक तत्वों की उपलब्धता में सुधार हो सकता है।

कच्ची या अधपकी जैविक खाद के प्रयोग से बचना चाहिए।

13. सिंचाई प्रबंधन

आलू में सिंचाई का सही समय अत्यंत महत्वपूर्ण है। अत्यधिक पानी से जलभराव एवं रोग की समस्या बढ़ सकती है, जबकि पानी की कमी से कंद विकास प्रभावित हो सकता है। विशेष रूप से कंद निर्माण एवं कंद वृद्धि की अवस्थाओं में पर्याप्त एवं संतुलित नमी आवश्यक होती है।

ड्रिप एवं स्पिंकलर सिंचाई

सूक्ष्म सिंचाई तकनीकों से पानी का अधिक दक्ष उपयोग किया जा सकता है। सिंचाई का तरीका मिट्टी, मौसम और उत्पादन प्रणाली के अनुसार निर्धारित करना चाहिए।

14. मेड़ चढ़ाना एवं मिट्टी चढ़ाना

आलू में earthing up या मिट्टी चढ़ाने की प्रक्रिया महत्वपूर्ण है। इससे कंदों को पर्याप्त मिट्टी मिलती है और कंदों का प्रकाश के संपर्क में आने का जोखिम कम होता है। यदि कंद प्रकाश के संपर्क में आते हैं तो उनमें हरापन विकसित हो सकता है, जिससे उनकी खाद्य गुणवत्ता प्रभावित होती है।

समय पर मिट्टी चढ़ाने से—

कंद विकास के लिए उचित स्थान, खरपतवार नियंत्रण में सहायता, कंदों की सुरक्षा हो सकती है।



15. खरपतवार प्रबंधन

खरपतवार आलू के साथ पानी, पोषक तत्व, प्रकाश और स्थान के लिए प्रतिस्पर्धा करते हैं।

खरपतवार नियंत्रण के लिए—

समय पर निराई-गुड़ाई, मिट्टी चढ़ाना, उचित फसल चक्र, यांत्रिक नियंत्रण, आवश्यकता के अनुसार अनुशंसित खरपतवारनाशी

का प्रयोग किया जा सकता है।

रासायनिक नियंत्रण में फसल की अवस्था एवं उत्पाद के लेबल निर्देशों का पालन करना चाहिए।

16. आलू के प्रमुख कीट- आलू में विभिन्न कीट फसल को नुकसान पहुंचा सकते हैं। इनमें क्षेत्र के अनुसार माहू, सफेद मक्खी, कटवर्म तथा अन्य कीट महत्वपूर्ण हो सकते हैं। कीट प्रबंधन के लिए नियमित खेत निगरानी आवश्यक है। अत्यधिक एवं अनावश्यक कीटनाशी प्रयोग से बचना चाहिए।

17. माहू का प्रबंधन

माहू पौधों की कोमल पत्तियों एवं अन्य भागों से रस चूस सकते हैं। कुछ परिस्थितियों में ये विषाणु रोगों के वाहक के रूप में भी महत्वपूर्ण हो सकते हैं।

प्रबंधन

नियमित निगरानी। खरपतवार नियंत्रण। स्वस्थ बीज सामग्री। पीले चिपचिपे ट्रेप। प्राकृतिक शत्रुओं का संरक्षण। आवश्यकता के अनुसार अनुशंसित कीटनाशी।

18. आलू के प्रमुख रोग

आलू में रोगों के कारण उत्पादन एवं बीज गुणवत्ता दोनों प्रभावित हो सकते हैं। प्रमुख रोगों में—

अगेती झुलसा। पछेती झुलसा। काला स्कर्फ। सामान्य स्कैब। विभिन्न विल्ट। विषाणु रोग। महत्वपूर्ण हैं।

19. पछेती झुलसा

पछेती झुलसा आलू की महत्वपूर्ण रोग समस्याओं में से एक है। ठंडी एवं नम परिस्थितियां रोग के विकास के लिए अनुकूल हो सकती हैं।

रोग के कारण पत्तियों पर धब्बे विकसित हो सकते हैं और गंभीर संक्रमण में पौधे की पत्तियां तेजी से नष्ट हो सकती हैं। कंद भी प्रभावित हो सकते हैं।

प्रबंधन

स्वस्थ एवं प्रमाणित बीज कंद।

रोग सहनशील किस्म।

संक्रमित अवशेषों का उचित प्रबंधन।

खेत में उचित जल निकास।

नियमित निगरानी।

मौसम आधारित रोग पूर्वानुमान/सलाह का उपयोग।

आवश्यकता के अनुसार अनुशंसित फफूंदनाशी।

20. अगेती झुलसा- अगेती झुलसा में पत्तियों पर विशिष्ट धब्बे विकसित हो सकते हैं। रोग बढ़ने पर पत्तियों का क्षेत्रफल कम हो जाता है और प्रकाश संश्लेषण प्रभावित हो सकता है।

प्रबंधन

स्वस्थ बीज। संतुलित पोषण। फसल अवशेषों का प्रबंधन। उचित पौध दूरी। खेत की नियमित निगरानी।

आवश्यकता अनुसार अनुशंसित फफूंदनाशी।

21. आलू के विषाणु रोग

विषाणु रोग बीज कंद के माध्यम से अगली फसल में समस्या पैदा कर सकते हैं। संक्रमित पौधों में वृद्धि कम होना, पत्तियों का रंग बदलना, पत्तियों में विकृति तथा उत्पादन में कमी जैसे लक्षण दिखाई दे सकते हैं।

वायरस प्रबंधन के लिए स्वस्थ बीज कंद का प्रयोग सबसे महत्वपूर्ण उपायों में से एक है। साथ ही वायरस वाहक कीटों का प्रबंधन भी आवश्यक हो सकता है।

22. समेकित रोग प्रबंधन

आलू में रोग प्रबंधन के लिए—

प्रमाणित स्वस्थ बीज कंद।

रोगरोधी/सहनशील किस्म।

फसल चक्र। खेत की स्वच्छता।

उचित जल निकास।

संतुलित पोषण।

नियमित निगरानी।

संक्रमित पौधों का उचित प्रबंधन।

मौसम आधारित सलाह।

आवश्यकता के अनुसार अनुशंसित रसायनों का उपयोग महत्वपूर्ण है।

23. बीज उत्पादन में स्वास्थ्य परीक्षण का महत्व-

आलू की बीज फसल में रोगमुक्तता विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। यदि बीज कंद में विषाणु या अन्य रोग मौजूद हों तो अगली फसल में उत्पादन कम हो सकता है।

इसलिए बीज उत्पादन में— स्वस्थ स्रोत से बीज, खेत निरीक्षण, रोगग्रस्त पौधों की पहचान, आवश्यकतानुसार रोगग्रस्त पौधों को हटाना, उचित भंडारण पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

24. आधुनिक बीज उत्पादन तकनीक

उन्नत बीज उत्पादन में टिशू कल्चर एवं मिनीट्यूबर आधारित प्रणालियां महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं। रोगमुक्त पौध सामग्री से उच्च गुणवत्ता वाले बीज कंदों की श्रृंखला विकसित करने की दिशा में इन तकनीकों का उपयोग किया जाता है। विशेष रूप से वायरस-मुक्त रोपण सामग्री प्राप्त करना गुणवत्तापूर्ण बीज उत्पादन का महत्वपूर्ण हिस्सा है।

25. जलवायु परिवर्तन एवं आलू



आलू तापमान के प्रति संवेदनशील फसल है। बढ़ते तापमान तथा मौसम में अनिश्चितता से कंद निर्माण एवं उपज प्रभावित हो सकती है।

जलवायु अनुकूल उत्पादन के लिए— उचित समय पर रोपण। उपयुक्त किस्म। सिंचाई प्रबंधन। मल्लिचंग। जल संरक्षण। मौसम आधारित कृषि सलाह। रोग पूर्वानुमान आधारित प्रबंधन। को अपनाया जा सकता है।

26. कटाई का उचित समय

आलू की खुदाई का समय फसल के उद्देश्य पर निर्भर करता है। ताजे बाजार के लिए और भंडारण/प्रसंस्करण के लिए खुदाई की अवस्था अलग हो सकती है। भंडारण के लिए आलू की खुदाई से पहले पौधों का उचित रूप से परिपक्व होना आवश्यक है ताकि कंद की बाहरी त्वचा पर्याप्त रूप से मजबूत हो सके। बहुत जल्दी खुदाई करने पर कंदों की त्वचा आसानी से छिल सकती है और भंडारण क्षमता कम हो सकती है।



27. यंत्रीकृत खुदाई—आलू उत्पादन में श्रम लागत कम करने के लिए यंत्रीकृत खुदाई उपयोगी हो सकती है।

उपयुक्त मशीनरी से— खुदाई का समय कम, श्रम आवश्यकता में कमी, कंद संग्रह में सुविधा हो सकती है। हालांकि मशीन का चयन मिट्टी, खेत के आकार तथा उत्पादन प्रणाली के अनुसार करना चाहिए।

28. कटाई-पश्चात प्रबंधन— खुदाई के बाद आलू को सीधे अत्यधिक तापमान या नमी वाली स्थिति में रखने के बजाय उचित तरीके से सुखाना, छंटना और ग्रेडिंग करना चाहिए। कटाई के दौरान चोट लगे कंदों को अलग करना चाहिए क्योंकि घायल कंदों में सड़न का खतरा अधिक होता है।

ग्रेडिंग— कंदों को आकार एवं गुणवत्ता के आधार पर अलग करने से बाजार मूल्य एवं उपयोग के अनुसार बेहतर प्रबंधन किया जा सकता है।

29. आलू का वैज्ञानिक भंडारण

आलू की बड़ी मात्रा में भंडारण के लिए नियंत्रित तापमान, आर्द्रता एवं वेंटिलेशन महत्वपूर्ण हैं। भंडारण का तापमान उपयोग के उद्देश्य के अनुसार निर्धारित किया जाना चाहिए।

भंडारण में ध्यान देना चाहिए—

स्वस्थ कंद ही रखें।
घायल एवं रोगग्रस्त कंद अलग करें।
पर्याप्त वेंटिलेशन रखें।
प्रकाश से बचाएं।
भंडारण स्थल को स्वच्छ रखें।
नियमित निरीक्षण करें।
टेबल और प्रोसेसिंग आलू के लिए भंडारण आवश्यकताएं अलग हो सकती हैं।

30. गुणवत्तापूर्ण आलू उत्पादन

गुणवत्ता वाले आलू के लिए—

सही किस्म।
स्वस्थ बीज।

संतुलित पोषण। उचित सिंचाई।

सही समय पर मिट्टी चढ़ाना।

कीट एवं रोग नियंत्रण।

उचित खुदाई।

सावधानीपूर्वक परिवहन।

वैज्ञानिक भंडारण

महत्वपूर्ण हैं।

प्रसंस्करण के लिए उपयुक्त आलू में कंद का आकार, शुष्क पदार्थ तथा प्रसंस्करण के बाद रंग जैसे गुण महत्वपूर्ण हो सकते हैं।

31. मूल्य संवर्धन एवं प्रसंस्करण—आलू का मूल्य संवर्धन किसानों एवं कृषि उद्यमियों के लिए महत्वपूर्ण अवसर प्रदान करता है।

आलू से— चिप्स, फ्रेंच फ्राइज, आलू फ्लेक्स, स्टार्च, सूखे उत्पाद, विभिन्न स्लैक उत्पाद तैयार किए जा सकते हैं। प्रसंस्करण उद्योग की आवश्यकताओं के अनुसार किस्म एवं कंद की गुणवत्ता का चयन करना आवश्यक है।

32. टिकाऊ आलू उत्पादन— टिकाऊ आलू उत्पादन में प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण के साथ उत्पादन बढ़ाना आवश्यक है।

इसके लिए— मृदा परीक्षण। संतुलित उर्वरक उपयोग। जैविक खाद।

जल संरक्षण। सूक्ष्म सिंचाई। फसल चक्र। समेकित कीट प्रबंधन। समेकित रोग प्रबंधन। फसल अवशेष प्रबंधन को अपनाना चाहिए।

33. डिजिटल एवं आधुनिक तकनीक

आधुनिक कृषि में डिजिटल तकनीकों का उपयोग आलू उत्पादन में भी बढ़ रहा है। मौसम आधारित रोग चेतावनी, मोबाइल कृषि सलाह, उपग्रह आधारित फसल निगरानी तथा डिजिटल बाजार सूचना किसानों को बेहतर निर्णय लेने में सहायता कर सकती है। भविष्य में सेंसर, ड्रोन और कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित तकनीकों से पौध स्वास्थ्य, रोग पहचान, सिंचाई तथा उत्पादन अनुमान में और सुधार की संभावना है।

34. आलू उत्पादन में प्रमुख समस्याएं—आलू उत्पादन में किसानों को निम्न समस्याओं का सामना करना पड़ सकता है—

गुणवत्तापूर्ण बीज की कमी। विषाणु रोग। पछेती झुलसा। अगेती झुलसा। मृदा जनित रोग। असंतुलित

पोषण। जलभराव। मौसम में अचानक परिवर्तन। भंडारण में नुकसान। बाजार मूल्य में उतार-चढ़ाव। इन समस्याओं का समाधान वैज्ञानिक तकनीक एवं समय पर निर्णय से किया जा सकता है।

35. किसानों के लिए व्यावहारिक सुझाव
आलू की सफल एवं गुणवत्तापूर्ण खेती के लिए किसानों को निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए—

प्रमाणित एवं स्वस्थ बीज कंदों का प्रयोग करें।
क्षेत्र के अनुसार उपयुक्त किस्म चुनें।
मृदा परीक्षण कराएं।
खेत में जल निकास की उचित व्यवस्था रखें।
संतुलित उर्वरक प्रयोग करें।
आवश्यकता के अनुसार जैविक खाद का उपयोग करें।

सिंचाई का उचित प्रबंधन करें।
समय पर मिट्टी चढ़ाएं।
खेत में नियमित रोग एवं कीट निगरानी करें।
पछेती झुलसा के लिए मौसम आधारित सलाह पर ध्यान दें।

वायरस प्रभावित पौधों एवं बीज स्रोत से बचें।
कटाई के दौरान कंदों को चोट से बचाएं।
रोगग्रस्त एवं क्षतिग्रस्त कंद अलग करें।
उचित ग्रेडिंग एवं भंडारण करें।
बाजार एवं प्रसंस्करण की मांग के अनुसार किस्म का चयन करें।

36. निष्कर्ष— आलू भारत की महत्वपूर्ण खाद्य एवं व्यावसायिक फसलों में से एक है। इसकी उत्पादकता और गुणवत्ता बढ़ाने के लिए वैज्ञानिक खेती की प्रत्येक कड़ी का उचित प्रबंधन आवश्यक है। स्वस्थ एवं प्रमाणित बीज कंद, उपयुक्त किस्म, मृदा परीक्षण, संतुलित पोषक तत्व प्रबंधन, उचित सिंचाई, समय पर मिट्टी चढ़ाना तथा समेकित कीट एवं रोग प्रबंधन आलू की सफल खेती के आधार हैं। आलू की फसल में पछेती झुलसा, अगेती झुलसा, विषाणु रोग तथा अन्य मृदा जनित समस्याएं उत्पादन को प्रभावित कर सकती हैं। इनका प्रबंधन केवल रसायनों पर निर्भर रहने के बजाय स्वस्थ बीज, रोगरोधी किस्म, फसल चक्र, खेत की स्वच्छता, नियमित निगरानी और आवश्यकता आधारित पौध संरक्षण के माध्यम से करना अधिक प्रभावी एवं टिकाऊ है। आधुनिक समय में सूक्ष्म सिंचाई, यंत्रीकृत खुदाई, उन्नत बीज उत्पादन, टिशू कल्चर, मिनीट्यूबर तकनीक, वैज्ञानिक भंडारण तथा डिजिटल कृषि जैसी तकनीकें आलू उत्पादन को अधिक दक्ष एवं लाभकारी बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं। अतः "गुणवत्तापूर्ण बीज + उपयुक्त किस्म + संतुलित पोषण + वैज्ञानिक सिंचाई + प्रभावी पौध संरक्षण + सावधानीपूर्वक खुदाई + वैज्ञानिक भंडारण + बेहतर विपणन" को अपनाकर किसान अधिक उत्पादन, बेहतर गुणवत्ता और अधिक आर्थिक लाभ प्राप्त कर सकते हैं। साथ ही, प्रसंस्करण एवं मूल्य संवर्धन से आलू की पूरी मूल्य श्रृंखला को मजबूत किया जा सकता है और किसानों की आय बढ़ाने के नए अवसर विकसित किए जा सकते हैं।



✍ आदित्य कुमार कृषि विभाग, मेरठ
इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी, मेरठ, (उ.प्र.)

✍ डॉ. मनीष कुमार सहायक प्राध्यापक,
कृषि विभाग, मेरठ इंस्टीट्यूट ऑफ
टेक्नोलॉजी, मेरठ, (उ.प्र.)

परिचय: लीची भारत की महत्वपूर्ण उष्ण एवं उपोष्ण फल फसलों में से एक है। इसके स्वादिष्ट, सुगंधित एवं आकर्षक फलों के कारण घरेलू बाजार के साथ-साथ प्रसंस्करण उद्योग में भी इसकी मांग रहती है। लीची का सफल उत्पादन केवल अच्छे वृक्ष एवं उर्वर भूमि पर निर्भर नहीं करता, बल्कि पुष्पन, फल-स्थापन (fruit set), फल विकास, सिंचाई, पोषण, कीट एवं रोग प्रबंधन तथा सही समय पर तुड़ाई का समन्वित प्रबंधन आवश्यक है। लीची में कई बार अच्छी पुष्पन के बावजूद फल-स्थापन कम होता है या फल गिरने की समस्या आती है। इसलिए पुष्पन एवं फलन की प्रत्येक अवस्था में वैज्ञानिक प्रबंधन आवश्यक है।

जलवायु एवं भूमि- लीची के लिए ऐसी जलवायु उपयुक्त होती है जिसमें शीतकाल में पर्याप्त ठंडक तथा फूल आने के समय अपेक्षाकृत अनुकूल मौसम मिले। फूल आने के दौरान अत्यधिक वर्षा, तेज हवा, असामान्य तापमान या अत्यधिक नमी परागण एवं फल-स्थापन को प्रभावित कर सकती है। अच्छी जल निकास वाली गहरी दोमट मिट्टी लीची के लिए उपयुक्त रहती है। जलभराव वाली भूमि में जड़ों की वृद्धि एवं वृक्ष का स्वास्थ्य प्रभावित हो सकता है।

स्वस्थ पौध एवं उपयुक्त किस्म का चयन- गुणवत्तापूर्ण उत्पादन के लिए प्रमाणित स्रोत से स्वस्थ एवं रोगमुक्त पौध का चयन करना चाहिए। क्षेत्र की जलवायु के अनुसार उपयुक्त किस्मों का चुनाव किया जाना आवश्यक है। लीची की बागवानी में पौधों की उचित दूरी रखने से वृक्षों को पर्याप्त प्रकाश एवं वायु मिलती है तथा बाग में कीट एवं रोग प्रबंधन भी आसान होता है।

पुष्पन सुधार के लिए पोषण प्रबंधन- लीची में पुष्पन हेतु वृक्ष की पूर्व अवस्था का पोषण एवं वृद्धि प्रबंधन अत्यंत महत्वपूर्ण है। अत्यधिक नाइट्रोजन देने से vegetative growth बढ़ सकती है और पुष्पन प्रभावित हो सकता है। इसलिए नाइट्रोजन का संतुलित प्रयोग करना चाहिए। फास्फोरस एवं पोटैश के साथ आवश्यक सूक्ष्म पोषक तत्वों की उपलब्धता भी फूल एवं फल विकास के लिए महत्वपूर्ण है। बोरॉन, जिंक, आयरन एवं अन्य सूक्ष्म तत्वों की कमी होने पर पत्तियों, पुष्पक्रम एवं फल विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। उर्वरक प्रबंधन हमेशा मिट्टी एवं पत्ती परीक्षण तथा स्थानीय अनुशंसाओं के आधार पर करना अधिक वैज्ञानिक है।

पुष्पन के समय सिंचाई प्रबंधन- लीची में पुष्पन से पहले एवं पुष्पन के दौरान जल प्रबंधन अत्यंत महत्वपूर्ण है। अनावश्यक एवं अत्यधिक सिंचाई से vegetative growth बढ़ सकती है, जबकि लंबे समय तक अत्यधिक जल तनाव से वृक्ष की सामान्य वृद्धि प्रभावित हो सकती है। फल-स्थापन एवं फल



लीची उत्पादन में पुष्पन, फलन एवं फल गुणवत्ता सुधार की वैज्ञानिक तकनीकें

विकास की अवस्था में पर्याप्त मिट्टी नमी बनाए रखना आवश्यक है। ड्रिप सिंचाई जैसी आधुनिक प्रणालियां पानी की कुशलता बढ़ाने में सहायक हो सकती हैं।

परागण एवं फल-स्थापन: लीची में बेहतर फल-स्थापन के लिए पर्याप्त एवं प्रभावी परागण आवश्यक है। फूलों के समय मधुमक्खियों एवं अन्य परागणकर्ताओं की उपस्थिति उपयोगी हो सकती है। इसलिए पुष्पन के दौरान परागणकर्ताओं के संरक्षण पर ध्यान देना चाहिए और अनावश्यक कीटनाशी छिड़काव से बचना चाहिए। एक ही बाग में उचित किस्मों

एवं स्वस्थ पुष्पन का प्रबंधन भी fruit set सुधारने में सहायक हो सकता है।

फल झड़ने की समस्या: लीची में fruit drop एक महत्वपूर्ण उत्पादन समस्या हो सकती है। इसका संबंध पोषण असंतुलन, नमी की कमी या अधिकता, तापमान, रोग एवं कीटों तथा वृक्ष की सामान्य अवस्था से हो सकता है। फल-झड़ने को कम करने के लिए नियमित सिंचाई, संतुलित पोषण, उचित canopy management तथा कीट एवं रोग नियंत्रण आवश्यक है। किसी भी पौध वृद्धि नियामक (PGR) का प्रयोग बिना वैज्ञानिक अनुशंसा के नहीं करना चाहिए, क्योंकि गलत मात्रा या गलत अवस्था में प्रयोग से फल एवं वृक्ष दोनों प्रभावित हो सकते हैं।

फल विकास एवं गुणवत्ता सुधार: लीची के फलों की गुणवत्ता में फल का आकार, वजन, रंग, मिठास, गूदा, रस, स्वाद तथा cracking की स्थिति महत्वपूर्ण होती है। फल विकास के दौरान पर्याप्त नमी एवं संतुलित पोषण बनाए रखना आवश्यक है। पोटैश फल की गुणवत्ता एवं पौधे की सामान्य शारीरिक क्रियाओं में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। कैल्शियम एवं बोरॉन जैसे तत्व कोशिका संरचना एवं फल गुणवत्ता से संबंधित प्रक्रियाओं में योगदान कर सकते हैं। हालांकि इनका प्रयोग आवश्यकता एवं अनुशंसित मात्रा के अनुसार ही किया जाना चाहिए।

फल फटने (Fruit Cracking) का प्रबंधन- लीची में फल cracking एक प्रमुख गुणवत्ता समस्या है। तेज तापमान परिवर्तन, अनियमित सिंचाई तथा फल विकास के समय नमी में अचानक परिवर्तन इसके जोखिम को बढ़ा सकते हैं। इस समस्या को कम करने के लिए मिट्टी में पर्याप्त एवं नियमित नमी बनाए रखना, जैविक मलच का उपयोग, संतुलित पोषण तथा आवश्यकता के अनुसार कैल्शियम एवं बोरॉन जैसे पोषक तत्वों का वैज्ञानिक प्रबंधन किया जा सकता है। किसी भी foliar spray की मात्रा कृषि विशेषज्ञ की अनुशंसा के अनुसार ही निर्धारित करनी चाहिए।

वृक्ष की छांटाई एवं canopy management- लीची के पुराने एवं अनुत्पादक भागों की उचित छांटाई से वृक्ष की canopy में प्रकाश एवं वायु का प्रवेश बेहतर हो सकता है। सूखी, रोगग्रस्त एवं एक-दूसरे से टकराती शाखाओं को हटाना उपयोगी होता है।

हालांकि अत्यधिक छांटाई से उत्पादन प्रभावित हो सकता है। इसलिए cultivar, वृक्ष की आयु एवं बाग की स्थिति के अनुसार canopy management करना चाहिए।

कीट एवं रोग प्रबंधन- लीची में विभिन्न कीट एवं रोग फल उत्पादन एवं गुणवत्ता को प्रभावित कर सकते हैं। फल भेदक कीट, लीची माइट तथा अन्य कीटों की नियमित निगरानी आवश्यक है। रोगों के प्रबंधन के लिए बाग की स्वच्छता, संक्रमित भागों की कटाई एवं नष्ट करना, उचित canopy management तथा आवश्यकतानुसार अनुशंसित फफूंदनाशी का प्रयोग किया जा सकता है। कीट एवं रोग प्रबंधन में एकीकृत कीट प्रबंधन (IPM) को प्राथमिकता देने से अनावश्यक कीटनाशी उपयोग कम किया जा सकता है तथा फल की गुणवत्ता एवं पर्यावरण दोनों की सुरक्षा होती है।

फल की तुड़ाई- लीची की तुड़ाई उचित maturity stage पर करना अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि तुड़ाई के बाद फल का रंग, स्वाद एवं गुणवत्ता तेजी से प्रभावित हो सकती है। सामान्यतः जब फल किस्म के अनुरूप पूर्ण आकार प्राप्त कर लें और छिलके का रंग हरा से आकर्षक लाल/गुलाबी अवस्था की ओर बदल जाए, तब बाजार एवं दूरी के अनुसार तुड़ाई का निर्णय किया जाता है। फलों को गुच्छों सहित सावधानीपूर्वक तोड़ना चाहिए ताकि फल एवं शाखाओं को अनावश्यक नुकसान न पहुंचे।

तुड़ाई के बाद प्रबंधन- लीची अत्यधिक शीघ्र खराब होने वाला फल है। तुड़ाई के तुरंत बाद फल को तेज धूप से बचाना चाहिए। ग्रेडिंग, उचित पैकिंग, शीघ्र परिवहन एवं शीत श्रृंखला (cold chain) का उपयोग shelf life बढ़ाने में सहायक होता है। बाजार की दूरी के अनुसार उचित maturity पर harvesting एवं post-harvest handling करने से फल की बिक्री योग्य गुणवत्ता लंबे समय तक बनाए रखने में सहायता मिलती है।

वैज्ञानिक तकनीकों का समन्वित उपयोग- लीची में अधिक एवं गुणवत्तापूर्ण उत्पादन के लिए किसी एक तकनीक पर निर्भर रहने के बजाय सभी प्रबंधन घटकों को एक साथ अपनाना आवश्यक है। उचित किस्म, स्वस्थ पौध, संतुलित पोषण, नियंत्रित सिंचाई, प्रभावी परागण, canopy management, कीट एवं रोगों की निगरानी तथा उचित harvesting एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं।

निष्कर्ष- लीची में बेहतर पुष्पन एवं फलन के लिए वृक्ष की पोषण स्थिति तथा पूर्व-वर्ष की वृद्धि का विशेष महत्व है। पुष्पन के समय परागणकर्ताओं का संरक्षण, फल-स्थापन के दौरान उचित नमी एवं पोषण, फल विकास के समय cracking एवं कीट-रोग प्रबंधन तथा सही maturity पर harvesting अपनाकर फल की गुणवत्ता में उल्लेखनीय सुधार किया जा सकता है। इस प्रकार "संतुलित पोषण + वैज्ञानिक जल प्रबंधन + प्रभावी परागण + canopy management + IPM + उचित post-harvest handling" को अपनाकर लीची बागवान उत्पादन के साथ-साथ फल की गुणवत्ता और बाजार मूल्य में भी सुधार कर सकते हैं।



डॉ. सुरेश जाखड़ सहायक आचार्य
(कीट विज्ञान)

एम. बी. कृषि महाविद्यालय, टोंक

डॉ. ओम प्रकाश रोलानिया

शोधार्थी, श्री कर्ण नरेंद्र कृषि विश्वविद्यालय,
जोबनेर, जयपुर (राजस्थान)

डॉ. बाबू लाल फगोडिया

विषय विशेषज्ञ (पादप संरक्षण) कृषि
विज्ञान केन्द्र, दिल्ली

परिचय

कृषि पारिस्थितिकी तंत्र में सभी कीट हानिकारक नहीं होते। अनेक कीट फसलों को नुकसान पहुँचाने वाले कीटों का प्राकृतिक रूप से नियंत्रण करते हैं। इन्हें लाभकारी कीट या प्राकृतिक शत्रु कहा जाता है। कुछ लाभकारी कीट परभक्षी होते हैं, जबकि कुछ परजीवी के रूप में कार्य करते हैं। इसके अलावा मक्खियों, मधुमक्खियों तथा अन्य परागणकर्ता जीवों का कृषि उत्पादन में महत्वपूर्ण योगदान है।

यदि खेत में इन प्राकृतिक शत्रुओं का संरक्षण किया जाए तो कीटों की आबादी को प्राकृतिक रूप से नियंत्रित किया जा सकता है और कीटनाशियों की आवश्यकता कम हो सकती है।

प्राकृतिक शत्रुओं के प्रमुख प्रकार

1. परभक्षी कीट

परभक्षी अपना जीवन पूरा करने के लिए अनेक हानिकारक कीटों का भक्षण करते हैं।

लेडीबर्ड बीटल

लेडीबर्ड बीटल एवं इसकी ग्रब अवस्था एफिड, मिलीबग और अन्य नरम शरीर वाले कीटों को खाती है।
क्राइसोपरेला

लाभकारी कीटों का संरक्षण एवं प्राकृतिक शत्रुओं द्वारा कीट नियंत्रण

क्राइसोपरेला की ग्रब को सामान्यतः एफिड लायन कहा जाता है। यह एफिड, थ्रिप्स, सफेद मक्खी, मिलीबग और अन्य छोटे कीटों का भक्षण करती है।

परभक्षी मकड़ियाँ

मकड़ियाँ अनेक प्रकार के उड़ने वाले एवं रेंगने वाले कीटों को पकड़कर खाती हैं और खेत में प्राकृतिक कीट नियंत्रण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

2. परजीवी कीट

परजीवी अपने जीवन चक्र के किसी चरण में दूसरे कीट के शरीर के अंदर या बाहर विकसित होते हैं और अंततः अपने पोषक कीट को मार देते हैं। Trichogramma जैसी परजीवी तैयार अनेक लेपिडोप्टेरन कीटों के अंडों पर परजीवीकरण करके उनकी संख्या कम



करती है। इसी प्रकार Bracon एवं Apanteles जैसी परजीवी कई लार्वा कीटों के नियंत्रण में उपयोगी हैं।

लाभकारी कीटों का महत्व

लाभकारी कीट— हानिकारक कीटों की संख्या कम करते हैं। कीटनाशियों की आवश्यकता कम करते हैं। उत्पादन लागत घटाने में मदद करते हैं। कृषि पारिस्थितिकी तंत्र का संतुलन बनाए रखते हैं। जैव विविधता को बढ़ावा देते हैं। टिकाऊ एवं पर्यावरण-अनुकूल कृषि में योगदान देते हैं।

लाभकारी कीटों के संरक्षण के उपाय

1. अनावश्यक कीटनाशी छिड़काव से बचें

व्यापक प्रभाव वाले कीटनाशियों का अनावश्यक उपयोग प्राकृतिक शत्रुओं की संख्या को तेजी से कम कर सकता है।

2. चयनात्मक कीटनाशियों का उपयोग करें

जहाँ रासायनिक नियंत्रण आवश्यक हो, वहाँ फसल और लक्ष्य कीट के लिए अनुशंसित तथा अपेक्षाकृत चयनात्मक विकल्पों को प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

3. फूलदार पौधों का संरक्षण करें

कई परजीवी एवं परभक्षी वयस्क अवस्था में फूलों से पराग या मकरंद लेते हैं। खेत के आसपास विविध वनस्पतियों की मौजूदगी उन्हें भोजन एवं आश्रय उपलब्ध करा सकती है।

4. कीटनाशी का सही समय चुनें

परागणकर्ताओं की सक्रियता के समय छिड़काव से बचना चाहिए और लेबल पर दिए निर्देशों का पालन करना चाहिए।

5. जैविक एजेंटों का उपयोग

जहाँ उपयुक्त हो, वहाँ Trichogramma कार्ड, Chrysoperla जैसे प्राकृतिक शत्रुओं तथा जैव-कीटनाशियों का उपयोग किया जा सकता है।

प्राकृतिक शत्रुओं का संरक्षण क्यों आवश्यक है?

यदि किसी खेत में कीटों के साथ-साथ उनके प्राकृतिक शत्रु भी मौजूद हैं, तो यह एक संतुलित कृषि पारिस्थितिकी तंत्र का संकेत हो सकता है। कई बार किसान कीट दिखाई देने पर तुरंत कीटनाशी का प्रयोग कर देते हैं। इससे हानिकारक कीटों के साथ-साथ प्राकृतिक शत्रु भी मर जाते हैं। बाद में कीटों की आबादी तेजी से बढ़ सकती है क्योंकि उन्हें नियंत्रित करने वाले प्राकृतिक शत्रु कम हो चुके होते हैं।

संरक्षणात्मक जैविक नियंत्रण

प्राकृतिक शत्रुओं को बाहर से छोड़ने के बजाय खेत में पहले से मौजूद प्राकृतिक शत्रुओं को सुरक्षित रखना संरक्षणात्मक जैविक नियंत्रण कहलाता है। यह IPM की महत्वपूर्ण रणनीति है।

इसके लिए— अनावश्यक कीटनाशी से बचना, प्राकृतिक आवास बनाए रखना, फूलदार पौधों का संरक्षण, मिश्रित एवं विविध फसल प्रणाली, उचित सिंचाई एवं पोषण प्रबंधन जैसे उपाय अपनाए जा सकते हैं।

निष्कर्ष

लाभकारी कीट कृषि के अदृश्य सहयोगी हैं। इनका संरक्षण करके किसान हानिकारक कीटों के विरुद्ध प्राकृतिक नियंत्रण को मजबूत कर सकते हैं। भविष्य की टिकाऊ कृषि में "हानिकारक कीटों को नियंत्रित करने के साथ लाभकारी कीटों को बचाना" उतना ही महत्वपूर्ण है। प्राकृतिक शत्रुओं का संरक्षण कीटनाशी लागत कम करने, पर्यावरण संरक्षण तथा सुरक्षित खाद्य उत्पादन की दिशा में महत्वपूर्ण कदम है।



मध्य भारत कृषक भारती

श्री गणेशाय नमः



किसान कृषि सेवा केंद्र

श्री सौवर्णिया सेठ



Gmail

Kisankrishisevakendramanasa@gmail.com



7692967419



9109726855

हमारी सेवाएँ:-

सभी तरह के उन्नत बीज- अश्वगंधा, अकरकरा, कलौजी, तुलसी, केमोमाईल, चिया, जीरा, हल्दी, सौप, सर्पगंधा, तरबूज एवं सभी प्रकार की सब्जिया एवं फूलों के बीज, कृषि दवाईया, उर्वरक, वर्मी कम्पोस्ट यूनिट, अजोला यूनिट, किसान के घर पर तैयार वर्मी कम्पोस्ट, जैविक खेती से संबंधित सभी कार्य, सभी फसलों के फोरोमेन ट्रेप, सोयाबीन स्पाईरल बोर्डर, कृषि एवं किसान संबंधित समस्त प्रकार के ऑर्डर की विश्वास पूर्ण, पूर्ति करना हमारा परम ध्येय है।

कृषि विभाग एवं उद्यानिकी विभाग संबंधित सभी योजनाओं के पंजिरान किए जाते हैं।

उन्नत किस्म के नसीरी के पौधे, मासिक, साप्ताहिक कृषि साहित्य सभी प्रकार की पत्रिका उपलब्ध है।

स्थान- पुराना टांकीज, एल.आई.सी. ऑफिस के सामने, रामपुरा रोड़ मन्नासा जिला नीमच (म.प्र.) 458110



कृषि दर्शन
खेत-खलिहान का राजा



श्रेषर 35HP हापर मॉडल



हडम्बा कटर श्रेषर



ऑटोफीडिंग श्रेषर



मक्का श्रेषर



मिनी कम्बाइन श्रेषर



रेज बेड सिड झील



स्प्रे पंप 500 लि. गन बूम मॉडल



मोटर लिफ्टर



सुदर्शन इण्डस्ट्रीज

विक्रम नगर मौलाना, बड़नगर, जिला-उज्जैन-456771 (म.प्र.)

फोन : 07367-262235, मोबा.: 09827078882

वेब : www.krishidarshan.com, ई-मेल : krishidarshan@rediffmail.com

अगस्त 2026



अगस्त माह में किसानों के लिए एडवाइजरी

धान

- रोपाई के 20-25 दिन बाद यूरिया की दूसरी टॉप ड्रेसिंग करें।
- खेत में पानी 2-5 से.मी. की गहराई तक रखें, जलनिकास की व्यवस्था करें।
- तना छेदक की निगरानी करें, लक्षण दिखाई देने पर नियंत्रण करें।



सोयाबीन

- बोआई के 25-30 दिन बाद निराई-गुड़ाई करें व खरपतवार नियंत्रण करें।
- पीली मोजेक वायरस व तना मक्खी पर नज़र रखें।
- आवश्यकता अनुसार जैविक या रासायनिक कीटनाशकों का छिड़काव करें।



मक्का

- बुवाई के 20-25 दिन बाद यूरिया की टॉप ड्रेसिंग करें।
- फॉल आर्मी वर्म एवं कीटों की निगरानी करें, जरूरत पड़ने पर नियंत्रण करें।
- जल जमाव से बचें, निकास की अच्छा प्रबंध करें।



कपास

- गुलाबी सुंडी की निगरानी करें, फेरोमोन ट्रेप लगाएं।
- 60-65 दिन पर टॉपिंग करें (फूल आने के बाद)।
- संतुलित उर्वरक व सूक्ष्म पोषक तत्वों का प्रयोग करें।



सब्जियाँ

- टमाटर, बैंगन, मिर्च में फल छेदक एवं रोगों की निगरानी करें।
- लौकी, ककड़ी, करेला में रोगग्रस्त पत्तियाँ हटाएँ।
- जैविक कीटनाशकों का उपयोग करें, सुरक्षित उत्पादन पाएँ।



मृदा एवं उर्वरक प्रबंधन

- हरी खाद (ढैचा/सन) की बुवाई करें जिससे मृदा की उर्वरता बढ़े।
- गोबर की खाद/कम्पोस्ट का प्रयोग करें।
- मृदा परीक्षण कराकर संतुलित उर्वरक का प्रयोग करें।



पशुपालन

- पशुओं को स्वच्छ व ठंडे स्थान पर रखें।
- हरे चारे के साथ संतुलित आहार दें।
- खुरपका-मुंपका (FMD) से बचाव के लिए टीकाकरण कराएँ।



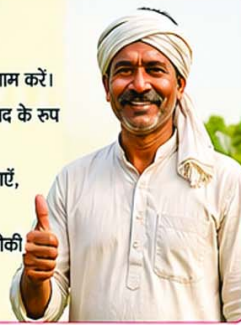
मौसम पूर्वानुमान (अगस्त)

- अधिकांश क्षेत्रों में सामान्य से अधिक वर्षा की संभावना।
- कहीं-कहीं भारी वर्षा हो सकती है, जल जमाव से बचें।
- खेतों में जलनिकास की समुचित व्यवस्था रखें।



महत्वपूर्ण सुझाव

- कीटनाशकों का छिड़काव सुबह या शाम करें।
- फसल अवशेष न जलाएँ, जैविक खाद के रूप में उपयोग करें।
- सूक्ष्म सिंचाई (ड्रिप/सिंप्लर) अपनाएँ, जल की बचत करें।
- कृषि विज्ञान केंद्र से संपर्क कर तकनीकी सलाह अवश्य लें।



किसान हेल्पलाइन

कृषि संबंधी जानकारी के लिए हमसे जुड़ें

94251-01132

Kisaan Helpline

+91-7415538151

www.krishakbharti.in

bhartikrishak75@gmail.com



मिट्टी की खुशहाली, किसान की समृद्धि - यही है हमारा संकल्प



कृषक एकता - समृद्ध भारत की गारंटी



स्वामी, मुद्रक, प्रकाशक राजू सिंह गुर्जर द्वारा कंचन ऑफसेट, चिंतामणि शास्त्री की गली, सात भाई की गोठ, लक्कडखाना, ग्वालियर, म.प्र.-474001 से मुद्रित एवं ई.एम.-120, कुशवाहा मार्केट के पास, दीनदयाल नगर, ग्वालियर, म.प्र.-474005 से प्रकाशित। संपादक : राजू सिंह गुर्जर (मोबा. 9425101132, 0751-4070802)